29

~~7~~ II

S I

श्रीयुत पं० ज्योतिःप्रसादजी शास्त्री को सप्रेम [illegible]।
—ह॰ शा॰ त्रिवेदी
१-४-४९

त्रैमासिक

श्रीः

श्रीस्वाध्याय

योगाङ्क

वर्ष ७
सं० २००५

संख्या ४
आषाढ़



वार्षिक मूल्य ३।।)

इस अङ्क का मूल्य १) रु०

संस्थापक—
अमृतवाग्भव आचार्य

सम्पादक—
श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी

विषय-सूची

कुछ प्रधान नगरोंमें 'श्रीस्वाध्याय' मिलनेके स्थान

(१) श्री पं० दयानन्दजी जोशी फर्राशखाना समोसागली घर नं० ५/१०/९६५ दिल्ली। (२) श्री प[illegible] दैवज्ञ रामभंदिर बिल्डिङ्ग कालबादेवीरोड बम्बई नं० २। (३) श्री पं० विशुद्धानन्दजी गौड़ ज्योतिषाना[illegible] पुर। (४) श्री पं० ज्योतिःप्रसादजी शास्त्री भैरोंनाला बेलनगंज आगरा। (५) श्री पं० रामचन्द्रजी उदूपुरा उज्जैन। (६) श्री पं० गोविन्दजी मिश्र चौबुर्जा भरतपुर।

स्मरण रहे इन स्थानोंसे डाक द्वारा अंक किसीको भी नहीं भेजा जायगा। मनीआर्डरसे वार्षिक 'श्रीस्वाध्याय' मंगवानेकी सूचना प्रधान कार्यालय श्रीस्वाध्यायसदन सोलन (शिमला) को ही भेजन[illegible]

भारतके प्रत्येक नगरोंमें अनुभवी एजेण्टोंकी आवश्यकता है। नियमादि प्रधान कार्यालयसे[illegible]

ग्राहकोंको आवश्यक सूचना—

अष्टमवर्षका 'नववर्षाङ्क'

उज्ज्वल भविष्य

जगज्जननी श्रीमहामायाकी असीम अनुकम्पा एवं आपके प्रशंसनीय सहयोगसे 'श्रीस्वाध्याय' ने जो अनुपम प्रगति की है वह इसके उज्ज्वल भविष्यकी प्रतीक है। विद्वानोंके गम्भीर प्रगतिशील मौलिक लेखों और अनुभवी ज्यौतिषाचार्यों के ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी अन्वेषणात्मक निबन्धों, राजनैतिक सामाजिक व्यापारिक हलचलों, अन्तर्राष्ट्रिय परिस्थितियों एवं प्रत्येक वस्तुकी तेजी-मन्दी सम्बन्धी भविष्यकी महत्वपूर्ण सूचनाओंने 'श्रीस्वाध्याय' को इतना अधिक लोकप्रिय बना दिया है कि इस वर्षके गताङ्क (हेमन्ताङ्क और वसन्ताङ्क) की एक भी प्रति हमारे पास अवशिष्ट नहीं। बहुतसे ग्राहकोंका विशेष आग्रह होते हुए भी प्रेस और कागज सम्बन्धी असुविधाओंके कारण उनकी इच्छानुसार उक्त अंकोंका दूसरा संस्करण छपवा कर हम उन्हें न दे सके। तदर्थ उनसे क्षमा चाहते हैं, तथा आशा दिलाते हैं कि इस वर्ष हम ऐसा प्रयत्न करेंगे कि सभी ग्राहकोंको अङ्क सुविधानुसार मिल सकें।

संसार-व्यापी भयानक उथल-पुथलके इन विगत सात वर्षोंमें 'श्रीस्वाध्याय' का निरन्तर प्रकाशित होकर पाठकोंकी अधिकाधिक सेवा करते रहना भी इसके उज्ज्वल भविष्यका प्रधान कारण है। इस संक्रान्तिकालमें जहाँ—अच्छे-अच्छे कई साधन-सम्पन्न पत्र पत्रिकाएँ भी लोप हो गईं और अनेकों मासिक-पत्रोंने बहुत समयके अनन्तर पुनः प्रकट होकर, वा तीन-तीन चार-चार मासका इकट्ठा संयुक्ताङ्क निकालते हुए अपना अस्तित्व बनाये रक्खा—वहाँ जगदम्बाकी कृपासे इन सात वर्षोंमें 'श्रीस्वाध्याय' के किसी भी अङ्ककी खामी नहीं पड़ी। प्रत्येक अङ्क निरन्तर प्रकाशित होकर ग्राहकोंके पास पहुँचता रहा है। गतवर्ष भाद्रपद आश्विन
समें देश-व्यापी अराजकताके कारण 'व्यापाराङ्क' के स्थानमें कार्तिक मासमें साधारण अंकसे २८ पृष्ठ
६४ पृष्ठका 'नववर्षाङ्क' ही हम पाठकोंको भेंट कर सके थे। उसके अनन्तरके तीनों अङ्कोंमें भी हमने
बढाकर साधारण अंकोंको विशेष उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया। परिणाम स्वरूप ये अङ्क
लोकप्रिय हुए कि ग्राहकोंकी मांग पूरी नहीं की जा सकी।

वार्षिक मूल्य शीघ्र भेजिये

मान सातवें वर्षका यह अन्तिम अङ्क है। आपका वार्षिक मूल्य इस अङ्कके साथ समाप्त हो
: आप आगामी आठवें वर्षका वार्षिक मूल्य ३।।।) तीन रुपये बारह आने भाद्रपद शु० १०
र १९४८ तक कार्यालयमें मनीआडर द्वारा भेजकर वर्षभरके लिए अपनी सब प्रतियां सुरक्षित
ी आश्विन मास (विजयादशमी) में श्रीस्वाध्यायका नववर्षाङ्क विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित
ङ्कको अधिकसे अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी बनानेका प्रयत्न करेंगे। इस सुन्दर
का मूल्य होगा २ रु० और प्रत्येक साधारण अङ्कका १) रु०। परन्तु १२ सितम्बर तक मूल्य
ने स्थायी ग्राहकोंको ये सब अङ्क ३।।) में ही प्राप्त हो सकेंगे। जो ग्राहक रजिस्ट्री खर्चके
अधिक भेजेंगे उन्हें नववर्षाङ्क रजिस्ट्री द्वारा भेजा जायेगा। डाककी अव्यवस्थाके कारण
समय पर न पहुंचते हों, या गुम होनेका भय हो वे रजिस्ट्री व्यय सहित वार्षिक मूल्य
ें।

वी० पी० नहीं भेजी जायगी

जो ग्राहक वी० पी० से अङ्क मंगायेंगे उन्हें हम विश्वास नहीं दिला सकते कि अङ्क ठीक समय पर वी० पी० पी० द्वारा भेजेंगे ही, क्योंकि यदि गत वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी नववर्षाङ्क छपनेसे पहिले ही पुराने और नये ग्राहकोंका मूल्य अधिक मात्रामें जमा हो गया तो फिर हम किसीको भी वी० पी० नहीं भेज सकेंगे। अतः कोई सज्जन वी० पी०के लिए हमें बाध्य न करें। ४) रु० भेजकर अङ्क रजिस्ट्री द्वारा मँगवाना ही लाभप्रद है।

जो कुछ महानुभाव गत पौष और चैत्रके हेमन्ताङ्क एवं वसन्ताङ्कसे स्थायी ग्राहक बने हैं उन्हें यथासमय सब अङ्क निरन्तर मिलेंगे। परन्तु उन्हें अपना वर्ष पूर्ण होनेसे प्रथम ही आगामी वर्षका मूल्य भेज देना चाहिए। कार्यालयकी सूचना या वी० पी० आने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

मासिक 'श्रीस्वाध्याय'

गताङ्क तथा इस अङ्कके अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशित हमारी प्रेससम्बन्धी योजना पर आपने ध्यान दिया ही होगा। कुछ सज्जनोंने हमें इस कार्यमें सहयोग देनेका वचन दिया है। यदि इन सज्जनों और 'श्रीस्वाध्याय'-प्रेमी व्यापारी वर्गका क्रियात्मक सहयोग हमें प्राप्त हो गया तो यथासम्भव हम आगामी आश्विन मासमें अष्टम वर्षके प्रारम्भसे ही 'श्रीस्वाध्याय' को मासिक करनेका प्रयत्न करेंगे और उसके सम्बन्धकी सभी सूचनाएं आपको आगामी अङ्क में मिलेंगी।

'श्रीस्वाध्याय' द्वारा लाभ उठाने वाले कुछ व्यापारी सज्जन हमें लिखते भी रहे हैं कि 'हम आपकी सेवा करना चाहते हैं' ऐसे सहृदय महानुभावोंसे हमारा निवेदन है कि अब सेवाका समुचित समय आ गया है। किन्तु यह भी स्मरण रहे कि दानरूपसे यत्किञ्चित् रूपमें की गई सेवा हमें अभीष्ट नहीं। ऐसे महानुभाव यदि 'श्रीस्वाध्याय' के अधिक से अधिक प्रचार और प्रसारके सदुद्देश्यको सामने रखकर यह चाहते हों कि सर्वसाधारण जनता तथा व्यापारी-वर्ग इससे अधिकसे अधिक लाभ उठाये तो वे महानुभाव हमारी प्रेस-सम्बन्धी योजनामें सम्मिलित होनेके लिए अधिकसे अधिक अर्थभाग (शेयर) खरीद कर 'श्रीस्वाध्याय' की सहायताके रूपमें भारतीय संस्कृति औ[र] साहित्य एवं राष्ट्रकी महान् सेवा करके अपनी पूंजीको सुरक्षित रखते हुए स्वयं भी लाभ तथा यशके बन सकते हैं। जो सज्जन कमसे कम १००) का अर्थ भाग (शेयर) भी न खरीद सकते हों वे अप[ने] इष्ट मित्रोंको स्थायी ग्राहक बनाकर 'श्रीस्वाध्याय' को सहयोग दे सकते हैं।

नये वर्षके ग्राहकोंको विशेष सुविधा

जो अभीतक 'श्रीस्वाध्याय' के ग्राहक नहीं हैं ऐसे १०० उन ग्राहकोंको जिनका वार्षिक [...] अगस्तके अन्त तक कार्यालयमें पहुंच जायगा, उन्हें २) रु० मूल्य वाली 'दैवज्ञकी दृष्टिमें संस[...] उपहार रूपमें भेंट की जावेगी। इस पुस्तकका विशेष विवरण पृष्ठ ७१ पर देखिये। सर्वप्रथम अप[...] का मूल्य ४) मनीआर्डर द्वारा भेजने वाले २०० पुराने ग्राहकोंको "सं० २००५ की ग्रहपरिषद[...] ग्रहण विवेचन" पुस्तक ॥।) मूल्यकी भेंट की जावेगी।

आपको श्रीस्वाध्याय बिना मूल्य भी प्राप्त हो सकता है

यदि आप ७ ऐसे महानुभावोंके नाम पते और वार्षिक मूल्य श्रीस्वाध्याय स[...] भिजवायें जो अभी तक श्रीस्वाध्यायके ग्राहक न हों तो आपको एक वर्ष तक श्रीस्वाध्[याय ...] होता रहेगा।

पत्र व्यवहारका एकमात्र स्थायी पताः—

व्यवस्थापक श्रीस्वाध्याय-सदन, सोलन

॥ श्रीः ॥

श्रीस्वाध्याय

[त्रैमासिक-पत्र]

संस्थापक तथा प्रधानाध्यक्ष—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र महामहिम आचार्य

श्री १०८ मान् अमृतवाग्भवजी महाराज

संरक्षक—

बघाटमहीमहेन्द्र धर्ममार्तण्ड—

राजा साहब श्री १०५ मान् दुर्गासिंह जी बहादुर C. I. E. सोलन।

रावराजा कैप्टेन श्री १०५ मान् गिरिधारीशरणसिंह जी भरतपुर।

सहायक—

श्री १०५ मती माँजी महाराणी साहिबा (सिरमौरीजी) बघाटराज्य।

श्री १०५ मती सौ० राणी साहिबा वृन्दावनवाली जी (भरतपुर)।

रावबहादुर धर्मालङ्कार श्री १०५ मान् महाराज प्रभुनाथसिंहजी नरसिंहगढ़।

श्री १०५ मान् राजकुमार मानसिंहजी बार.एट-लॉ. जज हाईकोर्ट उदयपुर।

श्रीमान् सरदार कुँवर रणदीपसिंह जी नाहन (सिरमौर)।

श्रीमान् कुँवर शिवसिंह जी B. A., L-L. B. सेशनजज सोलन।

श्रीमान् कुँवर ईश्वरीसिंह जी अध्यक्ष धर्मसभा उदयपुर (मेवाड़)।

श्रीमान् सरदार जगजीतसिंह जी ढिल्लों B. A., L-L. B. नाभा।

श्री पं० देवकीनन्दन जी कथावाचक, यादव कीर्तन मण्डल अम्बाला।

सम्पादक और व्यवस्थापक—

ज्यो० मा० ज्यो० र० श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्योतिश्शास्त्री

उपसम्पादक—

साहित्यरत्न काव्यतीर्थ श्री पं० भवानीशङ्कर त्रिवेदी शास्त्री

प्रकाशक—

श्रीस्वाध्यायसदन सोलन (पंजाब)

श्रीस्वाध्यायके नियम तथा उद्देश्य

उद्देश्य—

समस्त संसारको हितकी ओर ले जाना तथा इहलौकिक और पारलौकिक मोक्ष (स्वातन्त्र्य) प्राप्त कराना "श्रीस्वाध्याय" का मुख्य उद्देश्य है।

सञ्चालक गणोंके नियम—

संरक्षक—

(१) जो महानुभाव ३००) तीन सौ रुपयेसे अधिक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के संरक्षक माने जायेंगे।

सहायक—

(२) जो सज्जन ५०) से ३००) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सहायक माने जायंगे।

सम्मान्य ग्राहक—

(३) जो सज्जन ५) से अधिक ५०) रु० तक प्रतिवर्ष सहायता देंगे वे 'श्रीस्वाध्याय' के सम्मान्य ग्राहक माने जायेंगे।

'श्रीस्वाध्याय' के नियम—

(१) 'श्रीस्वाध्याय' (जब तक त्रैमासिक रहेगा तब तक) आश्विन शुक्ल १०, पौष शुक्ल १०, चैत्र शुक्ल १० और आषाढ़ शुक्ल १० को प्रकाशित हुआ करेगा। इस त्रैमासिक संस्करणका वार्षिक मूल्य ३।−) और एक प्रतिका १) है। स्थायी ग्राहक आश्विन से ही बनाये जाते हैं। 'श्रीस्वाध्याय' के स्थायी ग्राहकों को हमारी "श्रीग्रन्थमाला" की सभी अद्भुत अमूल्य पुस्तकें बिना मूल्य (मुफ्त) दी जावेंगी। ऐसी सर्वोपयोगी अमूल्य पुस्तकें कोई भी मासिक-पत्र प्रतिवर्ष अपने ग्राहकोंको बिना मूल्य नहीं देता। यह 'श्रीस्वाध्याय' के ग्राहकोंको विशेष लाभ है। पर्याप्त संरक्षक सहायक और ग्राहक होने पर बहुत शीघ्र ही 'श्रीस्वाध्याय' मासिक कर दिया जायगा।

(२) जिन सज्जनोंके लेख श्रीस्वाध्याय-सदनकी ओरसे प्रार्थना-पूर्वक मंगवाये जायेंगे वे अवश्य प्रकाशित होंगे। अन्य लेख यदि गवेषणापूर्ण मौलिक और उपयोगी समझे जायेंगे तो यथासमय प्रकाशित हो जावेंगे, अन्यथा नहीं।

(३) लेख, कविता, चित्र, समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ और विनिमय (परिवर्तन) के पत्र पत्रिकायें सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' सोलन (पंजाब) के पतेसे भेजने चाहियें।

(४) लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री स्पष्ट अक्षरोंमें कागजके एक ओर ही लिखी होनी चाहिए।

(५) किसी लेखके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने बढ़ाने तथा उसे लौटाने न लौटानेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। जिस अस्वीकृत लेखको सम्पादक लौटाना स्वीकार करें, उसका डाक और रजिस्ट्रीका व्यय लेखकको भेजना होगा। अधूरे लेख नहीं लिये जाते।

विज्ञापन छपवाईके नियम—

१ पृष्ठ या दो कालम की छपाई	३०)	प्रति अङ्क
आधा पृष्ठ या एक कालम की छपाई	१८)	"
चौथाई पृष्ठ या आधा "	१०)	"

पूरे वर्ष या चार अंकोंमें एक पृष्ठकी छपाई १००) रु० होगी।

टाइटलके चौथे पृष्ठकी छपाई ७५) प्रति अङ्क

वर्ष भर तक टाइटल चौथे पृष्ठकी छपाई २५०)रु०

टाइटलके दूसरे तीसरे पृष्ठ की " ६०) प्रति अङ्क

वर्षभर तक टाइटलके दूसरे तीसरे पृष्ठ की छपाई १६०) रु०

त्रैमासिक 'श्रीस्वाध्याय' के पृष्ठका आकार २०×३० अठपेजी। कालम स्थान ८×३ इञ्च है।

आधे पृष्ठसे अधिक विज्ञापन देने वालोंको 'श्रीस्वाध्याय' बिना मूल्य भेजा जावेगा। छपाईकी रकम पेशगी प्राप्त होने पर ही विज्ञापन पत्रमें छापा जावेगा।

इस विज्ञापन शुल्कमें किसी प्रकारकी रियायत वा न्यूनताके लिए लिखना व्यर्थ है।

पता—व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन, (शिमला)

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन



गताङ्ककी सूचनाके अनुसार कई प्रेमी ग्राहकोंने भाद्रपद कृ० ३० ता० ६ सितम्बरसे पूर्व ही अपना अपना चतुर्थ वर्षका मूल्य ३।।) भेज दिया था। परन्तु कई ग्राहकोंने उस सुविधासे लाभ नहीं उठाया, अतः जिन ग्राहकोंने अपना पंचम वर्षका मूल्य अभी तक नहीं भेजा है वे यदि शीघ्र ही ३।।) भेज देंगे तो उन्हें यह अंक प्राप्त हो सकेगा, अन्यथा विलम्ब करने पर चतुर्थ वर्षके नववर्षाङ्ककी भांति इस अङ्कसे भी उन्हें वञ्चित रहना पड़ेगा।

बहुतसे ग्राहक वार्षिक मूल्य भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर अपना नाम पता और ग्राहक संख्या नहीं लिखते और कई उर्दू में अस्पष्ट अक्षरोंमें लिखते हैं, इससे हमें बड़ी कठिनाई होती और अङ्क भेजनेमें भी विलम्ब हो जाता है अतः पुराने ग्राहकोंको अपनी ग्राहक संख्या (जो 'श्रीस्वाध्याय' के रैपर-पतेके कागज-पर लिखी रहती है) और नये ग्राहकोंको अपना पूरा पता कूपन पर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिए।

संस्थाकी ओरसे जो पुस्तकें प्रकाशित हैं या होती हैं,—वे ग्राहकोंको एक ही बार भेजी जाती हैं। प्रतिवर्ष वे ही पुस्तकें दुबारा भेजनेका नियम नहीं है।

यह विशेषाङ्क जिन ग्राहकोंके ३।।) प्राप्त हुए थे उन्हें रजिस्ट्री तथा ३।–) भेजने वालोंको पोस्टल सर्टीफिकेटसे सुरक्षित रूपमें भेजा जा रहा है। फिर भी यदि किसी ग्राहकको समय पर न मिल सके तो इसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं है, उन्हें अपने स्थानीय पोस्ट आफिससे जांच पड़ताल करनी चाहिए। जिन ग्राहकोंका मूल्य पहले मनोआर्डर द्वारा प्राप्त हो चुका है उन्हींको सर्वप्रथम यह अङ्क भेजा जा रहा है। बी० पी० बादमें भेजी जावेंगी, अतः वी० पी० पी० से मंगवाने वालोंको अङ्क विलम्बसे पहुंचे वा समाप्त होने पर न मिल सके तो वे लोग क्षमा करें।

विजयादशमी (शास्त्रास्त्र) पूजन विधि

उपाध्याय कर्मकाण्डी पुरोहित वर्गके लाभार्थ श्रीयुत विद्वद्वर पं० हनुमान् शर्माजी चौमूं (जयपुर) द्वारा सम्पादित उक्त विधि श्रीस्वाध्यायसदन ने अपने ग्राहकोंको उपहारमें भेंट करनेके लिए इस वर्ष प्रकाशित की है। अधिकारी वर्ग ग्राहक बनकर यह विधि बिना मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

उत्तरके लिए जवावी कार्ड या टिकट भेजें

'श्रीस्वाध्याय' की दैनिक डाकमें अनेकों पत्र ऐसे आते हैं जो तत्काल उत्तर पानेकी इच्छा रखते हैं—ऐसे सज्जनोंको चाहिए कि जवाबी कार्ड या टिकट भेजें, अन्यथा उन्हें समय पर उत्तर न मिल सकेगा।

धारा प्रेस मैनेजरकी अत्यन्त अनवधानता और अन्तिम आर्डरी प्रूफ हमें न दिखलानेसे पृष्ठ २५ से ४० तकके मेटरमें कहीं कहीं अक्षर और मात्राएं टूटी हुई होने, निकलजाने वा आगे पीछे खिसक जानेसे कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। पृष्ठ ३७ पर 'नवरात्र और विजयादशमी' के लेखके शीर्षकमें 'नवरात्र' के स्थानमें 'नवत्रार' छपा है; पाठक सुधार कर पढ़नेकी कृपा करें। शीघ्रताके कारण उक्त प्रेसमें छपे ५ फर्मे पृष्ठ २५ से ६० तक हमें ऐसे ही लगाने पड़े हैं।

निवेदक—**व्यवस्थापक, श्रीस्वाध्यायसदन, सोलन (शिमला)।**

सम्मान्य लेखकोंकी सेवामें—



श्रीयुत प्रो० भगवद्दत्तजी B. A. रिसर्चस्कालर, श्री डा० कैलाशनाथजी भटनागर M.A.PH.D. ज्योतिषमार्तण्ड श्री पं० मदनलालजी शास्त्री, श्री पं० कृष्णचन्द्रजी ओझा, श्री प्रो० रमन, श्री पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, रायबहादुर श्री पं० लज्जाशङ्कर झा, श्री पं० रामनिवासजी शर्मा, श्री पं० सूर्यनारायणजी व्यास, श्री पं० पुरुषोत्तमजी शर्मा चतुर्वेदी, श्री पं० गोवर्द्धनदासजी महता (स० सम्पादक 'विश्वमित्र') श्री पं० गोविन्दजी मिश्र, श्री डा० मनोरथरामजी शास्त्री आदि अनेकों महानुभावोंकी मौलिक रचनाएं—कविता, कहानी, नाटक आदि — चाहते हुए भी हम इस अङ्कमें नहीं दे सके। कारण 'धारा प्रेस' दिल्ली वालोंने ठीक समय पर हमें धोखा दिया। परिणाम स्वरूप ६० पृष्ठके लगभगका मेटर सहास रोककर १४० पृष्ठमें ही इस अङ्कको समाप्त करना पड़ा। इस विवशताके लिए हम अपने आदरणीय विद्वान् लेखकोंसे क्षमा प्रार्थी हैं। सभी मौलिक रचनाएं आगामी अङ्कोंमें प्रकाशित की जायेगी। पाठकगण प्रतीक्षा करें।



'श्रीस्वाध्याय' के पांच स्तम्भोंमें—

पांचों स्तम्भोंमें आने वाले लेखोंकी विस्तृत तालिका गताङ्कोंमें दी जा चुकी है। यहां संक्षिप्तरूपमें दी जा रही है—

१ मोक्षस्तम्भमें—भारतीय दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, शैव, शाक्त आदि मतोंके संक्षिप्त परिचय। पारमार्थिक मोक्ष, व्यावहारिक मोक्ष आदि-आदि।

२ धर्मस्तम्भमें—वेदोंका स्वाध्याय। राष्ट्रिय शिक्षा। घरेलू शिक्षा। धर्म-रहस्य। पर्व और त्यौहारों का राष्ट्रिय महत्त्व। ज्योतिश्शास्त्रानुसार भविष्यवाणियां खगोलके ग्रह नक्षत्रादिकोंका परिचय।

३ अर्थस्तम्भमें—अर्थशास्त्र। चाणक्यके विचार। राष्ट्रको समृद्ध करनेके उपाय। व्यापार। महर्घ-सहर्घ (तेजी-मन्दी) विचार। आर्थिक दृष्टिसे कलाओंका विचार। युद्धसे आर्थिक हानि लाभ। कृषि से अर्थ प्राप्ति आदि आदि।

४ कामस्तम्भमें—आयुर्वेद। दीर्घजीवी एवं तेजस्वी बननेके उपाय। कलाकौशल। घरकी स्वच्छता और पवित्रता। बच्चोंका पालन पोषण। पशु पालन आदि-अदि।

५ इतिहासस्तम्भमें—इतिहास जाननेके साधन। भारतीय ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके परिचय। भौगोलिक परिचय। महापुरुषोंके जीवनचरित्र। प्रत्येक वस्तु पर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।

६ विशेष—इसके अतिरिक्त 'श्रीस्वाध्याय' में कुछ सामयिक लेख भी रहेंगे। प्रत्येक अङ्ककी त्रैमासिक अवधिमें जो-जो विशेष पर्व त्यौहार या जिन २ अवतारों एवं महापुरुषोंकी जयन्तियां आवेंगी उन-उन पर विशेषरूपसे प्रकाश डाला जावेगा। आगामी अंक (हेमन्ताङ्क) के लिए विद्वान् महानुभाव शीघ्रातिशीघ्र सुविचारपूर्ण लेख भेजें।

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। ❀ श्रीः ❀ स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्।

श्रीस्वाध्याय

[शरदंक]

स्वराष्ट्रशिक्षां गृह्णीयाच्चिकीर्षुः स्वां समुन्नतिम्।
दूरदृष्टिर्यया भूत्वा न कदाऽपि विषीदति [राष्ट्रालोक]

वर्ष ५ | सोलन, आश्विन शु० १० मंगलवार सं० २००२ वि० | संख्या १

तत्तद्राष्ट्रे मानवानां व्यवस्थां शोभासम्पच्छालिनीमार्यरीत्या।
प्रेम्णा लोके स्थापयँस्तत्त्वदर्शी श्रीस्वाध्यायः कल्पतां विश्वभूत्यै॥
—अ० वा० आचार्य

स्वाध्याय-महिमा

[श्री १०८ आचार्य अमृतवाग्भव जी महाराज]

कृतघ्नानां दुःशासननिपतितानामविदुषां
नृणामीक्षामात्राद्विदलयति गाढां कुधिषणाम्।
सृतिं स्वातन्त्र्यस्य प्रसृमररुचिं स्फारयति तं
कृताय स्वाध्यायं भरतजगती जागरयतु॥ १॥

अविद्यामुन्मूल्य प्रथयति सुविद्यां जगति यः
सुखोपायाँल्लोकान् सरलसरलान्बोधयति च।
चतुर्वर्गाऽपेतां क्षपयति कुरीतिं सपदि तं
विहाय स्वाध्यायं जगति न सहायो विजयते॥ २॥

पञ्चम-वर्षमें पदार्पण

पुरुषार्थचतुष्टयावाप्ति ही मनुष्य जन्मका मुख्य लक्ष्य है। जिसने मानव शरीर धारण करके भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ चतुष्टयको सम्यक् उपार्जित नहीं किया, उसका मानव देह धारण करना सर्वथा व्यर्थ ही है। किन्तु वर्तमान युगमें जहां एक ओर सांसारिक सुख-सुविधाओंको प्राप्त करनेके अनेकानेक सुलभ उपाय नित्य नवीन रूपमें आविष्कृत हो रहे हैं, वहां दूसरी ओर मानव-समाजने अपने अभ्युदय और निश्रेयसकी प्राप्तिके लिए बहुत ही स्वल्प प्रयत्न किया है और न ऐसे साधन ही विद्यमान हैं जिनके द्वारा साधारण मनुष्य भी सरलतापूर्वक 'चतुवर्गफलावाप्ति' रूप परमलक्ष्यको सरलतापूर्वक प्राप्त कर सके।

आधुनिक वैज्ञानिक युगमें पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यद्यपि बहुत कुछ जनताके लिए पथ प्रदर्शनका कार्य सम्पन्न हुआ है; तथापि यह मानना ही होगा कि आज तक प्रकाशित सम्पूर्ण पत्र पत्रिकाएं एकाङ्गी और अपने क्षेत्रमें संकीर्ण दृष्टिकोण वाले ही प्रमाणित हुए हैं। उनमेंसे कोई तो 'अर्थ' और 'काम' को ही अपना चरमलक्ष्य मानकर चले हैं, तो कइयोंने इन दोनोंकी बिल्कुल उपेक्षा कर केवल धर्मकी ओर अपनी प्रवृत्ति दिखाई। 'मोक्ष' और उसकी प्राप्तिके साधनोंको तो किसी भी पत्र पत्रिकाने अपना लक्ष्य नहीं बताया।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि 'मोक्ष' स्वातन्त्र्य शब्दसे दोनों प्रकार की — ऐहिक और आमुष्मिक-स्वतन्त्रता विवक्षित है। जब तक कोई मनुष्य, समाज या राष्ट्र ऐहिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसके लिये पारलौकिक स्वतन्त्रता या 'मुक्ति' प्राप्त करना कठिन ही नहीं प्रत्युत नितान्त असम्भव ही है। यदि कोई कहे कि हम इस संसारमें पराधीन रहकर भी पारलौकिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेंगे तो उनके इस कथन को ढोंग या केवल मात्र भ्रम न कहा जाय तो क्या?

इसलिए भारतीय साहित्यमें—पत्र पत्रिका जगत् में—एक ऐसे आदर्श-पत्रका नितान्त अभाव सहृदयों को बहुत खटकता था जो 'धर्म' 'अर्थ' और उभयविध 'मोक्ष' की प्राप्तिके सरलतम साधन बतला कर विश्वको वास्तविक उन्नतिके पथ पर अग्रसर कर सके। इस अभावकी पूर्तिके सदुद्देश्यसे प्रेरित होकर ही श्री १०८ पूज्यपाद आचार्य अमृतवाग्भव जी महाराज ने 'श्रीस्वाध्यायसदन' की स्थापना कर 'श्रीस्वाध्याय' त्रैमासिक पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया।

विगत चार वर्षों में इस पत्रको अनेकानेक विकट एवं विषम परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा है। वास्तवमें पिछले कुछ वर्ष सभी पत्र-पत्रिकाओंके लिए इतने भयंकर सिद्ध हुए कि कई एक बहुविध साधन-सम्पन्न प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंको भी अपना प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ा। यह उस परम प्रभुकी अपार कृपा, आचार्यचरणोंके शुभाशीर्वाद व पत्रके सम्मान्य संरक्षक, सहायक और विद्वान् लेखक सज्जनोंकी अपार उदारता एवं कृपालु ग्राहकगणकी श्रीस्वाध्याय के प्रति दृढ़ निष्ठा हीका परिणाम है कि ऐसे समयमें भी पंजाब सरीखे हिन्दीके लिये मरुभूमिप्रायप्रदेश से प्रकाशित होने वाला यह 'श्रीस्वाध्याय' पत्र न केवल अपनी सत्ताको ही बनाये रख सका, प्रत्युत उत्तरोत्तर उन्नति पथ पर अग्रसर होता रहा।

अब इस पंचम वर्षमें पदार्पण करते हुए हम अपने समस्त सहयोगियों, संरक्षकों, सहायकों, प्रेमी पाठकों, ग्राहकगणों एवं विज्ञ लेखकोंसे आशा रखते हैं और साथ ही साथ प्रार्थना करते हैं कि वे पहिलेसे भी अधिक तन, मन, धनसे 'श्रीस्वाध्याय' को सहयोग तथा उत्साह प्रदान कर जाति देश व धर्म की हमें अधिकाधिक सेवा करनेका सुअवसर देंगे, जिससे उनका यह 'श्रीस्वाध्याय' अपने राष्ट्र और समग्र विश्वको वास्तविक रूपमें उन्नत बनानेमें सफल हो।

— हरदेव शर्मा त्रिवेदी (सम्पादक)

शक्तिपूजा

राष्ट्रकाली राष्ट्रलक्ष्मीस्तथा राष्ट्रसरस्वती । सेवनीया प्रयत्नेन भोगमोक्षप्रदायिनी ॥ (राष्ट्रलोक का० ८३)

भारतवर्ष आज सम्पूर्णरूपेण परतन्त्रतापाशमें पड़ा हुआ है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि परतन्त्रराष्ट्र शक्तिकी उपसना करना भूल जाते हैं, अथवा यों कहें कि शक्तिपूजासे विमुख हो जानेके कारण ही राष्ट्र परतन्त्रताके बन्धनोंमें पड़ जाया करते हैं। यह शक्ति तत्त्वतः एक होती हुई भी उपाधिभेदसे १—इड़ा (अर्थात् राष्ट्रकाली) २—मही (राष्ट्रलक्ष्मी) तथा ३—सरस्वती (राष्ट्रसरस्वती) भेदोंसे त्रिधा कही गई है। राजनैतिक स्वातन्त्र्य प्राप्ति व संरक्षणके लिए राष्ट्रकाली, आर्थिक स्वातन्त्र्य प्राप्ति व संरक्षणके लिए राष्ट्रलक्ष्मी, तथा सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य प्राप्ति और संरक्षणके लिए राष्ट्रसरस्वती रूपिणी शक्तिकी उपासना करना नितान्त आवश्यक है। इसी लिए तो वेद भगवान् स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि—

ॐ इड़ा सरस्वती मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ऋ० १ । १३ । ६

इन तीनों शक्तियोंका प्रवाह राष्ट्रमें निरन्तर बहता रहे इस पुनीत भावनासे प्रेरित होकर हमारे क्रान्तदर्शि महर्षियोंने अत्यन्त सुन्दर लोकहितकर सरल व्यवस्था बना दी थी। किन्तु, हम इतने आलस्याक्रांत अकर्मण्य और असावधान हो गये कि निर्दिष्ट मार्ग पर भी न चल सके —नित्य नव-नव मार्गों–उन्नतिके साधनों—का अनुसंधान तो कहीं दूर रहा, हम अपने प्राचीन मार्गका भी अनुसरण न कर पाये, अस्तु ।

उक्त शक्तित्रयकी उपासना आराधना निरवच्छिन्न रूपसे होती रहे इसी उद्देश्यको लक्ष्य रखते हुए समाजको तीन प्रमुख वर्गोंमें विभक्त कर ब्राह्मणवर्ग के लिए राष्ट्रसरस्वती, क्षत्रियवर्गके लिए राष्ट्रकाली एवं वैश्यवर्गके लिये राष्ट्रलक्ष्मीकी उपासना करते रहनेका महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा गया था। (किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक वर्ग अपनी इष्टदेवता अथवा निर्धारित शक्तिको छोड़कर दूसरी शक्तियोंकी पूजा नहीं कर सकता, प्रत्युत इतना ही कि प्रत्येक वर्गका अपनी इष्टदेवताकी उपासना तो अपरिहार्य एवं प्रधानतम कर्त्तव्य है, उसकी उपासना करते हुए प्रत्येक वर्गको दूसरी शक्तियोंकी भी उपासनाका पूर्णाधिकार है)।

प्रतिवर्ष प्रत्येक वर्ण अपनी शक्ति-साधनाको उत्तरोत्तर उन्नत करता रहे— अपनी पूर्वकृत साधना का परीक्षण करता रहे—इसीलिए शक्तित्रय उपासना क्रमको बढ़ाते रहनेके लिये ही १ श्रावणी, २ विजयादशमी, ३ दीपावली महोत्सव मनानेका आयोजन किया गया था। किन्तु दुःखसे कहना पड़ता है कि सभी वर्ग अपने दायित्वको— शक्ति-उपासनाको—भुलाकर स्वकर्तव्यपराङ्मुख हो रहे हैं और परिणाम स्वरूप राष्ट्र अवनति, दासता एवं दुर्दशाक्रान्त हो रहा है। यों तो हमारे महान् भारतराष्ट्रको सम्प्रति तीनों शक्तियोंकी उपासनाकी परम आवश्यकता है, पर उनमेंसे राष्ट्रकालीकी उपासना तो नितान्त वांछनीय है। क्योंकि स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जगदीशचन्द्र वसु, श्री चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन, पूज्य महामना मालवीयजी सरीखे सरस्वतीके वरद पुत्रों द्वारा अपनी इष्टदेवता 'सरस्वती' की उपासना तो किसी न किसी रूपमें हो ही रही है। शेष रही लक्ष्मीकी उपासना, सो जहां काली और सरस्वतीकी उपासना विधिवत् होती रहे वहां लक्ष्मीकी उपासना तो स्वतः ही होने लग पड़ती है। यहां पर स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय सभ्यता—आर्यसभ्यता—का दूसरा नाम ही शाक्त सभ्यता है—शाक्तधर्म और 'ब्राह्मणधर्म' दोनों पर्यायवाचक हैं, जैसा कि कहा है—

सर्वे शाक्ताः द्विजाः प्रोक्ताः न शैवा न च वैष्णवाः ।
आदौ देवीमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम् ॥

जबसे हमने अपने धर्मको—शक्ति उपासनाको—छोड़ा तभीसे हमारा पतन आरम्भ हो गया। यह तो सर्वविदित ही है कि बौद्ध-धर्म शाक्त धर्मका विरोधी है। अब यदि आप अपने प्राचीन इतिहास के पन्ने उलट कर देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार शाक्तधर्मसे पराङ्मुख हो जानेके कारण ही राष्ट्रोन्नति सहसा रुक गई। देखिये, मौर्य साम्राज्य कितना विस्तृत एवं उन्नत हो गया था, पर ज्यों ही अशोकने क्षात्र अथवा शाक्तधर्मको त्याग कर बौद्ध धर्मकी शरण ली कि वह महान् मौर्य साम्राज्य सहसा समाप्त हो गया। किन्तु राष्ट्रने पुनः अपने आपको पहिचाना– शाक्तधर्मको– भगवती महाकालीकी उपासनाको अपनाया—अश्वमेध यज्ञका पुनः प्रचार प्रारम्भ हुआ, फिर क्या था बातकी बातमें भारतने वह गौरवशाली समृद्ध व उन्नत युग देखा जिसे संसार के इतिहासमें भारतीय स्वर्णयुगके नामसे स्मरण किया जाता है। पर सम्राट् 'हर्ष' ने फिर वही भूल की जो 'अशोक' कर चुके थे, उन्होंने भी शाक्तधर्म की अपेक्षा बौद्धधर्मको अधिक मान्यता दी और जैसा कि स्वाभाविक था परिणामस्वरूप हर्ष 'अन्तिम हिन्दू सम्राट' बनकर रह गये और भारत युगोंके लिए परतन्त्रता पाशमें आबद्ध हो गया।

इस प्रकार अपने इतिहासका सिंहावलोकन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकाली की उपासनासे विमुख हो जानेके कारण ही राष्ट्रको यह दुर्दिन देखने पड़ रहे हैं। यदि अशोक और हर्ष शाक्त धर्मकी उपेक्षा कर बौद्धधर्मको न अपनाते, यदि वे प्रतिवर्ष विजयादशमीके अवसर पर शक्तिकी उपासनाके निमित्त अपने प्रमुख कर्तव्य 'सीमोल्लंघन' का पालन करते रहते तो आज न केवल भारत प्रत्युत सम्पूर्ण विश्वमें आर्य साम्राज्यकी पताका फहरा रही होती। महाकालीकी उपासना, विजयादशमीका उत्सव तथा सीमोल्लंघन कर्म ये तीनों हमारी राष्ट्रिय-चेतनाके-राजनैतिक स्वातन्त्र्यके-जागृत प्रतीक हैं।

अतः यदि भारतीय चाहते हैं कि वे अपने विगत गौरवको, विलुप्त स्वातन्त्र्यको पुनः प्राप्त कर लें तो उन्हें फिरसे सच्चे शाक्त, वास्तविक अर्थमें महाकाली के उपासक अथवा सम्पूर्ण क्षत्रिय बनना होगा। बिना क्षात्रभावनाओंके जागृत किये भारत कदापि स्वतन्त्र व उन्नत नहीं हो सकता। क्योंकि शाक्त-क्षात्र-धर्मके लुप्त हो जाने पर राष्ट्रका सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है। इसीलिये भगवान् वेदव्यास लिखते हैं—

मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां
सर्वे धर्मा प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः
क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे॥
(महाभारत शां० प० ६३। २८)

भगवान् श्रीकृष्णने भी सम्पूर्ण गीतामें एकमात्र क्षात्रधर्मका ही उपदेश दिया है—

"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय! युद्धाय कृतनिश्चयः।"

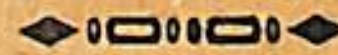
यही गीताका सार अथवा प्राण है। तथा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम तो क्षात्र-शाक्त-धर्मके जाज्वल्यमान जागृत प्रतीक ही हैं, इसीलिए भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें 'रामःशस्त्रभृतामहम्' के रूपमें स्मरण किया है।

किन्तु, हन्त! भारतकी कैसी दुर्दशा हो गयी, राम और कृष्णके नाम लेवा क्षात्रधर्मके अनुयायी आर्य आज अपने कर्तव्यसे—शक्तिपूजासे—अपने पूर्वजोंके आदर्शों एवं उपदेशोंसे विमुख हो भगवान् राम और कृष्णके कार्योंका अनुकरण करना तो कहीं दूर रहा केवल उनके स्वांग रचकर रावणकी कागजी प्रतिमाओंको जलाकर अपने कर्तव्यकी 'इति-श्री' समझने लगे हैं। अपनी पाशविक प्रवृत्तियोंके बलिदान व आततायियोंके वधके स्थान पर मूक निरीह पशुओं पर तलवार चला अपने करोंको कलङ्कित करनेमें वीरता और क्षात्रधर्मका अनुभव करने लगे हैं।

राष्ट्रका इस दुरवस्थासे उद्धार करनेके लिए प्रत्येक विज्ञ व्यक्तिका प्रधान कर्तव्य है कि वह अबसे अपनी मातृभूमिका सच्चा सैनिक-वीर क्षत्रिय—बनकर अपने कर्तव्यको पूर्ण रूपेण पालन करनेका प्रण करे। भगवती महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूपिणी

आत्मज्ञानका सरल योग

[लेखक—श्री १०८ ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेवजी महाराज]



योग अनेक प्रकारके होते हैं—जैसे राजयोग, कर्मयोग, हठयोग, लययोग, सांख्ययोग, क्रियायोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, विज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, विवेकयोग, विभूतियोग, प्रकृति-पुरुषयोग, मन्त्रयोग, पुरुषोत्तमयोग, मोक्षयोग, राजाधिराजयोग इत्यादि। सीधी बात तो यह है कि व्यापक कर्ममात्रको ही योग कहा जाता है, परन्तु वे सब एक ही योगके अर्थात् जीवात्मा परमात्माके मिलनके ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग मात्र हैं। योगी याज्ञवल्क्यजीने भी इसे ही योग कहा है—

"संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः"

अर्थात् जीवात्मा और परमात्माके मिलनका ही नाम योग है। अनेक प्रकारके योगोंके नाम सुने जाते हैं, तो भी योग एक ही प्रकारका होता है, दो या अधिक प्रकारका नहीं। उस एक ही प्रकारके योग-साधनकी सोपानस्वरूप जितनी प्रक्रियाएं हैं, वे सब ध्यान विशेषमें—उपदेश विशेषमें एक-एक स्वतन्त्र योगके नामसे पुकारी जाती हैं। तथापि जीवात्मा और परमात्माका संयोग साधन ही योगका प्रकृत उद्देश्य है।

सब साधनोंका मूल अर्थात् सर्वोत्कृष्ट साधन योग ही है। शास्त्रमें भी लिखा है कि वेदव्यास पुत्र श्री शुकदेवजीने पूर्व जन्ममें किसी वृक्षकी शाखामें छिपकर भगवान् शिवके मुखसे निकला हुआ योगोपदेश श्रवण किया था और उसीसे पक्षियोनिसे उद्धार पाकर परजन्ममें वह परम योगी बन गए। योगका उपदेश सुनने मात्रसे जब इतना लाभ होता है, तब उसकी साधना करनेसे ब्रह्मानन्द तथा सब सिद्धियोंके प्राप्त होनेमें क्या संदेह है।

योग-धर्म जगत्का एक मात्र पथ है। मुसलमानों के अल्लाह और ईसाइयोंके ईसा पृथक् पृथक् हैं। फिर जब ईसाई और मुसलमान अपने अपने अभ्यास के द्वारा आत्मलीन हो जाते हैं तब वह अज्ञातभावसे भी योगके बिना और क्या किया करते हैं? किन्तु किसी भी देशका कोई भी धर्मशास्त्र आर्य योगधर्मकी भांति परिणत और परिपुष्टिको प्राप्त नहीं हुआ है। अतः अन्यान्य जातियोंके सम्बन्धमें चाहे जो बात हो, परन्तु भारतीय तन्त्र मन्त्र, पूजा पद्धति भक्ति आदि सभी योगमूलक ही हैं।

योगाभ्यास द्वारा चित्तकी एकाग्रता प्राप्त हो जाने पर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। एवं उसी ज्ञानसे जीवात्माकी मुक्ति होती है। वह मुक्तिदाता परम ज्ञान योगके बिना केवल शास्त्र पढ़नेसे प्राप्त नहीं हो सकता। भगवान् शंकरने कहा है—

अनेक शतसंख्याभिस्तर्कव्याकरणादिभिः।
पतिताः शास्त्रजालेषु प्रज्ञया ते विमोहिताः॥
(योगबीज)

शक्तिका उपासक बन अपने प्राचीन शाक्त—क्षात्र—धर्मका प्रचार करनेके लिए कटिबद्ध हो जाये, क्योंकि क्षत्रियत्वके जागृत होने पर ही राष्ट्र स्वतन्त्र व समुन्नत हो सकेगा। पंचमवर्षमें पदार्पण करते हुए शक्ति पूजाका यही वास्तविकसन्देश हम अपने प्रेमी पाठकों तक पहुंचाना चाहते हैं। क्योंकि शक्ति उपासनाके प्रचार द्वारा पूर्ण स्वातन्त्र्य प्राप्तिका महत्त्वपूर्ण सन्देश राष्ट्र भरमें प्रथित करनेकी पुनीत भावनासे प्रेरित होकर ही आजसे चारवर्ष पूर्व इसी विजया दशमी के शुभावसर पर प्रस्तुत पत्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था।

सैंकड़ों तर्कशास्त्र तथा व्याकरण आदि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जालमें फंसकर केवल विमोहित हो जाते हैं। वास्तवमें प्रकृतिज्ञान योगाभ्यासके बिना उत्पन्न नहीं होता।

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिबन्ति पण्डिताः॥
(ज्ञानसकंलिनी तन्त्र ५१)

वेद चतुष्टय तथा सब शास्त्रोंको मथकर उसका मक्खन स्वरूप सारभाग योगी चाट गये हैं और उसका असार भाग तक (छाछ) पण्डित लोग पी रहे हैं। शास्त्र पढ़नेसे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह मिथ्या तथा कोरी डीङ्ग मात्र है—वह प्रकृत ज्ञान नहीं। बाहरकी ओर मुंह किये हुए मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको सब बाहरी विषयोंसे निवृत्त करके अन्तर्मुखी करते हुए सर्वव्यापी परमात्मामें मिलानेका नाम ही वास्तविक ज्ञान है।

वह ज्ञान योगाभ्यासके बिना प्राप्त नहीं होता। साधारण लोगोंका जो ज्ञान है वह केवल भ्रान्त ज्ञान है। क्योंकि सभी जीव मायाके पाशमें जकड़े हुए हैं और मायाकी पाश (फन्दा) तोड़े बिना सच्चा ज्ञान नहीं उपजता। मायाका फन्दा तोड़ कर सच्चा ज्ञानालोक प्राप्त करनेका उपाय योग है। योग साधन के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारसे भी मोक्षका हेतुभूत जो दिव्य ज्ञान है, वह नहीं प्राप्त होता। योग विहीन सांसारिक ज्ञान वास्तवमें अज्ञान मात्र है, उससे केवल सुख दुःखका अनुभव होता है। मुक्ति पथ पर चलनेमें सहायता नहीं मिलती। परमयोगी महादेवजीने अपने मुखसे कहा है :—

योग हीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि ?
(योगबीज १८)

"हे परमेश्वरि ! योग विहीनज्ञान कैसे मोक्षदायक हो सकता है ?" सदाशिवजीने योगकी श्रेष्ठता बताकर पार्वतीजीको सुनाया था—

ज्ञान निष्ठो विरलोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये !॥
(योगबीज ३१)

हे प्रिये ! ज्ञानवान्, संसार विरक्त, धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय अथवा कोई देवता भी योगके बिना मुक्ति नहीं पा सकता। बिना योगके केवल साधारण नाम मात्रके ज्ञानसे ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त होता। योग रूपी अग्नि अशेष पापपुञ्ज गला देती है एवं योगके द्वारा दिव्यज्ञान प्राप्त होता है। उस ज्ञानसे ही लोग दुर्लभ निर्वाण-पद पाते हैं। अब सुधी सज्जन समझ गये होंगे कि योग साधनके अतिरिक्त दिव्यज्ञान प्राप्त करनेका दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है। अब देखना चाहिये कि—

योग क्या है ?

सर्व चिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।
(योग शास्त्र)

जिस समय मनुष्य सब चिन्ताओंका परित्याग कर देता है उस समय उसके मनकी उस लयावस्था को योग कहते हैं। और—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"
(पातंजलसमाधिपाद २)

अर्थात् "चित्तकी सभी वृत्तियोंको रोकनेका नाम योग है।" वासना और कामनासे लिप्त चित्तको वृत्ति कहा है। इस वृत्तिका प्रवाह जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंमें मनुष्यके हृदय पर प्रवाहित होता है। चित्त सदा सर्वदा ही अपनी स्वाभाविक अवस्थाको पुनः प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करता रहता है, किन्तु इन्द्रियां उसे आकर्षित कर लेती हैं। उसको रोकना एवं उसकी बाहर निकलनेकी प्रकृतिको निवृत्त करके उसे फिर पीछे घुमाकर चिद्घन पुरुषके पास पहुँचनेके पथमें ले जानेका नाम ही योग है। हम अपने हृदय चेतनघन पुरुषको क्यों नहीं देख पाते ? कारण यही है कि हमारा चित्त हिंसादि पापोंसे मैला और आशादि वृत्तियोंसे आन्दो-

लित हो रहा है। यम नियमादिकी साधनासे चित्तका मैल छुड़ाकर चित्तको रोकनेका नाम योग है।

अब इस योग साधनका सरल उपाय जिसके द्वारा अपने जीवनमें मुझे कुछ लाभ हुआ है, आप लोगोंके सामने रखनेका साहस करता हूं। योगकी साधना करनेसे पहले सम्यक् रूपसे शरीर-तत्त्व जान लेना उचित है। विस्तारभयसे मैं यहां उसका उल्लेख न कर केवल साधना-विधि ही लिखता हूँ, जो उसे जानना चाहते हों उन्हें पातंजल योग-शास्त्र या 'योगीगुरु' 'ज्ञानीगुरु' नामक पुस्तकोंका अवलोकन करना चाहिये।

योगके आठ अङ्ग हैं। उन्हींका साधन करना होता है।

साधनाका अर्थ है अभ्यास। योगके आठ अङ्ग इस प्रकार हैं:—

यमश्च नियमश्चैव आसनं च तथैव च।
प्राणायामस्तथा गार्गि प्रत्याहारश्चधारणा॥
ध्यानं समाधि रेतानि योगाङ्गानि वरानने!
(योगीयाज्ञवल्क्य १।४५)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ ही योगके अङ्ग हैं। योगका साधन करना हो अर्थात् पूर्ण मनुष्य बनकर स्वरूप ज्ञान प्राप्त करना हो तो योगके इन आठों अङ्गोंकी साधना यानी अभ्यास करना चाहिये।

पहले नियमके साथ ही साथ आसनका अभ्यास करना उचित है। आसन किसे कहते हैं?

"स्थिरसुखमासनम्।"
(पातंजल साधना पाद ४६)

शरीर न हिले, न डुले, न दुखे, न चित्तमें किसी प्रकारका उद्वेग हो, ऐसी अवस्थामें बैठनेका नाम आसन है। योग शास्त्रमें अनेक प्रकारके आसन बताये गए हैं, उनमेंसे योग साधनके लिए सिद्धासन सर्व श्रेष्ठ है। जीवन्मुक्त महापुरुष और सिद्ध योगी सिद्धासन तथा मुक्त-पद्मासनका उपदेश देते हैं। सिद्धासन कैसे करना चाहिये?

योनिस्थानकमङ्घ्रि मूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा समं विग्रहम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियो ऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरन्तरं
चैतन्याख्य कपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते॥
(गोरक्ष-संहिता १)

"योनिस्थानको वाम पादके मूलदेशसे दबाकर, दूसरे चरणसे मेढ्देशको आबद्धकर हृदयमें ठोडी जमाकर, देहको सीधा रखकर और दोनों भौहोंके मध्य देशमें दृष्टि स्थापित करके यानी शिवनेत्र होकर निश्चल भावसे बैठनेका नाम सिद्धासन है।" सिद्धासन सिद्धि प्राप्त करनेके लिए सहज और सरल आसन है। सिद्धासनका अभ्यास करनेसे अति शीघ्र योगमें सिद्धि प्राप्त होती है। इसकी साधनासे किसी प्रकारका अनिष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है। इसके द्वारा बहुत शीघ्र योगमें सिद्धि मिलनेका कारण यह है कि लिङ्गमूलमें जीव तथा कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित है। सिद्धासनके कारण वायुका पथ सरल तथा सहजगम्य हो जाता है। इससे स्नायुओंका विकास होता है और समस्त शरीरकी बिजलीके लिए चलने फिरनेका सुभीता हो जाता है। योग शास्त्रमें कहा है कि सिद्धासन मुक्तिवाले द्वारके किंवाड़ खोलता है तथा सिद्धासनसे आनन्दकारी उन्मनी (समुन्नत) दशा मिलती है। सभी सज्जन सरलतासे सिद्धासन कर सकते हैं।

अब पद्मासनकी बात सुनिये—

"आसनं पद्मकमुत्तमम्।"
(गरुड़ ४१)

और भी—

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि चैव बन्धनविधी धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
तत्पृष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेद्
एतद्व्याधिविकार नाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते॥
(गोरक्ष संहिता १२)

बांई जांघपर दाहिना पैर और दाहिनी जांघपर बायां पैर रखकर, दोनों हाथ पीठकी ओर घुमाकर बायें हाथसे बायें पैरका और दाहिने हाथसे दाहिने पैरका अंगूठा पकड़ना चाहिये, फिर छातीमें ठोडी सटाकर नाककी नोंक पर दृष्टि जमानी चाहिये। इस भांति बैठनेका नाम पद्मासन है।

पद्मासन दो प्रकारका है—मुक्त और बद्ध। उपर्युक्त नियमसे बैठनेको बद्ध पद्मासन कहते हैं; तथा हाथोंको पीठकी ओर घुमाकर अंगूठे न पकड़, दोनों जांघोंपर दोनों हाथ चित रखकर बैठनेका नाम मुक्त पद्मासन है।

पद्मासन लगानेसे निद्रा, आलस्य जड़ता प्रभृति देहकी ग्लानि निकल जाती है। पद्मासनके प्रभावसे कुण्डलिनी चैतन्य हो जाती है एवं दिव्य ज्ञान प्राप्त होता जाता है। पद्मासन लगाकर दांतकी जड़में जीभ की नोंक जमानेसे सब प्रकारके रोग दूर होते हैं।

इन दो प्रकारके आसनोंके अतिरिक्त स्वस्तिकासन, भद्रासन, उग्रासन, वीरासन, मण्डूकासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, गुप्तासन, योगासन, शवासन, सिंहासन, मयूरासन, शीर्षासन आदि अनेक प्रकार के आसन प्रचलित हैं सही, किन्तु अनेक प्रकार के आसनोंका अभ्यास करनेमें समय नष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त दोनों प्रकारके आसनों में जिसे जिस प्रकारके आसनमें सुभीता प्रतीत हो उसे उसी आसनका अवलम्बन कर योगाभ्यास करना चाहिए।*

राजपूताना, मध्यभारत, पंजाब, आदि नाना स्थानोंमें भ्रमण करते समय मुझे ज्ञात हुआ है कि उन प्रदेशोंमें बहुतसे सज्जन शीर्षासन करते हैं। शीर्षासन योगसाधनके अनुकूल नहीं है। ऐसा मुझे अनेक योगाभ्यासी सज्जनोंसे ज्ञात हुआ है। क्योंकि शीर्षासन करके प्राणायाम आदि यौगिक क्रिया तथा पूजा मंत्र जपादि कोई धर्म सम्बन्धी क्रिया नहीं की जा सकती। हां, शीर्षासन द्वारा साधक ब्रह्मरन्ध्रसे जो अमृतधारा टपकती है और जो अनाहत पद्मस्थित अरुणवर्ण सूर्यमण्डलमें पहुँचकर सूख जाती है उसीको पानेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु उस क्रियासे कहां तक सिद्धि प्राप्त होती है, यह कहना कठिन है। अनेक योगाभ्यासी सज्जनोंका कहना है कि इस क्रिया से न तो शरीर बलिष्ट और जरा रहित होता है और न उस अमृतपानसे उनका चित्त ही लय होकर अनिवर्चनीय आनन्द प्राप्त करता है। आसन करनेका तात्पर्य यही है कि शरीर स्वस्थ रहे तथा धीरे धीरे कुण्डलिनी जाग्रत होकर क्रमशः दिव्य ज्ञान प्राप्त होजाय। आसनके सम्बन्धमें शास्त्र यही कहता है कि—

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

(पातञ्जल, साधन पाद ४८)

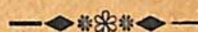
आसनका अभ्यास करनेसे सब प्रकारके द्वन्द्व छूट जाते हैं, अर्थात् शीत ग्रीष्म, क्षुधा तृषा, रागद्वेष प्रभृति किसी प्रकारका द्वन्द्व योग साधनमें बाधा नहीं डाल सकता, अर्थात् गीताके द्वितीय अध्यायमें वर्णित स्थितप्रज्ञके लक्षण आप ही आप आ पहुंचते हैं। परन्तु सदा ही यह स्मरण रखना चाहिये कि आसनका सबसे मुख्य उद्देश्य यही है कि मेरुदण्ड (पीठकी रीढ़) सदा सीधी रहे, क्योंकि उसीके अन्दर सुषम्ना नाड़ी विद्यमान है। जिसके भीतर क्रमशः वज्रिणी, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाड़ी विद्यमान हैं। आसन, मुद्रा तथा ध्यान द्वारा कुल-कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है और ब्रह्मनाड़ीके भीतरसे क्रमशः षट्चक्रको भेदती हुई ब्रह्मरन्ध्रमें पहुंचती है, जहां परात्पर-ब्रह्म शिवजीसे मिलकर लय हो जाती है, या यूं कहें कि साधक समाधिस्थ हो जाते हैं। साधनाके समय यदि मेरुदण्ड टेढ़ा बांका रहे तो उपर्युक्त क्रियाके सम्पन्न होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती और न दिव्य ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है, अपितु नाना प्रकारकी व्याधियां ही होनेकी सम्भावना रहती है, अतएव साधना करते समय सदा स्मरण रखना चाहिये कि रीढ़की हड्डी सीधी रहे।

---

* गृहस्थियोंको सिद्धासनकी अपेक्षा पद्मासन अधिक लाभप्रद है। ब्रह्मचारी वानप्रस्थी यतियोंके लिए सिद्धासन अधिक हितकर है। —सम्पादक

भगवान् कब आएंगे ?

[लेखक—श्री बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री बी० ए०]



हम लोग गीताका पाठ करते समय सदा यह आशा करते हैं कि भगवान् शीघ्र हमारी रक्षाके लिए आयेंगे। भगवान् के—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस वचनके रहस्यको हम समझते नहीं। इस वचनका रहस्य है 'अनुग्रह शक्तिपात'। परमेश्वरके पञ्चकृत्योंमें अन्तिम कृत्य हीको अनुग्रह कहते हैं। अनुग्रह द्वारा ही भगवान् जीवोंका उद्धार करते हैं और उत्तरोत्तर अनुग्रहको बढ़ाकर मोक्षपद पर पहुंचा देते हैं। यह अनुग्रह भगवान् सभी पर सदा करते ही रहते हैं। उनके अनुग्रहके बिना सुख लेश मात्र भी मिलना सम्भव नहीं। परन्तु इस अनुग्रहमें भेद इस कारण पड़ता है कि कोई जीव भगवानके अनुग्रह का सदुपयोग करता है, कोई नहीं करता और कोई उल्टा दुरुपयोग करता है। जो तो अनुग्रहके एक लेश का भी सदुपयोग करता है उस पर परमेश्वर अनुग्रह की मात्राको बढ़ाते जाते हैं। जो व्यक्ति सदुपयोग नहीं करता उस पर किये हुए अनुग्रहको पुनः खींच लेते हैं। अतः वह आगे उन्नति तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह रही सही अनुग्रहकी मात्राका सदुपयोग करके उसको बढ़ानेका प्रयत्न न करे। अन्य जीव जो अनुग्रहका दुरुपयोग करते हैं उन परसे भगवान् अनुग्रह तो खींच ही लेते हैं पर साथ ही निग्रह भी करते हैं। इस निग्रह-शक्ति-पात द्वारा जीव अवनतिके गर्तमें जा गिरता है और तब तक गिरता ही जाता है जब तक अपने शुभकर्मों द्वारा ईश्वरको पुनः अनुग्रहके लिए विवश न करे। इसी भावको उपनिषद्में इस मन्त्र द्वारा प्रकट किया है—

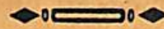
"स एष साधु कर्म कारयति यमुन्निनीषति।
स एषासाधु कर्मकारयति यमधो निनीषति॥"

पहले वाक्यमें अनुग्रह शक्तिपातका निरूपण है और दूसरे वाक्यमें निग्रहशक्तिपातका।

जिस प्रकारसे ये अनुग्रह और निग्रह एक व्यक्ति पर होते रहते हैं उसी प्रकारसे एक जाति पर भी होते ही रहते हैं। जो जाति परमेश्वरके अनुग्रहका सदुपयोग करती है वह उत्तरोत्तर अनुग्रहको पाती हुई उन्नति करती है। परन्तु जो पाए हुए अनुग्रहका सदुपयोग न करे उस पर अनुग्रहकी वृद्धिकी तो सम्भावना ही नहीं। हम पर भी भगवान्ने अनेकों अनुग्रह कर रखे हैं। उसने हमें बुद्धि दी है, बल दिया है, धन दिया है, अन्न दिया है, विशाल देश दिया है, बड़े-बड़े वन, पर्वत और नदियां दी हैं, उन्नतिके मार्गको दिखाने वाले विविध शास्त्र दिए हैं, आधुनिक तथा प्राचीन विद्याएं दी हैं, करोड़ोंकी जन संख्या दी है। इतने बड़े-बड़े अनुग्रह परमेश्वरने हम पर किए हैं, परन्तु हम इन अनुग्रहोंका सदुपयोग नहीं करते। हम तो उल्टा दुरुपयोग ही करते हैं। इस कारण मुझे समझ नहीं आता कि परमेश्वर हम पर अधिक अनुग्रह कैसे करें? हम यह चाहते हैं कि हम अपने विषयोंपभोगमें मस्त रहें और परमेश्वर आ कर हमारे दुःखों को दूर करें, हम सोए पड़े रहें और भगवान् हमारी रक्षा करें। भगवान् भला हमारे क्या नौकर हैं? उन्होंने इस सृष्टिमें एक नियम बना रक्खा है उसको कहते हैं 'नियति'। इस नियतिके अनुसार जो जीव या जो जाति उन्नतिका प्रयत्न करे उन्नति उसके चरणों को चूमती है। परन्तु जो स्थितिके अनुसार यत्न न करे वह उन्नत कब हो सकेगा? भगवान्ने हमारे उद्धारके लिए कहींदूरसे आना नहीं है वे तो सदा हमारे

सनातनधर्म और मतमतान्तर

[लेखक — महामहोपदेशक श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी]



संसारके इतिहासको खोज डालिये, परन्तु मजहबी दुनियांमें पारसी मतसे पुराना, मनुष्य कल्पित दूसरा कोई मत नहीं मिलता। बाकी सब पंथ बादके चले हुए हैं। अब विचार करना चाहिये कि वर्तमान सृष्टिको बने वेद पुराण शास्त्रोंके वर्णनानुसार कुछ कम दो अरब वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, वर्तमान सृष्टि तत्त्ववेत्ता (Scientist) लोग भी उत्तरोत्तर सृष्टि समयकी वर्ष गणनामें करोड़ों वर्षों पर पहुंच गये हैं। और ज्यों २ आगे विज्ञानकी उन्नति होगी, त्यों २ इस संख्यामें अधिकता ही होगी, कमी नहीं। क्योंकि हिन्दू शास्त्रोंकी युग-गणनामें अशुद्धिकी सम्भावना ही नहीं की जा सकती। ऐसी दशामें प्रश्न उठता है कि क्या सृष्टिके आरम्भसे लेकर आज से चार हजार वर्ष पूर्वके समय तक अरबों करोड़ों वर्ष मनुष्य समुदाय धर्महीन जीवन ही बिताता रहा? यदि नहीं, तो फिर उस समय कौन धर्म था कि जिसके आश्रयसे मनुष्य वर्गका कल्याण होता था? यदि कोई मतमतान्तरवादी यह कहनेका साहस करे कि 'कोई भी धर्म नहीं था' तब तो परमात्मा पर अन्यायी और निर्दय होनेका दोषारोपण हो जायगा। क्योंकि यदि करोड़ों वर्ष तक मनुष्य समुदाय अज्ञानान्धकार में पड़ा हुआ धर्म हीन जीवन बिताता रहा हो! और मार्गभ्रष्ट पथिककी भांति ठोकरें खाता रहा हो!! उसे तनिक भी दया क्यों न आई? तथा अब अपने लड़के अथवा दूतोंको भेजकर तुम्हें राह बताने लगा। पहले तुम्हारे बाप दादाओंको राह न बताकर उनसे महा अन्याय क्यों किया? वास्तवमें न्यायकारी दयालु ईश्वरमें यह बात घटित ही नहीं हो सकती। जब मनुष्य 'मनुष्य' बने तभी उन्हें परमात्माकी ओरसे किसी धर्ममार्गका उपदेश अवश्य हुआ होगा! और वह अनादि, अनन्त, सदा एकरस, ईश्वरीय एवं प्राणिमात्रका कल्याणकारक धर्म 'सनातनधर्म' ही है, न यह कभी चला है और न इसके नाशकी कभी सम्भावना है। यह सदासे अपने इसी रूपमें वर्तमान रहा है और रहेगा। इसका बनाने वाला कोई मनुष्य नहीं, अतएव यह ईश्वरीय है, संसार भरके प्राणिमात्रका सर्वदा और सर्वथा कल्याण इसी एक मात्र धर्मके आश्रयसे हो सकता है। इसलिए जिस मनुष्य को अपने मनुष्यजन्मके सफल बनानेकी अभिलाषा हो तथा जो इस लोकमें कल्याण चाहता हो उसे मतमतान्तरोंकी दलदलसे निकलकर सच्चे एवं ईश्वरीय 'सनातनधर्म' की शरण लेनी चाहिये।

पास हमारे उद्धारके लिए तत्पर हैं, परन्तु जब हम स्वयं कुछ करते ही नहीं तो वे क्या करें, वे भी इस वैचित्र्यको देखते हुए मौज उड़ाते हैं। वे हमारे लिए नियतिका उल्लंघन क्यों करें? यह बात नहीं कि वे नियतिका उल्लंघन नहीं कर सकते, वे कर तो सकते हैं पर करते नहीं, करते भी कभी-कभी हैं, परन्तु तब करते हैं जब कोई उनको अपने सत्कर्मों द्वारा ऐसा करनेके लिए विवश करे। भक्त उनको बहुत प्रिय होते हैं। अपने सच्चे भक्तके लिए वे नियतिशक्तिका भी उल्लंघन करते हैं। इसी कारण उन्होंने कहा है कि साधुओंकी रक्षाके लिए वे युग-युगमें आते रहते हैं। हम यदि चाहते हैं कि वे हमारे लिए प्रकट हो जाएं, तो हमें भी साधु बनना चाहिए। साधु बन कर भगवान्के अनुग्रहोंसे उचित लाभ उठाना चाहिए; तब भगवान् हमारा उत्तरोत्तर अधिक-अधिक उद्धार करते जायेंगे। इस कारण हाथ पैर बांध कर बैठनेसे कुछ बनेगा नहीं, हमें कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिए; तब भगवान् हमारी जाति और हमारे देशका कल्याण करेंगे।

अनादि

सनातनधर्म कब चला यह कोई नहीं बता सकता, आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण भगवान्के समयमें भी यह विद्यमान था और आजसे नौलाख वर्ष पूर्व रामचन्द्रजीके समयमें भी यह विद्यमान था। यहीं क्यों बल्कि आजसे पौने दो अरब वर्ष पूर्व हरिश्चन्द्र, स्वायंभुव-मनु और कश्यपादिके समयमें भी वह इसी प्रकार प्रचलित था। संसारका इतिहास जहां तक साक्षी देता है, वहां तक सनातन धर्मका ही उस समयमें प्रचलित रहनेका प्रमाण मिलता है, इसलिए यह अनादि है।

अनन्त

संसारका इतिहास मनन करनेसे पता चलता है कि पूर्व समयमें भी कई बार मनुष्य कल्पित पंथोंका दौरदौरा हो चुका है, परन्तु इस समय उनका नाम मात्र इतिहास ग्रन्थोंमें देखनेको मिलता है, उनका मानने वाला मनुष्य दीपक लेकर ढूंढने पर भी दृष्टि गोचर नहीं होता।

आजसे पौने दो अरब वर्ष पूर्व हिरण्यकशिपु दैत्यने ईश्वर पूजाको हटाकर अपने आपको ही बलात् पुजवानेका प्रयत्न किया था, राम नाम लेने वालोंकी जिह्वा काट दी जाया करती थी, परन्तु आज हिरण्यकशिपुको परमात्मा मानकर पूजने वाला एक भी मनुष्य नहीं दीखता।

राजा वेनने एक व्यभिचारी पंथ चलाया था, पर अब किसी सभ्य जातिमें उसका चिन्ह तक शेष नहीं।

बृहस्पति चार्वाकके नास्तिक मतका सर्वथा विध्वंस हो चुका है। इसी प्रकार ग्रीक, सिथियन, हून आदि जातियोंकी सभ्यतायें — जो कि पूर्वकालमें संसारभर में प्रख्याति पा चुकी थीं आज निःशेष हो चुकी हैं। इसराइली यहूदी, याकूबी, दाऊदी फिर्के अब नाम मात्रको शेष हैं। बौद्ध जो कभी भारतमें तीन चौथाई संख्यामें बसते थे, आज नामको भी नहीं मिलते। तिब्बत, चीन, जापान और सीलोन निवासी यद्यपि अभी तक बौद्ध कहे जाते हैं, परन्तु उनका बौद्धपन अब केवल मुरदार मनुष्योंका मांस खा जानेमें तथा—

केवल पतङ्ग विहङ्गमोंमें, जलचरोंमें नाव ही।
इक भोजनार्थ चतुष्पदोंमें चारपाई बच रही॥

—यको चरितार्थ करनेमें सीमित रह गया है। इस प्रकार सैकड़ों मत चले और बिजलीकी भांति क्षण मात्र चमककर सदाके लिये विलीन हो गए, जो आज देखनेमें आते हैं, वे सब भी बड़ी शीघ्रतासे कराल कालकी गालमें जानेके मार्ग पर सरपट दौड़ रहे हैं, सनातनधर्मको हिरण्याक्ष मिटा सका न हिरण्यकशिपु, न रावण इसका बाल बांका कर सका और न कंस और कालयवन। नादिरशाह, तैमूरलङ्ग, तथा औरङ्गजेबकी तलवार शताब्दियों तक इसके मिटानेको चलती रही, परन्तु—

सब मिट गए जहांसे हमको मिटाने वाले।
कुछ राज़ है, जो हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

अब भी सनातनधर्मका बोल बाला है, संसार लौट फिर कर फिर उसीकी शरणमें आने लगा है, मैस्मरेज्मसे (Mesmerism) से प्रतीकोपासनाके सिद्धान्तकी ससारता प्रकट हो गई है। परलोकके बाद (Spiritualism) ने मृत श्राद्ध व्यवस्थाका महत्त्व स्थापित कर दिया है, इस प्रकार वर्तमान तत्त्ववेत्ता Scientist) इसी अनादिधर्मकी यशोदुन्दुभि बजा रहे हैं, इसलिये 'सनातनधर्म' अनन्त है।

ईश्वरीय

सब मतमतान्तर किसी-न-किसी मनुष्यके चलाये हुए हैं। यह बात पहले सिद्ध की जा चुकी है। वह ईश्वरीय नहीं है—यह बात उन पंथोंके नामोंसे भी प्रकट हो जाती है। जैसे 'बुद्ध' से बौद्ध 'जिन' से जैन 'ईसा' से ईसाई 'मुहम्मद' से मोहम्डन, इसी प्रकार कबीरदासिये, दादूपन्थी, नानकपन्थी, आदि आदि हर एकके साथ उस उस पन्थके चलाने वाले मनुष्यका नाम जुड़ा हुआ है। दूसरे इन सबमें

किसीके साथ भी धर्म शब्द संयुक्त नहीं, किन्तु कोई मत है, कोई पन्थ है, कोई समाज है कोई मजहब है इस प्रकार भी सब पन्थ मनुष्य कल्पित और 'धर्मेतर' सिद्ध होते हैं, परन्तु सनातनधर्मके साथ किसी भी मनुष्यका नाम जुड़ा हुआ नहीं, बल्कि ईश्वरीय है; तथा यह 'मत' 'पन्थ' या 'समाज' के नामसे नहीं पुकारा जाता, अपितु निरन्तर 'धर्म' ही कहा जाता है।

'सनातन' शब्दका अर्थ है (सदा भवः सनातनः) अर्थात् जो सदासे चला आया हो और सदैव चालू रहे। और 'धर्म' शब्दका अर्थ है (धारयति इति धर्मः) अर्थात् जो सब विश्वको धारण करे या सब प्राणी जिसको धारण करते हों, ये दोनों गुण सनातनधर्ममें ही घटित होते हैं। न हम रामिये हैं न कृष्णिये न वशिष्ठिये और न विश्वामित्रिये, क्योंकि ये सब महानुभाव सनातन धर्मके जन्मदाता नहीं हैं, किन्तु संरक्षक और प्रचारक हैं, इसलिए किसी भी ऋषि मुनि देवता या अवतारका नाम सनातनधर्म शब्दके साथ सम्बद्ध नहीं है, इसलिए सनातन धर्म 'ईश्वरीय' है।

सदा एक रस

कभी ईसाई लोग पोप पादरियोंको धन देकर 'जन्नत' में सीट नियत (रिजर्वड) कराना आवश्यक समझते थे, परन्तु अब यह बात नहीं रही। आज तक मुर्दे गाड़ते थे परन्तु अब बहुतसी सभायें फूंकने का प्रचार कर रही हैं। मुसलमान अब चार बीवियां रखनेकी आज्ञाको व्यर्थ समझते हैं। टर्कीमें कमाल-पाशाके उद्योगसे अब मस्जिदोंमें बैण्ड और पियानो बजने लगे हैं। इस्लाम मजहबका विशेष चिन्ह बुर्का-पोशी सदाके लिए उठा दी गई है। सूफी लोग रोजे रखना और बहुतसे फिर्के ताजिये बनाना 'कुफ्र' समझते हैं। अकाली सिक्खोंमें अंग्रेजी पढ़े लिखे युवकोंने सिक्ख मजहबके चिन्ह केशोंको अनावश्यक बतानेका आंदोलन मचा रखा है। आर्य समाजियोंका धर्मग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' गिरगटकी भांति ६२ वर्षमें २१ रंग बदल चुका है। सत्यार्थप्रकाशमें पुनर्विवाह सहभोज और स्पृश्यास्पृश्यके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उसके साक्षात् विरुद्ध आंदोलन उठाकर स्वा० दयानन्दजीको धता बताना वर्तमान दयानन्दियोंका कर्तव्य हो रहा है। इस प्रकार सभी मतमतान्तरोंमें आये दिन सैकड़ों प्रकारके फेरफार हो चुके हैं—हो रहे हैं और होते रहेंगे, परन्तु सनातन धर्म जिस प्रकार सृष्टिके आदिमें वर्णाश्रम आचारको मानता था उसी प्रकार अब भी मानता है और मानता रहेगा, इस लिए सनातन धर्म 'सदा एक रस' है।

प्राणिमात्रका कल्याणकारी

ईशुमसीकी शिक्षा योरोप वालोंके लिये उस समय जबकि वह अर्धपशु जीवन बिता रहे थे और सर्वथा जंगली थे, चाहे किसी अंश तक लाभकारी रही हो, परन्तु अब केवल 'सात दिनमें सृष्टिका रचा जाना और कुछ हजार वर्षोंकी ही सृष्टिकी आयु होना' आदि विज्ञान विरुद्ध बातों पर मिथ्या विश्वास लानेमें किसीको कुछ लाभ नहीं हो सकता। इसी प्रकार ईशुमसी पर विश्वास लाने मात्रसे सब पाप क्षमा हो जाते तथा इसाइयोंके गुनाहोंका फल यशुह-मसीह स्वयं भोग चुका है। यह निरर्थक गप्प किसी भी मनुष्यका उद्धार नहीं कर सकती, क्योंकि इससे तो पापियोंको पाप करनेका चौगुना साहस बढ़ता है।

मुहम्मद साहिबकी बातोंसे भी अरबके जंगली मनुष्योंको किसी समय कुछ लाभ चाहे हुआ हो, परन्तु अब किसी सभ्य मनुष्यको यह कहकर लड़ने को उद्यत नहीं किया जा सकता कि "जो इस्लाम मजहबको नहीं मानते वे काफिर हैं और उनके मारने लूटने तथा बेइज्जत करनेसे सवाब (पुण्य) मिलता है 'जन्नतमें सुन्दर हूरें' बेमुछिये लौंडे और शराबकी नहरें उनको मिलेंगी जोकि काफिरोंको मारते मारते मर जायेंगे।" संसार को अशान्त एवं नरकमय बनानेकी यह कुशिक्षा अब शीघ्राति-शीघ्र संसारसे विदा कर देनी चाहिए, ऐसी बातों पर विश्वास करने वाले लोग अपने दोनों लोकोंको अपने हाथों खो लेते हैं।

इस प्रकार सभी मत मतान्तरोंकी शिक्षा एक देशीय, अपूर्ण, अव्यवहार्य है । परन्तु सनातनधर्म. प्राणिमात्रको शान्तिका उपदेश देता है, इसमें बालक से लेकर वृद्ध पर्यन्त और अपढ़ गंवारसे लेकर परम ज्ञानी तक रजोगुणी, सत्वगुणी और तमोगुणी सब प्रकारकी प्रकृति रखने वाले मनुष्योंको योग्यता अनुसार धर्मानुष्ठानका आदेश किया जाता है, देश काल परिस्थितिके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको उन्नति मार्गमें अग्रसर होनेका अधिकार है । योग्यताका परीक्षण किये बिना 'स .को एक ही लाठीसे हांकना' सनातनधर्ममें नाम मात्रको नहीं । कोई किसी जाति और किसी भी देशमें उत्पन्न क्यों न हुआ हो, सबके लिये यथाधिकार पद्धतिका अनुसरण करते हुए समान फल मुक्ति प्राप्त हो सकती है । नारदादि देव ऋषि, वशिष्ठादि ब्रह्मऋषि और जनकादि राजर्षि जिस पदको प्राप्त कर सकते हैं उसी पदको धन्ना जाट, नामदेव छिम्बा, नरसो बनिया, रैदास चमार, नन्दा नाई, सदना कसाई, शबरी—भीलनी और गणिका आदि भी पा सकते हैं । इसलिये अपनी अपनी जातिका शास्त्रोक्त धर्म पालन करते हुए कोई किसी भी जातिमें उत्पन्न क्यों न हुआ हो वह उसी जातिमें रहता हुआ मुक्तिका अधिकारी हो सकता है । ऐसी सर्वोच्च व्यवस्था एक मात्र 'सनातनधर्म' में ही है। इसलिए सनातनधर्म सार्वभौम, सर्वतोमुख, एवं मनुष्यमात्रका कल्याणकारक है।

———

अज्ञातके पाद-पद्मोंमें

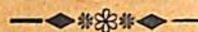
[ले०—श्री डा० मनोरथरामजी शास्त्री 'रामस्नेही' अध्यक्ष अ० भा० श्रीरामस्नेही युवक मंडल]

विश्वमें कैसा प्रत्यावर्तन

लौट-लौट कर चला आज मैं,
देखा जगका नर्तन ;
चक्रनेमिके क्रम-सा चलता,
सुख दुखका आवर्तन ॥
कोई आता कोई जाता,
कोई हरता जन - मन;
कोई वैभव धाम विलसता,
रम्यारामामें रम ॥
कोई वैभव हीन तरसता,
पाने भोजनका कन;
निशिमें तरुके नीचे सो कर,
कटता उसका जीवन ॥
घूम-घूम कर वर्षानेको,
आते नभमें जल घन;
कल-कल करती नदियां बहतीं,
तोड़ कूलका बन्धन ॥
सुमनोंका धारण कर वपु पर,
वसुधा – वधु आभूषण;
अनुपम-सा सौन्दर्य दिखाती,
सजा हरित सारा तन ॥
है वह कौन प्रकृतिके पति-सा,
करता जगसे क्रीड़न;
किसकी चिर सत्ताको पाकर,
हंसता जगका कन-कन ॥
किसकी लख रमणीय छटाको,
कलरव करते खग-जन;
किसकी सुनकर मधुर रागिणी,
होते नीरव नग-वन ॥
आंख मिचौनी खिलला बरबस,
हरता मेरा जो मन;
उन अज्ञात पाद-पद्मोंमें,
बलि-बलि है तन मन धन ॥

नवीन या प्राचीन मार्ग

[लेखक—श्री १०८ स्वामी हरिहरानन्दजी सरस्वती 'करपात्रीजी' महाराज]



कहीं कहीं ऐसा हुआ करता है कि नये डाक्टर अपने हाथ साफ करनेके लिए नई नई दवाओं एवं औषधियोंका प्रयोग करते हैं। किन्तु यह मूल्यवान् जीवन इन औषधियोंके समान परीक्षणकी वस्तु नहीं—परखना भयसे खाली नहीं है। अपने समाज एवं राष्ट्रके उद्धारके अनेक उपाय हो सकते हैं, किन्तु शास्त्र एवं सत्पुरुष कहते हैं कि उन उपायोंका प्रयोग करो, जो लाखों वार काममें लाये जा चुके हैं और सफल हो चुके हैं, जो नये उपाय शास्त्र सम्मत नहीं तर्कसंगत नहीं एवं शिष्टोंसे अनुमोदित भी नहीं, ऐसे नवीन उपायोंको अपने समाज या राष्ट्र पर परखने का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कहा जा सकता है कि यह बात 'बाबाआदम' के समयकी है, इस लिए उपेक्षणीय है। परन्तु नई बात यदि आदरकी वस्तु हो—यदि वह सचमुच लाभदायक हो निरुपद्रव हो—तो वह भी ग्राह्य हो सकती हैं। 'गीता' जैसे ग्रन्थ पर ऐसे नये विचार वालोंको भी बड़ा गर्व है। इससे स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन शास्त्रीय मार्ग, हमारे प्राचीन इतिहास उपेक्षणीय नहीं। अपनी आत्मा पुराण पुरुष है, पृथ्वी पुरानी है, रीति नीति भी पुरानी है।

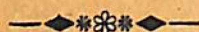
इस प्रकार प्राचीन 'सनातनधर्म' ही कल्याण कारक हो सकता है। उसी मार्गका अवलम्बन करना अत्यन्त आवश्यक है। वर्णाश्रमानुसारी सनातनधर्म से ही देश, समाज और राष्ट्रकी रक्षा हो सकती है। यह बात स्वाभाविक है कि संसारसे भले ही वैर हो, परन्तु अपने कल्याण—स्वार्थसे किसीको भी मात्सर्य विरोध नहीं हो सकता। यह स्पष्ट है कि हम लोग जिन पाश्चात्त्य देशोंकी सभ्यता, संस्कृति और रहन सहनके लिए लालायित हैं और उन पर सतृष्ण दृष्टि रखते हैं, उन्हींसे अब पाश्चात्त्य देशोंके विद्वान् ऊब गये हैं। आज पाश्चात्त्य विद्वान् भी आधुनिक वैज्ञानिक चमत्कारोंको देश, समाज और राष्ट्रके लिये हानिकारक और पतनका निदान समझने लगे हैं, कुछ विद्वानोंका तो यहां तक कथन है कि 'यदि विश्व इसी प्रकार चमत्कारपूर्ण विज्ञानोंका आविष्कार करता रहा, तो एक दिन वह कण्टकाकीर्ण होकर अवनतिके गहरे गर्त्तमें गिर जायगा। अतः विज्ञानकी चमत्कृतिसे अन्धे होकर उसके पीछे अन्धाधुन्ध दौड़ने वालोंको जरा ठहरना चाहिये, उन्हें पुनः धर्म और ईश्वरसे संबन्ध जोड़ना चाहिये, ये हैं पाश्चात्त्य विद्वानोंके सिद्धान्त। आज बड़े बड़े विदेशी विद्वान् भी भारतीय सनातनधर्म पर मुग्ध हैं। अन्त्यज बनकर भी यदि वे सनातनधर्मी बन सकते हैं, तो अन्त्यज बननेके लिए भी प्रस्तुत हैं। पर हमारे भारतीय अपनी गृहदेवियोंको सीता, सावित्रीके रूपमें भी देखना नहीं चाहते। हमें यह देखना चाहिये कि आजका संसार क्या चाहता है? उसीकी गति-विधिका निर्णयकर उसके कल्याणके लिये युक्तियुक्त बुद्धिगम्य आर्षग्रन्थों एवं मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदोंसे राष्ट्रको अपने कल्याणका मार्ग निर्णय करना चाहिये। हमारा अनन्त दृष्टिकोण भी यही है। आज लेनिनका कर्मवाद तथा लोकतन्त्रवाद, साम्राज्यवाद आदि अनेक वाद हमारे सामने हैं। इनमेंसे किसीने भी प्राचीनवादका अनुसरण नहीं किया। इस लिए उक्त सभी वाद अपने अपने सिद्धान्तोंके प्रचारमें असफल होते जा रहे हैं। भगवान् शंकराचार्य अपने कालमें प्रचलित वादियों के प्रवाहमें बह गए होते तो वह नास्तिक वादका खण्डनकर उसके स्थान पर प्राचीन वैदिक आस्तिकवादका प्रचार न कर सकते। फलतः प्राचीन वैदिक

सिद्धान्त आज हमें देखनेको भी न मिलते। इसी प्रकार किसी प्रवाहमें बहजाना मानवता नहीं। आज कलके व्याख्यानोंमें बहुधा लोग कहते हैं—"दुनिया बहुत आगे बढ़ गई है, अतः उसके बदलनेके साथ साथ अपनेको भी बदलते चलो। ऐसा न करने वाला समाज एवं राष्ट्रमें रहनेका अधिकारी नहीं।" पर यह ठीक नहीं। वास्तविक पुरुषार्थ इसीमें है कि मनुष्य प्रवाहमें न बहे। उस मनुष्यकी मनुष्यता ही नहीं जो प्रवाहमें बह गया। वह पशुसे भी गया बीता है। जो काम क्रोध एवं लोभके वेगको नियन्त्रित नहीं कर सकता, उसका पराभव—पतन—निश्चित है। मृत्यु पाशविकता एवं उच्छ्रृंखलताका उल्लंघन वैदिक ज्ञानका सहारा लेकर ही किया जा सकता है। प्रवाहमें बहना मनुष्यताके विरुद्ध हैं। अतः भगवान् श्रीशंकराचार्य एवं भगवान् रामानुजाचार्य आदि प्रवाहमें नहीं बहे। भले ही प्रवाहके रोकनेमें मर मिटना पड़े, भले ही सारा राष्ट्र उस प्रवाहको रोकनेमें तैयार न हो, इसकी चिन्ता नहीं। सच्चे निर्भीक स्वार्थत्यागी दस बीस कर्मठोंके सहयोगसे भी इसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है। तात्पर्य यह कि प्रवाहके विरुद्ध स्वाभाविक रीति पर चलना ही चाहिये। प्रवाहमें बहने वालोंको पहले यह जिज्ञासा होनी चाहिए कि अमुक कार्य शास्त्र सम्मत है या नहीं? नये सुधारक अपनी प्राचीन एवं वर्तमान शिक्षा प्रणालीसे असन्तुष्ट होकर एक तीसरी शिक्षा बनाने पर तुले हैं। अमूल्य मानव-जीवन पर यह प्रयोग भी परखा जायगा। इसके दुष्परिणामसे देश और जाति जर्जरित हो जायगी, तब हमारा ध्यान दूसरी ओर जायगा। गढ़ेमें गिरकर फिर उससे निकलनेकी बात सोचना बुद्धिमानी नहीं। प्राचीन श्रौत स्मार्त्त वैदिक संस्कृतिका अनुसरण करने पर ही हम सच्ची स्वतंत्रताके अधिकारी हो सकते हैं। प्रायः लोग यह भी कहा करते हैं कि जो कुछ पुराना है, वह सब अच्छा ही नहीं है—"पुराणमित्येव न साधु सर्वम्", परन्तु यहां 'पुराण'का अर्थ त्रिकालज्ञ महर्षियों द्वारा रचे हुए शास्त्र नहीं हैं। यह वाक्य कहने वाले उस पद्का "सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते" यह अंश भूल जाते हैं। परीक्षा करने पर तो शास्त्र ही ठीक उतरेंगे। आज कल मौलिक विचारोंकी धूम है। बहुधा लोग किसीके तर्क पूर्ण व्याख्यानों एवं लेखोंको पढ़कर कह बैठते हैं कि 'वाह! कितने सुन्दर मौलिक विचार हैं? पर हमारी मौलिकता तो इसीमें है कि महर्षियोंके वचनों, मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदों एवं अन्य शास्त्रोंको समझ लें। यही हमारा परम पुरुषार्थ है। गीताकी मौलिकता पर लोग मुग्ध हैं। ईश्वरकी सर्वज्ञता एवं शक्तिमत्तासे ही 'गीता' में यह मधुर मिठास है, मिठास वेद ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदोंसे आई है, इस लिये जो गीताको कृष्णका मौलिक विचार समझते हैं वे सर्वथा अज्ञ हैं।

संसारके प्रायः सभी धर्म मर गये, पर हिन्दु धर्म शुद्ध सनातन होनेके कारण अबतक जीवित है। गीता भी कहती है—"त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता" भगवान् ही शुद्ध सनातनधर्मके प्रवर्तक एवं रक्षक हैं। हमें चाहिये कि अपने पवित्र धर्मका अनुष्ठान करें अपने शास्त्रको पंच मान कर झूठे अभिमानको छोड़ कर धर्म और ईश्वरकी उपासनामें रत हों। अपने धर्मकी सच्ची उपासनासे ही स्वतंत्रता, सुख एवं शान्ति मिलेगी।

भारतीय ज्यौतिष क्या ग्रीससे आया है ?

[लेखक—श्री पं० उमाकान्त जी झा ज्यौतिषाचार्य]



वैदिक कालीन ज्योतिषके वास्तविक स्वरूप पर विचार करना आज अत्यन्त कठिन विषय हो गया है। क्योंकि वेदमें अधिकतर केवल धार्मिक विषयों का ही समावेश है। और वेदोंकी स्वल्पतम उपलब्धि के अतिरिक्त आज कोई भी ज्योतिष ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। तथापि वेदका प्रधान अङ्ग ज्योतिष है, इस सम्बन्धसे ज्योतिषके कतिपय विषयोंके उपाख्यान वेदोंमें मिलते हैं। यद्यपि यह उपाख्यान इतने स्वल्प हैं कि इनसे वास्तविक स्थितिका पता नहीं चलाया जा सकता, फिर भी कहीं कहीं ऐसे प्रकार भी पाये जाते हैं, जो वेदकालसे आज तक अव्याहत गतिसे चले आरहे हैं। इन्हें देखते हुए भारतीय फलित ज्योतिषको ग्रीससे आया हुआ कहना केवल दुराग्रह मात्र है।

ग्रीस (यूनान) देशीय कहनेका कारण

भारतीय फलित ज्योतिषको ग्रीस देशीय सिद्ध करनेमें सबसे प्रबल प्रमाण उनकी दृष्टिमें भारतीय फलित ज्योतिषके ग्रन्थोंमें समाविष्ट कुछ ग्रीक शब्द हैं।

भारतीय विद्वानोंके मतसे ये ग्रीक शब्द विक्रमी छठी शताब्दीसे यहां प्रचलित हुए हैं। उस समय बहुतसे ग्रीक विद्यार्थी अध्ययनके लिए यहां आये थे। उनका भारतीयोंके साथ अत्यधिक संपर्क हो गया था, अतः उस समयकी पुस्तकोंमें भारतीय शब्दोंके पर्यायके रूपमें कुछ ग्रीक शब्दोंका समावेश उस समयके आर्यभट्ट वराहमिहिर आदि आचार्योंने सधन्यवाद स्वीकार किया है।

यहां हम छठी शताब्दीमें प्रविष्ट ग्रीक शब्दोंकी तालिका दे रहे हैं—होरा (लग्न और राशिभाग) हिबुक (चतुर्थभाव) द्रेष्काण (राशि त्रिभाग) कण्टक, केन्द्र (चतुष्टय) आपोक्लीम (अन्त्यचतुष्टय) पणफर (मध्यचतुष्टय) तावुरि (वृष) जितुम (मिथुन) लेय (सिंह) पाथोन (कन्या) जूक (तुला) कौर्प्य (वृश्चिक) आकोकेर (मकर) तौक्षिक (धनुः) अनफा (योग) सुनफा (योग) दुरधरा (योग) केमद्रुम (योग) तुंग (उच्च) वेसिस्थान (सूर्यसे द्वितीय स्थान)।

सोलहवीं शताब्दीमें प्रविष्ट ग्रीक शब्दोंमें—मुसल्लह (नवमांश) हद्दा (राश्यंश—द्विभाग) मुन्थहा (इष्ट वर्षमें जन्मलग्न स्थिति) योगोंमें—इक्कबाल, इन्दुवार, इत्थशाल, ईसराफ, नक्त, यमया मणऊ, कम्बूल, गैरिकम्बूल, खल्लासर, रद्द, दुफालिकुत्थ, दुत्थोत्थ दिवीर, तंबीर, कुत्थ, दुरफ और सहम शब्द हैं।

इन ग्रीक शब्दोंके अतिरिक्त यहांकी द्वादश राशि कल्पना जोकि भारतीय फलित—ज्योतिषका प्रधान अङ्ग हैं, वे भारतीय नहीं मानते हैं।

भारतीय ज्योतिषमें फलितके दो प्रकार प्रचलित हैं। एकमें जातकके जन्म नक्षत्रसे और दूसरेमें जन्म लग्नादि द्वादश भावसे फल कहा जाता है। इसमें जन्मनक्षत्रसे फल कहनेका प्रचार वेदकालमें भी था। ऋग्वेदमें आधुनिक विचारानुकूल नक्षत्रों की चर्चा की गई है—

'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तंदद्दश्रे कुहचिद्दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकसश्चन्द्रमा नक्तमेति' ॥

[ऋक्० १, २, १४, ५]

इस सूक्तमें रात्रिमें नक्षत्र प्रकाश और दिनमें नक्षत्राभाव नक्षत्र—ज्ञानका सूचक है।

'वाजनीवती सूर्यस्य योषा चित्रा मघा राय ईशे वसूनां'।
[ऋक् ७, ७५, ५]

इस सूक्तमें चित्रा और मघाका स्पष्ट उल्लेख है।

'वायुर्वात्वा मनुर्वात्वा गन्धर्वास्सप्तविंशति'
[यजु० ६, ७]

यजुर्वेदके इस मंत्रमें सत्ताईस—नक्षत्रोंको गन्धर्व कहा गया है, इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी वर्तमान समयके प्रचलित सत्ताईस—नक्षत्रोंका ही प्रचार था।

अथर्ववेदमें भी कृत्तिकासे भरणी तक अट्ठाईस नक्षत्रोंके नाम हैं—

सुवहमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ॥ १ ॥ पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघाभे ॥ २ ॥ पूरायं पूर्वाफाल्गुन्यो चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु। राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥ ३ ॥ अन्नं पूर्वा रासती मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु। अभिजिन्मे रासती पूरायमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वती सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥ आमे महच्छतभिषक् वरीय आमे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म। आ रेवती चाश्वयुजौ भगं आमे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥ ५ ॥
[अथर्व० १६।१७]

इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तरीय ब्राह्मण (१५।२५) में अट्ठाईस नक्षत्रोंके नाम और वर्तमान समयके प्रचलित देवताओंका उल्लेख भी मिलता है। इसी स्थानमें नक्षत्रोंकी व्यवस्था, और उनके फलाफलका वर्णन भी विस्तृत रुपसे किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण और ऐत्तरेय संहितामें भी यही क्रम मिलता है—

"ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलवर्हणात् परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥"
(अथर्व०-६।११।१११।२)

ज्येष्ठमेषां अधिष्मेतित ज्येष्ठघ्नी। (तै० ब्रा० १।५।२।८) उद्गाथां भगवती विचृतौ (मूले) नाम तारके (श्रुतिः २।८।१) मूलं एषां अवृक्षामेति तन्मूलवर्हणी। (तै० ब्रा० १।५।२।८) मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलवर्हणात् परिपाह्येनम्। ६।११।११२)

इस सूक्तमें मूल—मूल नक्षत्रमें उत्पन्न शिशुके लिये अग्निसे दोष—मार्जनकी प्रार्थना है। मूल नक्षत्रमें उत्पन्न शिशुकी कल्याण-कामना आज भी इसी भांति की जाती है, इसे 'सतेसा' वा गण्डमूल शान्ति कहते हैं। भारतके प्रत्येक प्रान्तमें इसका प्रचार है। 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' में भी इसका यही रूप है।

द्वादश राशि गणना और उससे फलादेश कहने की विधि वेदमें प्रत्यक्षतः नहीं मिलती है, पर ऋग्वेद में एक सूक्त आया है—

"द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुना सो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः॥"

—एक चक्रमें बारह विभाग हैं, जिसमें वृद्धत्व नहीं होता, ऐसे चक्रमें ३६० दिन और ३६० रात्रि होती हैं।

यहां चक्र शब्दसे बारह-राशिका समूह ही टीकाकारोंने माना है। आजकल भी चक्र शब्दका यही अर्थ प्रचलित है। चक्रका अर्थ बारह राशि मानने पर ही ३६० दिन हो सकते हैं। बारह महीना मानने से ३६० दिन नहीं होंगे, क्योंकि चान्द्रमास बराबर घटा बढ़ा करता है। एक अंशमें एक दिन मान कर बारह राशिके ३६० अंश होने पर मध्यम मानसे ३६० दिन हो जायेंगे। स्पष्ट मानसे नहीं हो सकते। इससे यह सिद्ध होता है कि मध्यम मानसे एक दिन में सूर्यका एक अंश भोग मानकर ही यह लिखा गया है, क्योंकि दूसरे स्थान पर ऋग्वेदमें एक मन्त्र आया है जिससे स्पष्ट मानमें भिन्नता होती है—

"द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणिनभ्यानि क ऊ तच्चिकेत।
तस्मिन्साकं न शंकुवोऽर्पिताः षष्ठिर्न चलाचला सः॥"

—द्वादश राशि और तीन प्रधान ऋतुओंको कौन जानता है? शंकु द्वारा साधन करनेसे ६० दण्ड का दिन चल और अचल होता है।

इससे ज्ञात होता है कि शंकु साधनकी विधि आजकी परिपाटीके अनुसार उस समय भी प्रचलित थी। क्योंकि मध्यम-मानसे दिन प्रमाण ६० ठीक स्थिर होता है। किन्तु शंकु द्वारा स्पष्ट मानका ज्ञान होने पर ६० नहीं होगा, अधिक या अल्प हो जायगा। वर्तमान समयमें भी ज्योतिष सिद्धान्तमें शंकु द्वारा दिनादि साधनकी रीति मिलती है, जिससे स्पष्टमान द्वारा ६० नहीं आता। वेदकालमें संक्रान्ति, ऋतु, अधिमास और क्षयमासका ज्ञान था। "उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहाहिताः" ॥१५॥ (अथर्व: ११।४।६) इससे विषुवत् संक्रान्तिका प्रचार और धर्म क्रिया आदिका भी प्रचार सिद्ध होता है।

पूर्वापरं चरतो मायवैतौ (सूर्यचन्द्रौ) शिशू क्रीड़न्तौ परियातोर्णवम्। विश्वान्यो भुवनाविचष्टे ऋतुरन्यो विदधज्जायते नवः॥ (ऋग्वेद अथर्ववेद ७।७।८६।१)

इन ऋगथर्व दोनोंवेदोंके सूत्रोंसे स्पष्ट है कि वेदकालमें सौरमान और चान्द्रमान दोनोंका प्रचार हो चुका था। सौरके ज्ञानसे ही १२ राशिविभागका ज्ञान हो जाता है। ज्ञानसे प्रचारकी भी कल्पना तत्त्वमूलक है। अधिमास और चयमासका तो सब वेदोंमें बाहुल्येन प्रचार पाया जाता है। तब किस आधारसे केवल चान्द्रका ही प्रचार लोगोंने कल्पना की यह समझमें नहीं आता। क्योंकि बिना सौर और चान्द्रसे ऋतु, संक्रान्ति, अधिमास और चयमासका ज्ञान नहीं हो सकता।

कुछ एक लोगोंका कहना है कि "१२ राशि विभाग की कल्पना पहले ईराकमें हुई और वहांसे मिश्र, मिश्रसे यूनान और यूनानसे सर्वत्र यह ज्ञान फैला" परन्तु ऐसा कहने वालोंको प्रायः भूगोलका कुछ भी ज्ञान नहीं है। क्योंकि ईराकसे भारत अधिक समीप है अतः पहले ईराकके समीपी भारतमें यह कल्पना आनी चाहिए थी। किन्तु ऐसा नहीं है अतः इस ज्ञान का सर्जक भी भारत ही है।

यद्यपि वेदमें बारहों राशियोंकी संज्ञा मेष, वृष आदि नहीं है, तथापि मेषादि नाम विभिन्न अर्थोंमें पाये जाते हैं। पर इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि आजकी प्रचलित परिपाटिके अनुसार राशिचक्रको बारहमें विभक्त करनेका प्रचुर प्रचार उस समय भी प्रचलित था।

संहिता-काल

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि वेद ज्योतिषका ग्रन्थ नहीं है। अतः उसमें प्रसंगतः कुछ ज्योतिष-सम्बन्धि चर्चा मात्रका समावेश है, पर संहिता कालमें आकृतिके अनुसार वेदोक्त राशिचक्रके बारह विभागोंको मेषादि संज्ञाके प्रचलित क्रमके अनुसार ही वर्णित किया गया है।

ग्रहगणितका परिज्ञान

वेदोंमें स्थान-स्थान पर अधिमास और चयमास की चर्चा, ऋतुओंका वर्णन और 'दर्शपौर्णमास्यां यजेत्' का आदेश मिलता है। इनके परिज्ञानके लिए ग्रह गणितकी आवश्यकता है, बिना ग्रहगणित के अधिमास, ऋतु अथवा 'दर्शपूर्णिमा' का ज्ञान असम्भव है।

भगवान् बुद्धने अपने 'धम्मोपदेश' में फलितज्योतिषकी बड़ी निन्दा की है। अतः बुद्धके समय (५०० ईसा पू०) में भी यहां फलितका प्रबल प्रचार था, यह कहा जा सकता है।

फलितकी प्राचीनता

फलित शास्त्रमें रविका उच्च मेष राशिमें दश अंश पर है, जो आज कल मिथुन राशि में है। अतः उच्च-गतिसे विलोम गणित करने पर ६००० वर्ष आता है। इस गणनासे ही यदि हम फलितकी प्राचीनता सिद्ध करें तो छःहजार वर्ष निश्चित रूपसे हो जाते हैं। आजकल गणितसे यह सिद्ध हो चुका है कि रविका उच्च ग्रीसके प्रसिद्ध ज्योतिषी टालमीसे अत्यधिक भिन्न है, क्योंकि रविका उच्च १५०० वर्षों से प्रचलित भारतीय ग्रन्थोंमें एक ही ७८ अंश है

और टालमीका ६५ अंश। उच्चके लिए जिसकी गति सहस्रों वर्षोंमें अन्तरित नहीं हुई इतना अधिक अन्तर दोनोंमें होना असम्भव है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि उच्चकी कल्पना भारतकी देन है।

वैज्ञानिक आधार

वर्तमान विज्ञान वेत्ताओंका कहना है कि नक्षत्रों में स्वयं तेज प्रकाश नहीं है, और न इनमें स्वयं गति ही है। ठीक यही बात प्रकारान्तरसे 'शतपथ ब्राह्मण में भी मिलती है—

'ना ना ह वा एतान्यग्रे नक्षत्राण्यासु, यथैवास्तै सूर्य एवं तेषामेष उद्यन्नेव-नक्षत्रमादत्त, तस्मादादित्योनाम यदेषां वीर्यं नक्षत्रमादत्त, यनि वै तानि नक्षत्राण्यभूवन्निति तद्वै नक्षत्राणां न क्षत्रत्वम्।' (शतपथ २।१।१९)

नक्षत्रोंके उदय होते ही सूर्यने सभी नक्षत्रोंका क्षत्र (वीर्य) ले लिया, इसी आदानसे सूर्यका नाम आदित्य हुआ और नक्षत्रोंमें वीर्य नहीं रह गया।

इन प्रमाणोंको देखते हुए यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि फलित ज्योतिष-विशुद्ध भारतीय वस्तु है, इसमें ग्रीकादि किसी भी विदेशी वस्तु का सम्मिश्रण कहना अनभिज्ञताका ही द्योतक है।

नक्षत्रक्रमसे फलादेश कहनेकी पद्धति वैदिक कालसे आजतक अबाध गतिसे भारतमें प्रचलित है। यहांकी नक्षत्रगणना पद्धति वैदिकयुगमें कृत्तिकासे भरणी तक, वेदांगकाल (१४०० ई० पू०) में धनिष्ठासे श्रवण तक, और वर्तमान समयमें अश्विनी से रेवती तक है। वर्तमान समयकी इस गणना पद्धतिका ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि यह कबसे प्रचलित हुई। पर 'महाभारत' कालिक 'पराशर-संहिता' आदिमें इसका उल्लेख मिलता है। अतः यह पद्धति भी महाभारतकालके पहलेकी है इसमें सन्देह नहीं।

यहां यह कहना तो व्यर्थ ही होगा कि इन समयों में यहां ग्रीकादि किसी भी विदेशीका आवागमन नहीं हो पाया था। अतः यही कहना उचित और युक्तिसंगत है कि इन विदेशियोंने ही हमारी इन अलभ्य और बहुमूल्य विभूतियोंसे लाभ उठाया है।

दूसरी बात यह है कि यदि भारतीय फलित ग्रीस का है, तो फलित कहनेकी विधि भी ग्रीसकी ही होनी चाहिये थी, पर भारतीय और ग्रीक फलित प्रकारमें आकाश पातालका अन्तर है। छठी शताब्दीसे कुछ ग्रीक शब्दोंके समावेशसे ही भारतीय फलित ग्रीक देशीय नहीं हो सकता है और वह भी उस दशामें जबकि ग्रीक शब्द या कुछ ग्रीक योगोंका उल्लेख जिन ग्रन्थोंमें है वहां स्पष्ट रूपसे हमारे आचार्योंने इन्हें 'यवन' मत कहा है। छठी शताब्दीसे पहलेके पराशर या गर्ग-संहिता आदि ज्योतिष ग्रन्थोंमें इन ग्रीक शब्दोंका कोई अस्तित्व नहीं है, अतः यह निर्विवाद है कि फलित-ज्योतिष भारतकी अपनी वस्तु है, कहींसे उधार नहीं लिया गया।

ग्रीक शब्द पर्यायवाची हैं

प्रारम्भमें हम कुछ ग्रीक शब्दोंकी एक तालिका दे आये हैं, उस पर विचार करना भी आवश्यक है।

'होरा' शब्द ग्रीक है जिसका अर्थ लग्न होता है, अतः कुछ लोगोंका कथन है कि लग्न निकालना भारतीयोंने ग्रीससे सीखा है। उन्हें स्यात् ज्ञान नहीं था कि वेदाङ्ग ज्योतिष (१४०० ई० पू०) में इनके पितामह—

"श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान्
प्राग्विलग्नान् विनिर्दिशेत्।"

आदि लिखकर लग्नका यथार्थ साधन इन विदेशियोंके अस्तित्वके पहले ही कर चुके थे। इतना ही नहीं वराहमिहिरने तो इसे भली भांति स्पष्ट कर दिया है कि 'होरा' और कुछ नहीं, हमारे 'अहोरात्र'के 'अ' और 'त्र'का लोप करनेसे बन गया है, और यह हमारे इसी अहोरात्र व्यापी लग्नका पर्याय मात्र है। होराका दूसरा अर्थ है—राशिका द्विभाग।

इसी प्रकार द्रेष्काण और मुसल्लहका अर्थ होता है त्रिभाग और नवमांश। यहां विचार करनेकी यह

वस्तु है कि भारतीय फलितमें द्विभाग, त्रिभाग, चतुर्भाग, पंचभाग, षष्ठांश और नवमांश तक राशिविभाग से फलादेशका क्रम है, पर ग्रीक – शब्द केवल द्विभाग, त्रिभाग और नवमांशके ही मिलते हैं, शेषके लिये कोई ग्रीक शब्द नहीं है। यदि भारतीय फलित ग्रीकका होता तो सभीके लिये ग्रीक शब्द होते। इसी भांति कंटक शब्द भी चतुष्टयका पर्याय है—

"कण्टक केन्द्र चतुष्टय संज्ञा
सप्तमलग्न चतुर्थखभानाम् ।"

इस वाक्यमें कंटक और केन्द्र दोनों चतुष्टयके पर्याय माने गये हैं।

अनफा और सुनफा

गर्गसंहितामें एक स्थानमें आया है—

"व्ययार्थकेन्द्रगश्चन्द्राद्विनाभानुं न चेद्ग्रहः"

इसको आगे—

"रविवर्जं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगैः सुनफा ।"

के रूपमें लिखा गया है। यहां योगादि सब गर्गसंहिताके हैं। केवल अनफा, सुनफा पीछेसे जोड़ दिये गये हैं।

इन सब प्राचीनतम प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देशके त्रिकालज्ञ श्रद्धेय महर्षियोंने ही फलित ज्योतिषका आविष्कार किया था। साथ ही इसका आरोपण भी अत्यन्त स्थिर पर किया था। गत सोलहवीं शताब्दी तक भारतवर्षसे इतरदेशोंमें दो हजारसे अधिक संख्याकी गणनाका प्रबल प्रमाण या प्रचार नहीं पाया जाता है, जबकि भारतमें 'एकञ्च दशशतञ्च परार्धं' तकका वेदोक्त प्रमाण मिलता है। इतना ही नहीं प्राचीन इतिहास वेत्ताओंने यह बात मुक्तकण्ठसे स्वीकार की है कि गणनाका समस्त श्रेय एकमात्र भारतीय विद्वानोंको ही है। इस परिस्थितिमें ग्रहगणनाका प्रचार अन्य देशीय कैसे कर सकते थे? इसी लिये हम भारतीय बड़े गर्वोन्नत होकर कहते आये हैं—

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति तन्न क्वचित्"



वेदस्वरूप-निरूपण

(लेखक—विद्यभूषण विद्यावागीश श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री सारस्वत)

—गताङ्कसे आगे—

यदि स्वामी दयानन्दजी भी ब्राह्मण भागकी वेदता सूत्रकालसे ही प्रवृत्त मानते तो वे सूत्र-ग्रन्थोंसे ही ब्राह्मणभागकी अवेदता सिद्ध करने में प्रयत्न-न करते। जैसा कि उन्होंने अपने 'भ्रमोच्छेदन' पुस्तकके १४ पृष्ठमें कहा है-"क्या आप (राजा शिवप्रसाद) जैसा कात्यायनको आप्त मानते हैं, वैसा पाणिनि आदिऋषियोंको आप्त नहीं मानते? जो कभी आप्त मानते हो, तो पाणिनि आदि आप्तों की प्रतिज्ञासे विरुद्ध कात्यायन ऋषि क्यों लिखते? जो कहो कि-हम इस वचनको कात्यायनका ही मानेंगे, तो ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि आप पाणिनि आदि अनेक ऋषियोंके लेखका तिरस्कार कर एकको आप्त कैसे मान सकते हो, और जो उन [पाणिनि आदि] को भी आप्त मानते हो, तो 'मन्त्र-संहिता ही वेद है, उनके इस वचनको मानकर तद्विरुद्ध 'ब्राह्मणको वेदसंज्ञाके प्रतिपादक' वचनको क्यों नहीं छोड़ देते'। इससे स्पष्ट है कि स्वामीजी ब्राह्मणोंकी वेदता पुराणकालमें मानते थे, सूत्रकाल में नहीं। आजकलके साम-श्रमी आदि पण्डित ब्राह्मणभागकी वेदता सूत्रकालसे ही मानते हैं। इस प्रकार यह दोनों ही मत आपसमें विरुद्ध हैं, और मिथ्या हैं।

यदि उनकी यह कल्पना मानी जावे कि-ब्राह्मण-भाग सूत्रकालमें ही वेदनामसे प्रसिद्ध हुआ; तब उनसे प्रष्टव्य है कि-ब्राह्मणभागका काल सूत्रकालसे पूर्व है वा पश्चात? पश्चात् कहनेसे तो उन्हींका मत खण्डित हो जायगा, क्योंकि-सूत्रकार अपने से भविष्यत् कालमें बने हुए ब्राह्मणभागको वेद कैसे कह सकते थे। यदि वे ब्राह्मणभागके कालको सूत्रकालसे पूर्व मानते हैं; तो उन्हें बताना चाहिए कि-सूत्रकालसे पूर्व कौन सा काल था। स्मृतिकाल तो उनके मतमें पूर्व नहीं हो सकता, क्योंकि-उनके मतमें स्मृतिकाल, सूत्रकालसे अर्वाचीन है। तो फिर सूत्रकालसे प्राचीन वेदकाल ही हो सकता है। तब यदि ब्राह्मणभागका काल वेदकालमें ही सिद्ध हुआ, तो ब्राह्मणभाग स्पष्ट वेद सिद्ध हुआ; अन्यथा ब्राह्मण-भागकाल वेदकालमें कैसे माना जावे?

यदि वे मन्त्रभागका काल पूर्व मानें; और ब्राह्मण-भागका काल पीछे मानें; तो मन्त्रभागने जब अपने आपको 'वेद' स्वयं नहीं कहा; किन्तु ब्राह्मणभागने ही उसकी वेदता प्रसिद्ध की, इसलिए मन्त्रभागको वेद माना जावे, वैसे ही ब्राह्मणभागने भी अपनी वेदता प्रदर्शित नहीं की; किन्तु सूत्रग्रन्थोंने ही मन्त्र-ब्राह्मण दोनोंको वेद बतलाया। तब दोनोंकी ही वेदता वास्तविक तथा समान-कालिक हुई।

यह भी एक विचारणीय बात है कि-सूत्रकालिक विद्वान् पाणिनि-कात्यायन पतञ्जलि आदि, षड्-दर्शन प्रवर्त्तक गोतम जैमिनि आदि, तथा गृह्य सूत्र-कार, श्रौतसूत्रकार वेद विषयमें अपने उपजीवक स्वा० दयानन्द तथा श्रीसत्यव्रतसामश्रमीकी अपेक्षा

मूर्ख थे, वा विद्वान्। यदि विद्वान् थे; तब उनका मत क्यों न माना जाए? उन्होंने तो ब्राह्मणभाग को वास्तविक ही वेद बतलाया है। तब वादी लोग उस भागको वेदभिन्न कहते हुए कैसे आप्त हो सकते हैं, इससे स्पष्ट है कि-ब्राह्मणभागको वेद मानने पर उनके स्वार्थमें विघात पड़ता है; तभी उन्होंने ब्राह्मण-भागकी अवेदता कथा प्रचलित की।

वास्तवमें 'सूत्रकालसे ब्राह्मणभागकी वेदता प्रवृत्त हुई' यह मत सर्वथा निमूल है। यदि ब्राह्मणभाग वेद न होता; तो उसमें 'छन्दसि निगमें' आदि कह कर विहित किए व्याकरणके कार्य्य न होने उचित थे। परन्तु उसमें होते हैं, तथा दिखाई पड़ते हैं। इस कारण सभी शाखाओं तथा ब्राह्मणभागकी वेदता वास्तविक ही है। क्या कोई धृष्ट यह सिद्ध कर सकता है कि-सूत्रकालसे ही ब्राह्मणभागमें छान्दसकार्य प्रवृत्त हुए हैं; उससे पहले ब्राह्मणभाग में छान्दसकार्य नहीं थे?

हम स्वामीजीके बनाए हुए आख्यातिकसे ही कई वैदिक सूत्रोंके उदाहरण उद्धृत करते हैं, जो उनके माने हुए वेदमें नहीं मिलते। कई उनमें अन्य-शाखाओंके हैं; कई प्रमाण ब्राह्मणभागके हैं। देखिए-

'बहुलं तणि [संज्ञाछन्दसोः]' ३।२।८ (वा०) इसका उदाहरण स्वामीजीने आख्यातिकके ३१० पृष्ठमें दिया है-'या ब्राह्मणी सुरापी भवति, नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति'। 'विजुपे छन्दसि' ३।२।७४ आख्यातिकके ३२५ पृष्ठमें स्वामीजीने कहा है- "यहाँ छन्दो-ग्रहण ब्राह्मण विषयके लिए भी है"। पाठक देख रहे हैं कि-यहां पर स्वामीजीने हमारे ही पक्षकी पुष्टि करके अपने पक्षको निर्बल सिद्ध किया है। और देखिये-'भावलक्षणे....तोसुन्' ३।४।१६ इसका उदाहरण आख्यातिक के ३६३ पृष्ठमें स्वामीजी ने 'काममाविजनितोः सम्भवाम' यह दिया है; जो ब्राह्मणभागका प्रसिद्ध है। 'अन्येभ्योपि दृश्यते' ३।३।१३० इसका उदाहरण आख्यातिकके ३६० पृष्ठमें यह दिया गया है-'सुवेदनाम कृणोद् ब्रह्मणे गाम्।'

'क्त्वापि छन्दसि' ७।१।३८ आख्यातिक के ३६४ पृष्ठमें इसका उदाहरण दिया है-'कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वा' यह ब्राह्मणभागका है। 'छन्दसि च' ५।४।१४२ इसका उदाहरण स्वप्रणीत 'सामासिक' के ५८ पृष्ठमें स्वामीजीने 'आग्नेय-मष्टाकपालं निर्वपेत्' 'अष्टाहिरण्या दक्षिणा' दिये हैं। यह स्पष्ट ब्राह्मणभागके हैं। स्वप्रणीत 'अव्ययार्थ' के २१ पृष्ठमें स्वामीजीने 'तवै-तुमर्थे छन्दसि' इस वैदिक प्रत्ययका उदाहरण-ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै' यह ब्राह्मणभागका दिया है। यह उदाहरण तथा निघण्टुप्रोक्त कई शब्द आर्यसमाज-सम्मत वेदमें नहीं, तब मन्त्रभाग मात्रही वेद है-यह वादियोंका पक्ष स्वयं कट गया, और ब्राह्मणभाग की वेदता सूत्रकालसे भी पहलेकी सिद्ध हुई, क्योंकि उनमें वैदिक-कार्य प्रारम्भसे ही चले आ रहे हैं। यदि कई छान्दसकार्य ब्राह्मणभागमें न भी दिखाई पड़ें; तब भी कोई हानि नहीं, क्योंकि 'व्यत्ययो बहुलम्' 'छन्दसि तु दृष्टानुविधिः, इत्यादि के कारण वहां व्यत्यय समझना चाहिए। इस प्रकार के व्यत्यय मन्त्रभाग में भी दीखते हैं, तब वादीका उक्त हेतु प्रत्युक्त हो गया।

कहीं तुलसीराम स्वामी आदि एक नई कल्पना करते हैं। वे कहते हैं कि आपस्तम्ब आदियों ने यज्ञ समयके लिए ही मन्त्र-ब्राह्मण की वेदता परि-भाषित की है, अन्य काल के लिए नहीं,। परन्तु यह कल्पना भी व्याजमात्र है। इस विषयमें हम पहले बहुतसे प्रमाण उपस्थित कर चुके हैं। यज्ञ समय

के अतिरिक्त ब्राह्मणभाग की वेदता नहीं होती, यह भी कहीं नहीं कहा गया; यज्ञ व्यतिरिक्त स्थलमें मन्त्र-भाग ही वेद होता है- ब्राह्मणभाग नहीं, यह भी कहीं नहीं कहा गया। इधर आपस्तम्ब आदिके सूत्रोंमें मन्त्र और ब्राह्मण इकट्ठे कहे गए हैं, केवल ब्राह्मण-भागका नाम नहीं कहा गया। तब यज्ञातिरिक्त स्थलमें यदि वेदता होगी, तो दोनोंकी होगी, एक की नहीं। अथवा यदि वेदत्वका निषेध होगा; तो दोनोंका होगा; एकका नहीं, क्योंकि उस वचनमें मन्त्र और ब्राह्मण एक साथ हैं। वास्तवमें यह कोई संज्ञासूत्र वा परिभाषा सूत्र नहीं।

इधर वेदका विषय ही यज्ञ है। तब यज्ञके कालमें वेदका; और वेदके कालमें यज्ञका सम्बन्ध होनेसे मन्त्र-ब्राह्मण दोनोंकी वेद संज्ञा सदाही रहेगी। वेदका विषय यज्ञ है-इसमें निम्नलिखित प्रमाण देखिये—

'वेदास्तावद् यज्ञ कर्मप्रवृत्ताः' 'सिद्धान्त शिरोमणि' के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार में स्थित कालमानाध्यायका नवम पद्य है। यही बात 'गोपथ-ब्राह्मण'में भी कही है-'चत्वारो वै वेदास्तैर्यज्ञस्तायते' (१।४।२४) 'यज्ञोवेदेषु प्रतिष्ठितः' (गोपथ १।१।३८)। न्यायदर्शनमें भी कहा गया है-'यज्ञोमन्त्र-ब्राह्मणस्य (वेदस्य) विषयः, ४।१।६२ मनुस्मृति में देखिए-'दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्' १।२३। भगवद्-गीता में भी कहा है-एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो (वेदस्य) मुखे' ४।३२। 'आम्नायस्य [यज्ञ-] क्रियार्थत्वात्, मीमांसादर्शन १।२।१। निरुक्त में देखिए-'यज्ञस्य चत्वारि शृंगेति वेदा वा एते उक्ताः, त्रिधा बद्धाः-मन्त्र-ब्राह्मण-कल्पैः' १३।७।१। १।१।१ सूत्र के भाष्य में 'वेदेपि याज्ञिकाः संज्ञां कुर्वन्ति' इत्यादि कथनमें वेदमें याज्ञिकता बताई गई है। इसी प्रकार 'न सर्वैर्लिंगैर्नच सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः, ते चाऽवश्यमेव यज्ञगतेन पुरुषेण यथा-यथं विपरिणमयितव्याः' 'याज्ञे कर्मणि स [ऋषि (वेद) प्रोक्तो] नियमः' इत्यादि महाभाष्यके पस्प-शाह्निकके वचन से भी उक्त बात सिद्ध होती है।

आर्यसामाजिक पण्डित रघुनन्दन शर्माने भी अपनी 'वैदिक सम्पत्ति, पुस्तकमें वेदका विषय यज्ञ माना है। वेदके पढ़नेके अधिकारकी प्राप्तिके लिए ही यज्ञोपवीत पहिना जाता है। वह यज्ञके वस्त्र होनेसे ही यज्ञोपवीत नाम से प्रसिद्ध है। तब वेदका यज्ञसे सम्बन्ध होनेसे, और वादीके अनुसार यज्ञकालमें मन्त्र-ब्राह्मणकी वेद-संज्ञा होनेसे और यज्ञोपवीतके हमारे सदा सहचारी होनेसे ब्राह्मणभाग वास्तविक ही वेद सिद्ध हुआ। इस प्रकार वादीके पक्षको स्वीकार करने पर भी हमारा ही पक्ष सिद्ध होता है।

कई लोगोंका यह आक्षेप हुआ करता है कि 'शतपथ ब्राह्मण' आदिके साथ वेद नाम नहीं है, परन्तु ऋग्वेद आदिके साथ वेद शब्द है, तब मन्त्रभाग तो वेद सिद्ध होता है-ब्राह्मणभाग नहीं।' पर यह भी साधारण बात है, क्योंकि जिस प्रकार ब्राह्मणभागका अपना २ नाम 'शतपथ-ब्राह्मण, ऐतरेयब्राह्मण, गोपथब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण आदि हैं, वैसे ही मन्त्रभागका भी अपना नाम वाजस-नेयीसंहिता, शाकल्यसंहिता, कौथुमसंहिता, शौनकसंहिता आदि है। जिस प्रकार वाजसनेयी संहिता शुक्लयजुर्वेदकी शाखा है अतः शुक्ल-यजुर्वेद नामसे कही जाती है, शाकल्यसंहिता ऋग्वेदकी शाखा है, अतः ऋग्वेद नाम कही जाती है, कौथुमसंहिता सामवेदकी शाखा होनेसे सामवेद

के नामसे कही जाती है, शौनकसंहिता अथर्ववेदकी शाखा होनेसे अथर्ववेद नामसे कही जाती है, वैसे ही शतपथब्राह्मण भी यजुर्वेद का दूसरा भाग है, अतः यजुर्वेद नामसे कहा जाता है। ऐतरेयब्राह्मण ऋग्वेद का दूसराभाग है, इसलिए ऋग्वेद नामसे कहा जाता है। ताण्ड्य ब्राह्मण भी सामवेदका अन्यभाग है; अतः सामवेद नामसे कहा जाता है। गोपथब्राह्मण भी अथर्ववेदका दूसराभाग है, इसलिए अथर्ववेदके नामसे कहा जाता है। इसप्रकार ब्राह्मणभाग भी मन्त्रभागकी भान्ति वेद सिद्ध हुआ। मन्त्रभागका 'संहिता' यह अपना विशिष्टनाम है, ब्राह्मणभागका 'ब्राह्मण' यह विशेषनाम है। वेद दोनों ही हैं। इस विषय में "वेदस्वरूप-निरूपण (क)" श्रीस्वाध्याय' की ३।२-३-४ संख्याओं में देखिये।

कई लोग कहा करते हैं कि श्रीसत्यव्रत सामश्रमी ने अपने 'निरुक्तालोचन'में कई शब्दोंका संग्रह किया है, जिससे मन्त्रभाग ही केवल वेद सिद्ध होता है, जैसे कि-'त्रयी' शब्द वेदका पर्यायवाचक है; पर यह मन्त्रभागके लिए है, ब्राह्मणभागके लिए नहीं। तब ब्राह्मणभाग वेद कैसे हो सकता है? इस प्रकार आम्नाय-आदि शब्द भी जानने चाहियें'। इस पर उत्तर यह है कि हम वेदके पर्यायवाचक 'श्रुति' आदि कई इस प्रकार के शब्द दिखला सकते हैं, जिससे केवल ब्राह्मणभाग का ग्रहण होता है। तब क्या वादी मन्त्रभागको वेद न मानेंगे?

वास्तव में 'त्रयी' आदि कई ऐकदेशिक शब्द हैं जो केवल मन्त्रभागवाचक हैं, और कई शब्द इस प्रकारके हैं, जो केवल ब्राह्मणभाग वाचक हैं। वे एक दूसरे भागके साथ प्रयुक्त नहीं किए जा सकते। जैसे-मन्त्र वा मन्त्रभाग, यह ऐकदेशिक शब्द ब्राह्मणभागके साथ नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि ऐकदेशिक होने से वह उसी में रूढ़ है। इसीप्रकार 'ब्राह्मण' यह अथवा ब्राह्मणभागशब्द मन्त्रभागके साथ भी नहीं जोड़ा जा सकता वैसा ही 'त्रयी, संहिता' आदि कई शब्द ऐकदेशिक होने से मन्त्र-भागमें ही रूढ़ हैं? इसलिए ब्राह्मणभागके नामके साथ नहीं जुड़ सकते। इसी प्रकार 'ब्राह्मणम्, विधि, अर्थवादः, शब्द ऐकेदेशिक होनेसे ब्राह्मणभाग में रूढ़ हैं, मन्त्रभागके नामके साथ नहीं जुड़ सकते।

परन्तु 'वेद, श्रुति, आम्नाय, निगम' इत्यादि और 'छंद' आदि जो समुदायाचक शब्द हैं, वे मंत्र और ब्रह्मण दोनोंको बताते हैं यह हम इस निबंध में अन्यत्र कह चुके हैं। और फिर "समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि प्रयुज्यन्ते, पूर्वे पंचालाः, उत्तरे पंचालाः, घृतं भुक्तम्, तैलं भुक्तम्" इस महाभष्यके पस्पशान्हिकस्थ वचनके अनुसार छन्द, वेद, आम्नायत आदि शब्द कहीं केवल मन्त्रभागके वाचक होते हैं, कहीं केवल ब्राह्मण-भागके, कहीं दोनोंके यह भी हम इस निबन्धमें अन्यत्र बता चुके हैं। तब ऐकदेशिक शब्दका दोनों भागोंके नामसे सम्बन्ध न हो सकनेके कारण इससे हमारे पक्षकी कोई हानि नहीं। इस प्रकार सामश्रमी का मत प्रत्युक्त हो गया।

अन्य यह भी बात है कि श्रीसत्यव्रत सामश्रमी मन्त्रभाग को भी पौरुषेय मानते हैं-जैसे कि निरुक्ता लोचन में उन्होंने २१४ पृष्ठ में कहा है 'वस्तुतो बहूनां मन्त्राणां समालोचनादपि व्यक्तं प्रतीयते एव

तेषां धीमत्पुरुषकृतत्वम्, बहुपुरुषकृतत्वं च ध्वन्यते, 'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत' इति लिङ्गात्। तथा-चास्मत्पूर्वपुरुषैःऋषिभिरेव कृत एष मन्त्रभागोपीति,। तब क्या उनके मतके उपस्थापित करनेवाले आर्यसमाजिक सज्जन सामश्रमीजीके इस मतको मानते हैं? यदि नहीं, तब हम ही सामश्रमीजीके निर्मूल मतको कैसे मान लें? उनकी युक्तियोंका उत्तर दे ही दिया गया है, अतः ब्राह्मणभाग वेद सिद्ध हो गया।

कई लोग 'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या' २।१।३२ 'शेषे ब्राह्मणशब्दः २।१।३३ मीमांसादर्शनके इन दो सूत्रोंको उद्धृत करके, पूर्व सूत्रमें वेदका लक्षण मानते हुए, दूसरे सूत्रमें ब्राह्मणभागका लक्षण मानते हुए, ब्राह्मणभागको वेदसे भिन्न मानते हैं। इसी प्रकार अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्ते। के? मन्त्राः, १।१५।५ 'अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मण वादा श्च, २।१६।३ इस निरुक्तपाठको उपन्यस्त करके, ब्राह्मणभागको मन्त्र भागसे पृथक दिखाकर, उसे वेदसे भिन्न सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुतः ऐसा प्रयत्न अज्ञानमूलक है। यदि मीमांसाके पूर्व सूत्रमें 'तच्चोदकेषु वेदाख्या' तथा दूसरे सूत्र में शेषे ब्राह्मणशब्द,) ऐसा पाठ होता, इसी प्रकार ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्ते। के? वेदा यह तथा 'अहिवत्तु खलु वेद वर्णा ब्राह्मणवादाश्च' ऐसा पाठ निरुक्त में होता तब तो आक्षेप्ता लोगोंके पक्ष की पुष्टि कदाचित् सम्भव थी। तब स्यात्ब्राह्मणभाग वेदभिन्न कदाचित् (सर्वांशमें तब भी नहीं) हो सकता था, पर अब नहीं। मीमांसाके पूर्व सूत्रमें 'वेदाख्या' न कह कर 'मन्त्राख्या' कहा है, इस से मन्त्र तथा ब्राह्मणका तो आपसमें भेद फलित होता है, जिसे हम भी मानते हैं, पर इससे ब्राह्मणभाग वेद भिन्न सिद्ध नहीं होसकता। बल्कि दोनों वेदके ही भाग सिद्ध होते हैं, और भागी सिद्ध होता है वेद। तब वेदके चोदक (प्रेरक) भागको मन्त्रभाग नामसे कहनेसे, तदतिरिक्त वेद भागको ब्राह्मण भागसे कहने मीमांसाकारको दोनों ही भागोंका दत्व इष्ट है *पृथक् पृथक् मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग इस प्रकार भागत्व ही अभीष्ट है। इसीलिये मीमांसा दर्शनके अपि वा वेदनिर्देशाद् अपशूद्राणां प्रतीयेत ६।१।३३ इस सूत्रमें 'वेदे हि त्रयाणां निर्देशोभव ति बसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, ग्रीष्मे राजन्यं, बर्षासु वैश्यं' यह ब्राह्मण वचन वेद वचन ही इष्ट है। इसी प्रकार निरुक्तमें भी जान लेना चाहिये। इस विषय में प्रमाण इसी निबन्धमें अन्यत्र देखने चाहियें। फलतः जहाँ पर 'मन्त्रः' तथा 'ब्राह्मणम्' यह भिन्न भिन्न नाम आजाएं, वहाँ पर ब्राह्मण भाग वेदभिन्न कभी नहीं हो सकता।

कई लोग 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' ६।१।१ ब्राह्मणे सञ्ज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् ६।१।२ इन वैशेषिक दर्शनके सूत्रोंमें, 'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ४।२।६६ इस पाणिनि सूत्रमें वेद ब्राह्मण तथा छन्द ब्राह्मण शब्दोंको पृथक् पृथक लिखा देखकर ब्राह्मणभाग का वेदसे भिन्न स्वीकार करने लगते हैं; उन्हें 'छन्दोब्राह्मणानि च' का समाधान तो इस निबन्धके उपक्रम में 'श्रीस्वाधाय के नववर्षाङ्क (सं० २००१) में देखना चाहिये। वैशेषिकदर्शनके

*सायणने अपने ऋग्वेदभाष्यके उपोद्घातमें इस पर कहा है—'मन्त्रब्राह्मण रूपौ द्वावेव वेदभागौ इत्यांगी कारान्मन्त्र लक्षणस्य पूर्वमभिहित त्वाद वशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणमित्येतल्लक्षणं भविष्यति तदेतल्लक्षणद्वयं जैमिनिः सूत्रयामास—'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषे ब्राह्मणशब्द इति।"

सूत्र का उत्तर भी वैसा ही है। फिर भी कुछ और भी कह देते हैं।

उक्त आक्षेप उपस्थित करनेवाले वादियोंने 'जुष्टार्पिते च छन्दसि ६। १। २०६ 'नित्यं मंत्रे ६। १। २१० पाणिनि - सूत्रोंसे तथा 'मंत्रेश्वेत वह ३।२।७१ 'विजुये छन्दसि ३।२।७३ इन पाणिनिसूत्रोंसे क्या विलक्षणता देखी है, जो कि उक्त पाणिनिसूत्र तथा वैशेषिकसूत्रोंको आक्षेपके लिये उपन्यस्त किया है। उनके कहे हुए आक्षेपके अनुसार तो इन पाणिनिसूत्रके युगलमें मन्त्रभाग भी छन्द (वेद) से पृथक गृहीत होनेसे वेदभिन्न हो जाएगा। क्या वादी लोग ऐसा मानने को तैयार हैं ? यदि वे गोबलीवर्द न्यायसे अथवा ब्राह्मणवसिष्ठ न्यायसे अथवा तनादि गणमेंआई हुई भी कृञ्धातुके तनादिकृञ्भ्यउः'३।१।७६ इस सूत्रमें तनादिसे पृथक् ग्रहण की भाँति ही छन्दो-मन्त्रका पृथक् उपादान मानें; और उससे मन्त्रभागको वेदसे भिन्न न मानें; वैसे ही उन्हें उनसे दिये हुए वैशेषिक सूत्र एवं पाणिनिसूत्रमें वेद-ब्राह्मणके पृथक् ग्रहण करनेके विषयमें भी जानना चाहिये। समान-न्याय से ब्राह्मणभाग भी वेद-भिन्न न सिद्ध होगा। शेष उत्तर इस निबन्धके उपक्रममें वादी लोग देखें।

कई लोग निरुक्त में–'अन्वध्यायम्'के उदाहरणमें ब्राह्मणभागके प्रमाणको न देखकर, तथा मन्त्रभाग का प्रमाण देखकर, इससे निरुक्तकारके मतमें ब्राह्मण-भागको अवेद (वेद भिन्न) मानते हैं; यह भी ठीक नहीं। यद्यपि यास्कके मत में 'अन्वध्याय' वेदका नाम है, और 'भाषायां' लोक का; तथापि इससे हमारे पक्षकी कोई हानि नहीं; क्योंकि- 'अन्वध्यायम' इस का अर्थ 'वेदमें' है, और वेदके दोभाग हैं, मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग। उन दोनों में एक भागके भी प्रमाण देनेसे 'अन्वध्यायम्' की सार्थकता हो ही जाया करती है। जैसे कि-न्यायदर्शनमें 'तदप्रामाण्यमनृत व्याघात पुनरुक्तेभ्यः' २।१।५७। यहां पर वेदके आक्षेपका प्रकरण है। वहां पर दोभाग में एक ब्राह्मणभागका प्रमाण दे देनेसे वह आक्षेप सफल हो गया। जैसे कि महाभाष्य में (पस्प शान्हिक) 'वेदे खन्हपि कहकर 'पयो व्रतो ब्राह्मणो यवागू व्रतो राजन्यः' यह केवल ब्राह्मणभागका प्रमाण देने पर भी वेद शब्दकी उक्ति सफल हो गई, जैसे कि मीमांसादर्शनमें 'अपिवा वेद-निर्देशाद्-अपशूद्राणां प्रतीयेत'६।१।३३ इस सूत्रमें 'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, ग्रीष्मे राजन्यं' इस केवल ब्राह्मणभागके प्रमाण देनेसे भी वेदोक्तिकी चरितार्थता मानी गई है। जैसे कि पाणिनि महाभाष्यमें 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थी छन्दसीतिवाच्यम' वा० २।३।६२ इस वैदिक वार्तिकमें 'या खर्वेणपिवति तस्यै खर्वः' इस ब्राह्मणभागके उदाहरण दे देने पर वेद (छन्द) शब्द सफल होगया है। वैसे निरुक्त में 'अन्वध्यायम्' के उदाहरण में यदि एक भाग मन्त्रभागका उदाहरण दे भी दिया गया; तब इससे हमारे पक्षकी कोई हानि नहीं।

हां; यदि निरुक्तकार भाषा (लोक) का उदाहरण ब्राह्मणभागका देता; तो हमारे पक्षकी हानि थी। परन्तु निरुक्तकारने वैसा नहीं किया। अपितु उसी निपात प्रकरण में 'शिशिरं जीवनायकम' १।१०।१ 'नेजिजह्मन्त्यो नरकं पताम' १।११।१ इत्यादि वादि सम्मत शाखाओंसे भिन्न शाखाओंके भी उदाहरण दे दिये गये हैं। निरुक्तकार को छन्द, निगम आम्नाय आदि शब्दोंसे भी वेद अभिमत है। वहां पर उसने स्थान स्थान पर उनका नाम लेकर ब्राह्मणभागके भी प्रमाण दिये हैं- यह हम पूर्व बता चुके हैं। तब

निरुक्तकार के मत में भी ब्राह्मणभाग के वेद होने से वादियों का आक्षेप निराधार सिद्ध हुआ।

कई वादी 'यथो एतद् ब्राह्मणेन रूप सम्पन्ना, विधीयन्ते' इत्युदितानुवादः स भवति १।१८।५ इस निरुक्तवचनसे यद्यपिः मन्त्रब्राह्मणात्माको वेद-स्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्र व्याख्यान रूपत्वाद मन्त्र एवादौ समाम्नातः' इस तैत्तिरीयत संहिता भाषा-भूमिकास्थ सायण वचन से 'विधि शब्दाच्च' इस मीमांसा सूत्रके 'मंत्र व्याख्यान रूपो ब्राह्मणगत शब्द' शबर स्वामी के वाक्य से ऋगादीन् मंत्रान् अधीते-अधीत्य तदर्थं ब्राह्मणेभ्यो विधिच श्रुत्वा कर्माणि कुरुते' ७।१४।१ इस छांदोग्य भाष्य रूप श्री शङ्कराचार्यके वचनसे ब्राह्मणभागको मंत्रभागका व्याख्यानात्मक सिद्ध करके उसको वेदभिन्न सिद्ध करनेके लिये चेष्टा करते हैं, इस विषयमें हम पूर्व उत्तर दे चुके हैं। इधर सायण शबरस्वामी श्रीशङ्करा-चार्य भी ब्राह्मणभागको वेद मानते हैं। यह भी हम पूर्व ही बतला चुके हैं। जैसे अष्टाध्यायी वार्तिक पाठ तथा उसकी व्याख्या महाभाष्य यह मिलकर व्याकरण बनता है, मूलका नाम सूत्रपाठ वार्तिक पाठ है। व्याख्यानात्मक महाभाष्यका वह नाम नहीं परन्तु व्याकरण दोनों ही है; वैसे ही मूलका नाम मंत्रभाग है, व्याख्या विध्यादि भागका नाम ब्राह्मण-भाग है। ब्राह्मणभाग का नाम मंत्रभाग नहीं होता, पर वेद दोनों भाग मिलकर माने जाते हैं, यह सिद्ध होगया।

इसीलिए—पूर्वं तु भाषायां ८।२।६८। यहाँ पर भाषा शब्द देखनेसे इससे पूर्वका विचार्य माणानाम् ८।२।६७ यह अष्टाध्यायी सूत्र छान्दस (वैदिक) माना जाता है। सिद्धांतकौमुदीमें भी यही कहा है—'भाषा ग्रहणात पूर्वं ८।२।६७ योगसछंदसीति ज्ञायते" उसी वैदिक सूत्रका उदाहरणत होतेव्यं दीक्षितस्य गृहा (३३) न होतव्यमिति, यह ब्राह्मणभागका ही दिया गया है। तब इससे हमारे पक्षकी पुष्टि हुई तथा वादियोंका पक्ष निरस्तहो गया। यदि सभी शाखायें तथा ब्राह्मणभाग वेद न माना जावे तब संध्या, शिखा यज्ञोपवीत आदि का वर्तमान जार वेद पंथो में स्पष्टतया वर्णनन मिलने से उनकी अवैदिकता माननी पड़ेगी। पर यह बात हमारे धर्मको हानि पहुंचाने वाली होगी। इस कारण विद्वानोंको चाहिये कि सभी ११३१ शाखाएं तथा ब्राह्मणभाग जिसमें उपनिषद् आरण्यक सम्बधित हैं-वेद हैं-इस प्राचीन मत का फिरसे प्रचार करें; जिससे हम अपने धर्मको पूर्णरूपसे वैदिक कह सकें। आशाहै विद्वानों का इधर अवश्य ध्यान पड़ेगा। जो लोग इसपर प्रत्यालोचना करना चाहें, उन्हें इन सब बातोंका विचार करके तब लेखनी का उठानेका प्रयत्न करना चहिये।

अन्तिम सूचना

विज्ञ पाठकोंने इस निबन्धको भी मनोयोग पूर्वक देखा ,होगा। यद्यपि हमसे काठकसंहिता में वेदके नामसे दिये गये मन्त्र वर्तमान ऋक्संहिता आदिमें भी मिलने सम्भव हैं, तथाति बहुतसे वेदमन्त्र इस प्रकारके भी मिल सकते हैं; जो वर्त-मान प्रसिद्ध चार वेद पुस्तकोंमें न मिलकर तदति-रिक्त शाखा वा ब्राह्मणमें मिलें-इससे हमारा ही पक्ष पुष्ट होगा। दिङ्मात्र देखिये—

'स्नात्व्यादयश्च' ७।१।४६ इस पाणिनि सूत्रका वैदिक उदाहरण 'स्विन्नः स्नात्वी मलादिव' यह है। काठकसंहिता में ३८।६३ एवं मैत्रायणीसंहितामें ३।११।१११ 'स्नात्वी' यह पद मिलेगा। वाजसनेयी

में २०।२० यहाँ पर 'स्नातो' तथा काण्व में भी २२।५ इसी तरह, अथर्व-शौनकसंहिता में ६।११५।३ 'स्नात्वा' मिलेगा। इससे काठकादिसंहिता का भी निर्विवाद वेदत्व सिद्ध होगा। वेद शब्द प्रधान हुआ करता है—यह बात भी अवश्य स्मर्तव्य है।

निरुक्त में 'ओषधे ! त्रायस्वैनं' यह मन्त्रभाग का प्रमाण दिया है। यह प्रमाण मैत्रायणी १।२।२–, ६०-११० तथा काठक ३।२।६ एवं तैत्तिरीयसंहिता, १।२।१।१, १।३।५।१ में मिलेगा। शुक्लयजुर्वेद (वा० सं०) ४।१,।५।४२,६।१५ में तथा काण्व स० में ४।२, ५।५४, ६।२० 'ओषधे! त्रायस्व, मिलेगा; उसके साथ 'त्रायस्वैनं' इस प्रकार 'एनं' नहीं—मिलेगा। तब मैत्रायणी आदि संहिताएं भी मन्त्रभाग (वेद) सिद्ध हुईं।

एक उदाहरण और लीजिए—श्री पतञ्जलि ने महाभाष्य में ३।१।७ सूत्र में 'शृणोत ग्रावाणः' यह वेदवाक्य दिया है। यही पाणिनिको भी 'तप्तनम्' ७।१।४५ इस सूत्र में अभीष्ट है। पर ऐसा मन्त्र तैत्तरीय संहिता १।३।१३।१, काठक ६।३३ मैत्रायणी १ ३ ४ आदि में मिलता है। वर्तमान शुक्लयजुर्वेद वाजसनेयी में 'श्रोता ग्रावाणः' ६।२६ मिलता है, काण्व में भी ६।३८।

फलतः सभी शाखाएं वेद सिद्ध हुईं। इस प्रकार 'या खर्वेण पिबति' २।३।६२ 'निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः' ३।१।१२३ 'नेजिह्मायन्तो नरकं पताम' ३।४।८ इत्यादि ब्राह्मणवाक्य भी पाणिनि कात्यायन निरुक्तकारादिको वेद इष्ट हैं। तब 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' यह पक्ष ठीक सिद्ध हुआ। सम्भव है कि हमारे पास अनुसन्धान-सामग्रीकी न्यूनता वश हमसे बताए गए कई मन्त्र वर्तमान चार वेद ग्रन्थों में मिल जायें, (इसके लिये समालोचकों को पूर्ण-सङ्केत-समेत अपने अनुसन्धान भी लिखने चाहियें, जिस पर हम भी विचार करेंगे) तथापि पाठकोंने अनुभव किया होगा कि हमारा पक्ष प्राचीन पाणिनि आदि मुनियोंके आधार पर है, निर्मूल नहीं। तब पाणिनि आदि प्राचीनोंके श्रद्धालुओंको भी उनका पक्ष मानकर अपने अर्वाचीन पक्षमें अभीसे सुधार कर लेना चाहिए। नहीं तो समय उन्हें कभी न कभी इस प्राचीन पक्षमें घसीट ही लायगा। इन निबंधोंमें जोत्रुटि रहीहो उसकी सूचना हमें 'अध्यक्ष सध ० संस्कृत कालेज मुलतानसिटी' इस पते पर दे देने से भावी जनता को भी लाभ पहुंचाना सम्भव है। इति।

यज्ञोपवीत-मीमांसा

ले०-साहित्यायुर्वेदाचार्य श्री पं० रामेश्वर जी शास्त्री विद्यालङ्कार

[विद्वान् लेखकका यह अन्वेषणात्मक लेख द्विजातिवर्गके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। सम्पादक]

द्विजाति मात्रके लिए शास्त्र निर्धारित समय पर 'यज्ञोपवीत' धारण करना प्रधान और अपरिहार्य कर्तव्य है, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञोपवीत धारण करनेके पश्चात् ही "द्विज" संज्ञा धारण करनेके अधिकारी बन सकते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमें इस बातका समर्थन इस प्रकार किया है—

मातुर्यदग्रे जायन्ते,
द्वितीयं मौञ्जीबन्धनात्।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशस्तस्मा-
देते द्विजाः स्मृताः ॥

अर्थात् 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पहिले मातृगर्भ से उत्पन्न होते हैं, और मौञ्जीबन्धन याने यज्ञोपवीत संस्कार होने पर उनका अध्ययनजन्य बौद्धिक जीवन प्रारम्भ होता है, अतएव "द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां जायन्त इति द्विजाः" इस व्युत्पत्तिके अनुसार उपर्युक्त वर्ण द्विज कहलाते हैं।

द्विजातियोंके लिये यज्ञोपवीत धारण किए बिना नित्य, नैमित्तिक काम्य कर्म बड़े ठाट बाटसे करने पर भी निष्फल हो जाते हैं, 'त्रिशिखोऽनुपनीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्' इस स्मृतिवाक्यके अनुसार अनुपनीत व्यक्ति न याज्ञिक कर्मका अधिकारी है और न अन्य शास्त्र विहित कार्यों का, क्योंकि यज्ञोपवीतके अनन्तर ही द्विज अध्ययनाधिकारी होता है, बिना शास्त्राध्ययनके कर्मोंकी इति-कर्तव्यता उपादेयता और सम्यगनुष्ठानका ज्ञान होना असम्भव है, अतः बिना ज्ञानके किए कर्मका सम्यक् फल प्राप्त होना ख-पुष्पवत् ही समझना चाहिए, अतः स्मृतिकारने यज्ञोपवीतके बिना कार्य करनेकी निष्फलता प्रतिपादित की है।

आजकल शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान करने पर भी फलश्रुतिके अनुसार फल प्राप्ति होने में विलम्ब होता है। उसका प्रधान कारण समयपर यज्ञोपवीत न धारण करना और धारण कर लेने पर भी उसकी कर्तव्यताका भलीभांति न पालन करना ही है। इसलिये द्विजातियोंके लिये यथासमय यज्ञोपवीत अवश्य कर लेना चाहिए।

यज्ञोपवीतका समय

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भाद्वै द्वादशे विशः ॥

गर्भाधानकालसे अथवा गर्भोत्पत्ति काल से ८ वें वर्षमें ब्राह्मणका, ११ वें वर्षमें क्षत्रियका और १२ वें वर्षमें वैश्य बालकका "उप-नयन" संस्कार होना चाहिए। उपनयनका तात्पर्य यह है कि "उपगुरोः समीपे नयनम्" अर्थात् यज्ञोपवीत होते ही गुरु-

कुलमें गुरुकी संनिधिमें अध्ययनार्थ बालकको सौंप देना। स्मृतिमें भी यही लिखा है—

गृह्योक्त कमर्णा येन
समीपं नीयते गुरोः ।
बालो वेदायतद्योगा-
द्बालस्योपायनं विदुः ॥

अर्थात् गृह्य सूत्रमें कहे हुये कार्यके अनुसार गुरुके समीप ले जानेका जो संस्कार है उसे "उपनयन" कहते हैं। शतपथब्राह्मणके उपनयन शब्द की आलोचनामें प्रो० मैक्समूलरने· गृह्यसूत्र की भूमिका में लिखा है—

"Upnayan is a solemn reception of the pupil by the teacher who is to teach him the Veda. (Sacred Book of East. X X X Page XV.

आश्वलायनने इसलिये 'अष्ट वर्षं ब्राह्मणमुपनयीत तमध्य पयीत" इस श्रुतिके द्वारा उपनयन के अनन्तर अध्ययन कराने पर विशेष बल दिया है, ताकि वह वास्तविक ब्राह्मणादि संज्ञा धारण कर सके। शतपथब्राह्मणने इस बातको इस प्रकार कहा है—

आचार्यो गर्भी भवति
हस्तमादाय दक्षिणम् ।
तृतीयस्यां संजायते
सावित्र्या सह ब्राह्मणः ॥

आचार्य शिक्षार्थीके दाहिने हाथको पकड़ कर गर्भवान् होता है। इसके बाद तीसरे दिन वह सावित्री (गायत्री) के साथ ब्राह्मण होकर जन्म लेता है।

यह उपनयन का प्रधान काल है। यदि असावधानता एवं आपत्तिवश ऊपर निर्दिष्ट समय पर उपनयन न हो सके तोः—

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य
सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धो-
राचतुर्विंशतेर्विशः ॥

इसके अनुसार १६।२२।२४ वर्ष तक क्रमशः द्विजातियोंका व्रतबन्धन (यज्ञोपवीत) अवश्य हो जाना चाहिए। कहीं इस कालका अतिक्रमण हो जाय तो श्रीमनुजी के- •

अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते
सर्वधर्म बहिष्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या-
भवन्त्यार्य विगर्हिताः ॥

इस वचनके अनुसार व्रात्य और आर्य विगर्हित हो जाते हैं। आज भारतके कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व्रात्य बन गए हैं और बनते जा रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप भारत का गौरवोन्नत मस्तक नीचे झुका है ! भारतीय सभ्यता लुप्त हो रही है। फिर भी शास्त्रीय विधियों पर ध्यान नहीं दिया जाता। क्या ही उत्तम होता यदि ये भारतीय फिर अपनी भारतीय पद्धतिको अपना लेते।

यज्ञोपवीत का इतिहास

यज्ञोपवीतका प्रारम्भिक इतिहास बहुत पुराना है। कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तरीय संहितामें उपवीत शब्दका उल्लेख है, इस ग्रन्थमें यह दिखलाया गया है, कि भारतकी तीन जातियोंमें तीन प्रकारके सूत्र थे और विभिन्न अवस्थाओंमें विभिन्न रूपसे उनका व्यवहार होता था। शुक्लयजुर्वेदकी वाजसनेयी शाखाके शतपथब्राह्मणमें उपवीत के

व्यवहारका स्पष्ट वर्णन है। तैत्तरीय संहिताकी श्रुति इस प्रकार है–

"निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणां उपवीतं देवानाम्" (तै.शा. २-५-११-१) शतपथब्राह्मण में इस श्रुतिकी व्याख्या इस प्रकार की गई है कि निवीत मनुष्योंको, प्राचीनावीत पितृगणको और उपवीत देवताओंको धारण करना चाहिए। शतपथब्राह्मणमें इस सम्बन्धकी एक आख्यायिका दी हुई है कि एकसमय समस्त भूत जगत् (देव, पितृ, मनुष्य) प्रजापतिके निकट अपनी जीविकाके विधानकी व्यवस्था करानेके लिए उपस्थति हुए। उस समय देवता उपवीति, पितृगण प्राचीनावीति और मनुष्य वृन्द प्रावृति (वस्त्र पहने) एवं सायनाचार्यकी व्याख्याके अनुसार नीविति होकर उपस्थित हुए थे। शतपथब्राह्मणके इस आख्यान भाग द्वारा यह विदित होता है कि देवता पितर और मनुष्यको किस प्रकार के सूत्र धारण का अधिकार था। शतपथ ब्राह्मणमें प्रतिपादित रीतिके अनुसार देव,पितृ,मनुष्य कार्योंमेंक्रमशः उपवीत, प्राचीनावीत, और निवीतका व्यवहार प्रदर्शित किया गया है। कातयायन श्रौत सूत्र में भी इसका विशिष्ट वर्णन पाया जाता है।

कई लोग अनुमान करते हैं कि प्राचीन आर्योंने आकाशस्थ कालपुरुष अथवा यज्ञ मनुष्यके कमर-बन्दके अनुकरण पर उत्तरीय उपवीत या मेखलाकी कल्पना की थी, और यज्ञके समय उसका व्यवहार करते थे। पारसी लोग अभी तक यज्ञोपवीतको उसी भांति कमरमें लपेटे रहते हैं। उपवीत धारण की रीतिके प्रवर्तनका प्रारम्भिक इतिहास ऐसा होना असम्भव नहीं, किन्तु इसका लिखित समर्थन प्राप्त नहीं होता।

इन सब बातोंसे यह सिद्ध हुआ कि 'यज्ञोपवीत' धारण करना प्राचीन है, परन्तु उसका स्वरूप जाति एवं परिधान भेदसे भिन्न प्रकारका था। सूत्रकाल में जहां यज्ञोपवीतकी विभिन्न प्रक्रियाएँ बतलायी गयी हैं वहां स्मृतिकालमें ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये विभिन्न वस्तुओंके बने यज्ञोपवीत धारण करनेकी आज्ञा मनुजीने प्रदान की है—

कार्पाससमुपवीतं स्यात
विप्रस्योर्ध्ववृत्तं त्रिवृत्।
शणसूत्रमयं राज्ञो-
वैश्यस्याविक सूत्रकम् ॥

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत त्रिगुण सूत्रका और क्षत्रियका शण (जूट) का एवं वैश्यका मेंढेकी ऊनका बना हुआ चाहिये।

ऐसा विधि विधान होने पर भी समय पाकर सबके लिये सूत्र निर्मित नवगुण यज्ञोपपवीत ही होने लग गया, जिसके प्रचलनका उल्लेख श्री हनुमान् विरचित हनुमन्नाटक, इसीके आधार पर बने भवभूति निर्मित महानाटक, महाकवि शूद्रक विरचित मृच्छकटिक आदि नाटकों, वाग्देवतावतार बाणभट्ट रचित कादम्बरी आदि गद्य काव्यों, और श्रीमहाकवि कालिदास रचित रघुवंश, कुमारसंभव और माघविरचित शिशुपालवध आदि महाकाव्यों में बड़े अनूठे ढङ्गसे पाया जाता है। सम्भवतः इन महाकवियोंके समयमें यज्ञोपवीतका यही रूप था जो आज प्रचलित है।

यज्ञोपवीत की आवश्यकता

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि यज्ञोपवीतके बिना हमारे किये हुये सब कार्य निष्फल हो जाते हैं, अतएव "सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च" ऐसी स्मृतिकारोंकी आज्ञा है।

इसके बिना हमें श्रौत-स्मृति कर्म करनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। वक्षस्थलकी सुन्दरता बढ़ानेमें भी यज्ञोपवीत एक प्रमुख स्थान रखता है। द्विजातियों के पहिचानने का भी एक यह विशुद्ध और सुन्दर प्रतीक है।

अपनी शुभ्रता स्वच्छता और कोमलतासे शुभ्रस्वच्छ चरित्र रहनेका, अपने धौत धवल सूत्र-मयगुणोंसे शौर्य औदार्य आदि नवगुणोंको अपनी आत्मामें विकसित करनेका एवं सात्विक गुणोंके उपार्जन करनेका, ग्रन्थियोंसे इन सब बातों की गांठ लगानेकी अर्थात् प्रतिज्ञा करनेका सुन्दर सुखद और आवश्यक उपदेश प्रदान करता रहता है। द्विजातियोंका यह अनुपम रत्न है, श्रीशूद्रक रचित मृच्छकटिक प्रकरण के प्रधान नायक श्रीचारुदत्तके शब्दोंमें यह—

अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवानांच पितृणाञ्च भागो येन प्रदीयते॥

सुवर्ण और मोतियोंके आभरणोंसे भी बढ़ कर ब्राह्मणोंका विभूषण है, देव और पितृकार्यमें सव्यापसव्य क्रियया यज्ञोपवीती ही भाग लेने का अधिकारी है।

यज्ञोपवीत परिधानके अधिकारी द्विजाति ही हैं दूसरी जातियों एवं विभिन्न देशवासियोंको इस का अधिकार न प्रदान करनेका कारण यह है कि उनका दृष्टिकोण भौतिक साधनों एवं कला-कौशल के बृहत्तर कार्य सम्पादनमें प्रतिक्षण लगा रहता है, अतः वे आध्यात्मिकताके निकट पहुँचनेमें प्रकृतितः ही असमर्थ एवं अयोग्य हैं; अतः ऋषियों ने उनके कार्यका निरीक्षण करते हुए इसके परिधान के अनन्तर उत्पन्न आवश्यक देवपितृ कार्योंमें उनका जुटना असंभव जानकर ही कृपया उनको इसके अधिकारसे वञ्चित कर दिया है। क्योंकि उन जातियोंमें जन्म-जात ये गुण नहीं पाये जाते हैं। आज यदि किसीके बहकावेमें आकर वे अनधिकार चेष्टा करते हैं तो स्वकर्तव्य त्यागके कारण अवश्य उपेक्षणीय और दयनीय हैं। क्योंकि प्राणिमात्र 'स्वकर्म निरतः सम्यक् सिद्धि-माप्नोति भारत' के अनुसार स्वकर्म पालन करनेसे ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि सबके लिए एकसी विधि नहीं हो सकती है, क्योंकि सबको एक लाठी से हाँकना मूर्खताका परिचायक समझा जाता है। सनातन धर्म मानवधर्म है अतः मनुष्योंकी प्रकृति स्वभाव देखकर ही इसमें धर्मों की व्यवस्था है, अतः जिन्हें प्रकृतितः यज्ञोपवीत धारण करना श्रेयस्कर है, उन्हीं द्विजातियोंके लिए यज्ञोपवीत धारण की आज्ञा दी गई हैं, अतः उन्हें समय पर इसे अवश्य धारण करना चाहिए और इसके धारण करते ही जो उत्तरदायित्व (भार) उनपर आ जाता है उसका भली प्रकार पालन करना चाहिये।

नवरात्र और विजयादशमी

[ले०—महामहोपाध्याय श्री पं० गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी]



कई-एक विवेचक विद्वानोंका कथन है कि यह संसार एक रणक्षेत्र है, प्रत्येक जीवको संसारमें दूसरे जीवोंसे संघर्ष करना पड़ता है, इसलिये इसे रणक्षेत्र (मैदाने जंग) कहना युक्ति-युक्त होता है। जीव ससारमें क्या आता है, मानो एक रणक्षेत्रमें उतरता है। इस रणक्षेत्रमें यद्यपि प्रत्येक जीव विजय चाहता है, हरएककी यह इच्छा रहती है कि मैं ही उन्नतिकी दौड़में सबसे आगे रहूँ, किसीसे एक अंगुल पीछे रहना कोई नहीं चाहता, सब ही उत्सुक हैं कि विजय-श्री हमें ही वरमाला पहनवे, किंतु इच्छा रखने मात्रसे विजयश्री किसीको नहीं मिलती। विजय मिलना शक्तिपर अवलम्बित है, जिसमें जितनी शक्ति होगी, उतनी ही सीमा तक वह संसार-क्षेत्रमें विजयी होगा। इस सिद्धान्तको सिद्ध करनेके लिये किसी युक्ति प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, यह ससारमें प्रतिक्षण प्रत्यक्ष देखा जाता है। विशाल वृक्ष छोटे २ पौदोंका आहार छीनकर अपना विस्तार फैलाते हैं, बड़े जल-जन्तु छोटोंको निगलकर अपना स्वरूप बढ़ाते हैं, सबल पशु निर्बलोंको अपने सामने खाने तक न देगा; शक्तिशाली उल्लू अपनेसे अल्पशक्ति कौओंके घोंसले तोड़-मरोड़कर फेंक देता है। कहाँ तक कहें, जहाँ शक्ति है वहां विजय है, यह दृश्य प्रत्यक्ष चारों ओर दिखाई दे रहा है। इसलिये हमारे शास्त्रोंने पहले नवरात्रमें शक्तिकी उपासना करनेके अनंतर दशमीको विजयका उत्सव मनानेकी शिक्षा दी है, शक्त्युपासना और विजयका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया है।

हमारे शास्त्र इस जगत्को दो प्रकारके भावसे देखते हैं। व्यष्टिरूपसे और समष्टि रूपसे। व्यष्टि अर्थात् अलग-अलग और समष्टि अर्थात् समूह समुदाय। प्रत्येक जीव या जड़ अपनी पृथक् पृथक् रहनेकी दिशामें एक २ व्यष्टि है, किन्तु जहां यह पृथक्त्व मिटकर एकरूपता भासित होतीहै वह समष्टि है। व्यष्टि जीव उपासक है, और समष्टि जगन्नियंता परमात्मा उपास्य। कहीं व्यष्टिसे समष्टि बनती है और कहीं समष्टिसे व्यष्टिकी रचना आरम्भ होती है। एक २ वृक्ष मिलकर एक वन बन गया। यह व्यष्टिसे समष्टिकी उत्पत्ति कही जाती है। किन्तु एक अग्निकी ज्वालासे विस्फुलिङ्ग (छोटे २ अग्नि के कण) भिन्न २ निकल पड़े, वा एक मेघसे जल बरस कर पृथक् २ जलके स्रोत बन गये वा एक अनन्त आकाशसे पृथक् २ मठाकाश, गृहाकाश, घटाकाश बन गए—यह सब समष्टिसे व्यष्टिका विकाश है। ईश्वरसे जगतकी उत्पत्ति इस दूसरे प्रकारमें आती है। इसलिए यहाँ यों समझना होगा कि जगन्नियंता जगदीश्वर एक शक्तिघन है। वह अनन्त शक्तियोंका भंडार है। उसी सर्वशक्तिमान्से अल्पमात्रामें व्यष्टि—जीवोंको शक्ति मिली है। अब भी जीव यदि अपनी शक्तिमात्राको बढाना चाहे अल्पशक्तिसे महाशक्ति बनना चाहे तो उसका एक मात्र उपाय परमात्माकी उपासना ही है।

स्वतः कोई जीव शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, किंतु शक्तिघनकी उपासनासे यह अनंतशक्ति बन सकता है, यही आर्योंका दृढ़ सिद्धांत है।

उपासना-शब्द का अर्थ है उप-समीपमें, आसना-स्थिति, अर्थात् अपने मनको किसी एक रूपमें स्थिर करना, या स्थिर करनेका अभ्यास करना। मनकी यह शक्ति है कि जिसमें मन लगाया जाय, उसके गुण, धर्मोंको अपनेमें लेता रहता है। स्थिर हो जाने पर तो फिर यह न केवल स्वयं तदाकार हो जाता है, किंतु अपने अनुयायी शरीर इन्द्रिय आदिको भी तदाकार बना देता है। इसके लिये शास्त्रोंमें एक 'कीट-भ्रमर न्याय' बताया जाता है। 'तिलचन्दा' नामके एक विशेष प्रकारके कीड़ोंको पकड़कर भौंरा अपने घर में ले जाता है, फिर उनके हाथ पैर, तोड़कर उस पर चारों ओर 'भां-भाँ' करता मँडराता रहता है। भय वश उस कीड़ेकी चित्तवृत्ति एकदम भ्रमर के आकारमें हो जाती है और कुछ समयमें वह भौंरा ही बन जाता है ऐसी प्रसिद्धि है। अस्तु-तात्पर्य यहहै कि जिसपर मन स्थिर हो, उसके गुण-धर्म लेना मनका स्वभाव है। अतएव अनन्त शक्तियों का आविर्भाव हो जाना असम्भव बात नहीं। इसी मनोविज्ञानके आधार पर भारतवर्षके प्राचीन ऋषि, अनन्त शक्तियाँ प्राप्त करते थे। योगदर्शनमें इन ही शक्तियोंका 'विभूति' रूपसे विस्तृत वर्णन मिलता है। स्मरण रहेकि 'ध्यानयोग' और 'उपासना' एक ही वस्तु है। आरम्भमें कुछ प्रकारभेद भलेही हों,'उद्देश्य' दोनोंका एक है। यह प्राचीन भारतकी विशिष्ट विद्या थी, अब तक दूसरे देशोंने उसका आभासमात्र ही प्राप्त किया है। दूसरे देशोंमें अभी तक योगविद्याका जो कुछ अंश गया है वह खेल—तमाशोंके उपयोगमें आता है,किन्तु भारतीय इसे दृढ़ विज्ञानका रूप देकर इससे सब प्रकारकी सफलता प्राप्त कर चुके थे।

शक्ति और शक्तिमान्-इन दोनोंमें भेद नहीं होता। बिना शक्तिमान्के निराधार शक्ति नहीं रह सकती, और बिना शक्तिके शक्तिमान्का कोई रूप नहीं समझा जा सकता। जो कुछ जिस किसी पदार्थके सम्बन्धमें हम जानते हैं, वह उसकी शक्ति ही को तो जानते हैं। अमुक पदार्थ काला है, पीला है, ठोस है, तीखा है, अमुक मनुष्य बुद्धिमान् है, वीर है, साहसी है। यह सब शक्तियोंका ही विकास है। सब शक्तियोंको एकओर निकालकर शुद्ध पदार्थका कोई रूप समझमें ही कभी नहीं आ सकता। ईश्वरको भी जबकभी हम समझनेका प्रयत्न करतेहैं, तो उसको भी शक्तियों द्वारा ही करते हैं। ईश्वर जगत्का बनाने वाला है, वह जगत्का पालनकर्त्ता है, भक्तोंका रक्षक है, दुष्टोंका संहारक है, इत्यादि रूपसे ईश्वरको समझा जाता है। जगत्की रचना, पालन, रक्षा, संहार, ये सब शक्तियोंके ही विकास हैं। इसलिये शक्तिको छोड़कर ईश्वरका रूप भी 'अविज्ञेय' (जाननेके अयोग्य) हो जाता है। वह किसी प्रकार मनमें नहीं आ सकता। बिना मनमें आये उपासना हो नहीं सकती। इसलिये ईश्वरोपासना शक्त्युपासनासे संवलित है, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। इसलिये जितने भी ईश्वरोपासक हैं, वे सर्वशक्तिमान् कहकर ही ईश्वरकी उपासना करते हैं। न केवल नाममें शक्तिका समन्वय रखते हैं, किन्तु रूपमें भी। नारायणके साथ लक्ष्मीका कृष्णके साथ राधा, रामके साथ सीता, शिवके साथ पार्वती और गणेशके साथ ऋद्धि-सिद्धि रखकर शक्ति और शक्तिमान्के नित्य सम्बंधकी स्पष्ट घोषणा करते हैं। अब यह उपासकोंकी रुचिका भेद है कि कोई शक्तिमान्को प्रधान रखकर शक्तिको उसके

आश्रित मानकर उपासना करते हैं और कोई शक्ति को ही प्रधान रूपसे अपना उपास्य बना लेते हैं। लोकमें भी कहावत प्रसिद्ध है कि अजी राजाको क्या मानना है, राजा तो हम जैसा ही हाथ—पैर, नाक—कान वाला है, राजाकी शक्तिका सम्मान है, इत्यादि। इसी प्रकार ईश्वरके सम्बन्धमें भी बहुतसे उपासक यही निश्चय करते हैं कि जिस शक्तिके कारण परमात्मा, परमात्मा है, वही शक्ति हमारी उपास्या है। वही शक्ति जगत् में व्यापक है, वही ईश्वर है।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किंस्तूयसे तदा॥

[अतीत वर्तमान, अनागत जो कुछ वस्तु संसारमें हैं, उसमें सबकी जो शक्ति है वही तू है, तू सबकी आत्मा है, तेरी स्तुति कौन कर सकता है।]

वस्तुतः ईश्वरका कोई नियत लिंग नहीं। न वह पुरुष है, न स्त्री! साथ ही वह पुरुष भी है, स्त्री भ है।

अतएव पिता कहकर उसकी उपासना करो, या माता कहकर। उपासककी रुचिका भेद है, ईश्वरमें कोई भेद नहीं, अतः उपासककी रुचि और अधिकार के अनुसार ही भिन्न भिन्न नाम रूप सनातनधर्ममें माने गये हैं। अस्तु। सब जगत्‌की अनंत कोटि ब्रह्मांडोंकी परिचालक शक्ति ईश्वर रूपसे हमारी उपास्या है, उसकी उपासना ही हम जीवधारियोंके लिये विजय देनेवाली है इसमें कोई संदेह नहीं।

यह शक्ति कालके रूपमें नित्य हमारे अनुभवमें आती है। ऋतु या मौसमके रूपसे यह कालरूप ईश्वरशक्ति जगत्‌में सतत परिवर्तन करती रहती है, इसका अनुभव प्रत्येक प्राणीको स्पष्ट रूपमें है। संवत्सर कालका प्रधानरूप है। स्थूलमानसे संवत्सरमें ३६० दिन रात होते हैं। इनको यदि ६, ९ के खण्डों में विभक्त किया जाय तो सम्पूर्ण वर्षमें ४० नवरात्र होते हैं। नौ-नौके खण्ड बनानेका अभिप्रायहै कि अखण्ड संख्याओंमें नौ सबसे बड़ी संख्या है और प्रकृति वा शक्तिका इस संख्यासे प्रधान सम्बन्ध है। प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम नाम तीन गुण हैं, और ये तीनों परस्पर मिले हुये 'त्रिवृ'त् होते हैं, अर्थात् जैसे तीन लड़ोंकी एक रस्सी बनाई जाय, इसी प्रकार तीन तीनसे एक-एक विपिष्ट गुण बना हुआ है। या समझिये कि जैसे यज्ञोपवीतमें तीन तार हैं, और फिर एक एक में तीन-तीन यों मिला कर नौ तार होते हैं, यही प्रकृतिका रूप है। प्रकृतिके तीन गुण और फिर तीनोंमें एक-एकमें तीनों सम्मिलित। अस्तु, उक्त चालीस नवरात्रोंमेंसे चार नवरात्र प्रधान हैं, उनका प्रत्येक तीन-तीनमासमें चैत्र अषाढ़ आश्विन पौषकी शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होता है *। पाठक देखेंगे कि इन चारों महीनोंसे भिन्न २ ऋतु या मौसम का आरम्भ होता है। इनमेंभी दो चैत्र और आश्विन के नवरात्र विशेष रूपसे प्रधान हैं। ये दोनों ग्रीष्म और शीत, दो प्रधान ऋतुओंके आरम्भकी सूचना देने वाले हैं। इस अवसरमें प्रधानशक्ति सम्पूर्ण जगत्‌का परिवर्तन करती है, इस समय उस महा-शक्तिका रूप प्रत्यक्ष होता है। इस लिये विज्ञानको भित्ति पर प्रतिष्ठित सनातनधर्ममें ये शक्त्युपासना के प्रधान अवसर माने गये हैं।

दूसरी बात यह भी है कि कृषिप्रधान भारतवर्ष में चैत्र और आश्विनमें ही महालक्ष्मीका स्वरूप प्रत्यक्ष

---

*इन चारों नवरात्रोंके सम्बन्धमें विशेषरूपसे जानना हो तो श्रीस्वाध्याय,के प्रथमवर्ष 'ग्रीष्माङ्क 'में श्रीदेवी नवरात्र और शक्तिसञ्चय शीर्षक हमारा लेख देखिये।
—सम्पादक

दिखाई देता है। वर्षाकी फसल आश्विनमें और शीतकी चैत्रमें पककर तैयार हो जाती है। मानों भारतको धनधान्य-समृद्धि अपने पूर्ण रूपमें प्रस्तुत हो जाती है। जिन दिनों भारतका सुख समृद्धिमय समय था, आज की भांति नित्य अकाल और मँहगी की विनाश लीला नहीं थी, उन दिनों आश्विन और चैत्रमें घरघर महालक्ष्मीके स्वागतके लिये उत्सुक दिखाई देता था। इस अवसरमें कृतज्ञ भारत जगच्छक्तिरूप महालक्ष्मीकी उपासना आवश्यक समझता है। अपना अहंकार भुलाकर जिस परमात्मा की परम शक्तिकी कृपासे यह सुख—समृद्धि प्राप्त हुई है, उसके चरणोंमें नत होना अपना कर्तव्य मानता है, इसीलिये दोनों नवरात्र उपासनाके प्रधान समय माने गये हैं।

आश्विनका महीना जैसे धान्य-समृद्धिके लिये प्रसिद्ध है, वैसे रोगोंके आक्रमणके लिये भी चिरकाल से प्रसिद्ध है। आयुर्वेद इसे 'यमष्दंष्ट्रा' कहता है। इस समय प्राकृतिक आपत्तिसे बचनेके लिये भी महाशक्तिकी उपासना ही एक परम अवलंब है।

जिन दिनों भारतके वीर क्षत्रिय संसार भर में विजयका डंका बजाते थे, उन दिनों इस आश्विन मासका और भी अधिक महत्त्व था। चातुर्मास्यमें विजय यात्रा स्थगित रहती थी, वे घरपर विश्राम करते थे। आश्विन मास आते ही 'वर्षा विगत शरद ऋतु आई' होंते ही शक्तिकी उपासना करके वे फिर विजय यात्राका आरम्भ कर देते थे, इस लिये आश्विन मासका-नवरात्र शक्तिकी उपासनाके लिये सबसे प्रधान है, और इनके पूर्ण होते ही विजय-यात्राका दिन 'विजया-दशमी' आताहै। ईश्वर भारत को फिर भूली हुई नवरात्रकी शक्ति—उपासना और विजयका स्मरण करावे।

—०*०—

विनीत-विनय

[कवि सम्राट् श्री पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

विराजो हृदय में मेरे श्याम सुन्दर। सुना दो परमपूत मुरली मधुर स्वर॥
मलिनता तिमिर से भरित है मलिनमन। करो दूर उनको बनो दिव्य दिनकर॥
नहीं सूझता है सुपथ लोचनों को। विमल ज्योति उनमें भरो प्रभु कृपाकर॥
नहीं कान सुनते कभी ज्ञान बातें। सुना दो उन्हें बांसुरी तान विभुवर॥
संभालो रहेगी न रसना रसज्ञा। बनेगी न जो नाम जप कर सरसतर॥
विमुख भक्ति से हो सहेगा बहुत दुःख। कराओ स्वगुणगान मुख से निरन्तर॥
करो नाथ! ऐसी सुपथ पर रहे पग। करें कर्म कमनीय मेरे उभयकर॥
सुनी जांय सब प्रार्थनायें हमारी। प्रभो मांगता हूं विनत हो यही वर।

दीपावलीका वैज्ञानिक रहस्य

[वेदवाचस्पति श्री पं० मोतीलाल जी शास्त्री सम्पादक 'मानवाश्रम']

[यदि आप दीपमालाके पांचों उत्सवदिवसों अर्थात धनत्रयोदशी रूप (नरक) चतुर्दशी, अमावस्या, अन्नकूट, भ्रात(यम) द्वितीयाके नामों एव उक्त तिथियोंसे सम्बद्ध कर्तव्योंके गूढ़ वैज्ञानिक रहस्योंको जानना चाहते हैं तो इस लेखको मनोयोग पूर्वक अवश्य पढ़ जाइये। इससे आपको स्पष्ट विदित हो जायेगा कि भारतीय पर्व त्यौहारोंकी प्रत्येक बात कितनी वैज्ञानिक है। दीपमाला-विज्ञान पर इतना महत्वपूर्ण-लेख स्यात ही अन्यत्र कहीं मिले। विद्वान लेखक वेद-विज्ञानके प्रकाण्ड पण्डित, मनस्वी विचारक और सुवक्ता हैं। वेदविज्ञानके अद्वितीय भारतीय विद्वान स्व० विद्यावाचस्पति श्री पं० मधुसूदनजी ओझाके आप प्रमुख शिष्य और उनकी वेदविज्ञान-निधिके एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। आपके कई ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। भविष्यमें आपके अमूल्य विचारोंसे 'श्रीस्वाध्याय'के विज्ञपाठक निरन्तर लाभ उठाते रहेंगे।

—सम्पादक]

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥

ऋग्वेद १०।७१।२

"जिस प्रकार भुने हुए जौके सत्तुको परिपवनसाधनभूत तितउ (शूप-छाजला) से कुशल गृहिणी तुस निकाल कर साफ सुथरा बना देती है, एवमेव जिस समाजमें विद्वान लोग अपने तितउ-रूप प्रज्ञानबल (बुद्धियुक्त मनोबल) से अपनी वाणीको दोषरहित (अतएव सबल) बना लेते हैं, वहाँ (उस समाज में) समाजके वे धीर विद्वान् लोग (दोष रहित वाणीके प्रभावसे पारस्परिक राग-द्वेषको छोड़ते हुए परस्पर) मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करनेमें समर्थ हो जाते हैं। पवित्र-निर्मल इस वाणीके प्रभावसे इस समाजके शिष्ट-विद्वान-पुरुषोंकी वाणीमें कल्याण-कारिणी लक्ष्मी प्रतिष्ठित हो जाती है।"

'लक्ष्मीका निवास कहाँ रहता है ?, पूर्व मन्त्रने इसी प्रश्नका तात्त्विक विश्लेषण किया है। * 'सवा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः' (बृ० उप० १।५।१) इत्यादि श्रुतिके अनुसार हमारा आत्मा मनः-प्राण-वाङ्मय है। मन ज्ञानशक्तिमय है, प्राण क्रियाशक्तिमय है, वाक्तत्त्व अर्थशक्तिमय है। मनसा-कर्म्मणा-वाचा जो व्यक्ति समान बने रहते हैं, जिनका संकल्प (मन), कर्म्म (प्राण) वाणी (वाक्), तीनों एकसूत्र में आबद्ध रहते हैं, जो जैसा सोचते हैं, वैसा ही करते एवं बोलते हैं, उनका आत्मा मनःप्राणवाक्के समत्वसे पूर्णरूपसे विकसित रहता हुआ शक्तिशाली बन जाता है। ऐसे ही पुरुष 'महात्मा' कहलाए हैं। ठीक इसके विपरीत जो

* वह यह आत्मा मनोमय है, प्राणमय है, वाङ्मय है।

सोचते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं, एवं कहते कुछ और ही हैं, उनका आत्मा मन-प्राण-वाक् की विषमतासे अपने स्वाभाविक विकाससे वञ्चित रह जाता है, इनका आत्मा सर्वथा कुण्ठित बना रहता है। ऐसे ही पुरुष 'दुरात्मा' कहलाए हैं। शास्त्रने भी महात्मा और दुरात्माकी यही परिभाषा की है। देखिए—

मनस्येकं वचस्येकं कर्म्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यत वचस्यन्यत् कर्म्मण्यन्यत्-दुरात्मनाम् !

वैज्ञानिक कहते हैं, इस विश्वमें सबसे पहिले वाङ्मय अव्यक्त स्वयम्भूका प्रादुर्भाव हुआ, अव्यक्त स्वयम्भूने विश्वसम्पत्तिकी कामना से प्राणव्यापार द्वारा अपने वाक्तत्वमें संघर्ष उत्पन्न किया। प्राणव्यापार-जनित इस संघर्षसे वह 'वागग्नि' उसी प्रकार द्रव-अवस्थामें परिणत हो गया; जैसे कि परिश्रमस्वरूप संघर्षसे शारीराग्नि स्वेद (पसीने) के रूपमें परिणत-हो जाता है। चान्द्रतत्त्वानुगत प्रेम-संघर्षसे शारीराग्नि प्रेमाश्रु-रूपमें, सौरतत्त्वानुगत क्रोधसंघर्षसे शारीराग्नि शोकाश्रु रूपमें परिणत हो जाता है। एवं पर्जन्यवायु-जनित संघर्षसे प्रवृद्ध ऊष्मा (उमस) जैसे वर्षारूप में परिणत हो जाती है। तात्पर्य, संघर्षमें पड़कर अग्नि ही पानीके रूपमें परिणत होता है। इसी आधार पर *'अग्नेरापः' यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ है। यह अग्नितत्त्व ही 'वाक्' तत्त्व है, वाक् ही अग्नि की उपनिषत (मौलिक स्वरूप) है, जैसा कि—*'तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' (शत० ब्रा० १०।५।१।१) इस श्रुतिसे प्रमाणित है। अग्निलक्षण वाक्तत्वसे वीची-तरंगन्यायसे उत्पन्न शब्दोंके अधिक प्रयोग से (अधिक बोलनेसे) हम निर्बलता का अनुभव करने लगते हैं। कारण यही है कि वागग्नि रूप शारीराग्नि ही हमारा बल है। वही †'मनः कायाग्निमाहात्य' इत्यादि शिक्षासिद्धांतानुसार शब्दरूपमें परिणत होता हुआ व्यय होजाता है। सांख्यदर्शनसम्मत सृष्टिविज्ञानके अनुसार सम्पूर्ण विश्वका मूल 'शब्दतन्मात्रा' मानी गई हैं। ‡'वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' (मनु० १ अ० २१ श्लो०) के अनुसार मनुने भी शब्दको ही विश्वका मूल माना है। 'वाचोमा विश्वा भुवनान्यर्पिता'–¶'अथो वागेवेदं सर्वम्' (ऐत० आ० ३।१।६)

*—"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः, अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी" (ब्रह्मानन्दवल्ली) १ अनु०—'उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे पानी, एवं पानीसे पृथिवीका निर्माण हुआ"।

*—"उस इस अग्निकी मूल प्रतिष्ठा यजुर्मयी अनादिनिधना अव्यक्ता वाक् ही है"।

†—"आत्मा बुद्धिसे युक्त होकर अर्थोंको लक्ष्य बनाता है। लक्षीभूत अर्थविवक्षासे मनमें प्रेरणा (संकल्प) का उदय होता है। मानससंकल्प से कायाग्नि क्षुब्ध हो पड़ता है। क्षुब्ध कायाग्नि का प्राणवायुकी नोदनासे ऊर्ध्वगमन होता है। ऊर्ध्व मुख यही कायाग्नि शब्दरूपमें परिणत होता है।" (पाणिनीय शिक्षा)।

‡—"सम्पूर्ण पदार्थोंके नाम, रूप, और कर्म्म, सब कुछ वेद शब्दात्मक शब्दतन्मात्राओंसे ही संस्था-विभागपूर्वक प्रजापतिने उत्पन्न किए हैं"।

¶—"वाक् से ही वेदोंका सन्धान हुआ है, इसी से छन्दोंका संगठन हुआ है, इसीसे मित्रों का ग्रन्थिबन्धन हुआ है। इसीसे भूतोंका समन्वय हुआ है। अतः कहना पड़ता है कि, यह सब कुछ दृश्य प्रपञ्च वाङ्मय ही है।"

के अनुसार श्रुति भी सम्पूर्ण विश्वको वाङ्मय ही बतला रही है। अव्यक्त स्वयंभूकी यह वाक् ही सबसे पहले प्राणसंघर्षमें पड़ कर 'पानी' के रूप में परिणत हुई है, जैसा कि-'सोऽपोऽसृजत-वाच एव लोकात् वागेव साऽसृज्यत' (वेदप्रतिष्ठा पर प्रतिष्ठित सप्तपुरुष-पुरुषात्मक उस अव्यक्त स्वयंभू ने सबसे पहले अपने वाक्लोकसे-वाक् से—पानी ही उत्पन्न किया। वह वाक् ही अविकृतपरिणामरूप से अब्-रूपमें परिणत हुई (शत ६।१।१।६) इत्यादि श्रुतिसे प्रमाणित है। तात्पर्य सृष्टि से पहिले मनः-प्राणगर्भित वाङ्मय अव्यक्त स्वयम्भूका ही साम्राज्य था। इससे सर्वप्रथम वाग्द्वारा पानी ही उत्पन्न हुआ, जैसा कि मनु ने कहा है—

*सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
(मनु० १ अ० ८ श्लो०)

वाक्तत्त्वसे उत्पन्न, अतएव वाङ्मय वही जल-समुद्र विज्ञानभाषामें सरस्वान् कहलाया। यही आपोमण्डल 'परमेष्ठीविष्णु' नामसे प्रसिद्ध हुआ, एवं परमेष्ठी-विष्णुको वाङ्मयी यही जलशक्ति विश्वप्रभवा बनती हुई 'लक्ष्मी' नाम से प्रसिद्ध हुई। वाङ्मय जलाधार पर प्रतिष्ठित विष्णु-पत्नी इसी लक्ष्मीसे सृष्टिका विकास हुआ। इस प्रकार वाङ्मय अप्तत्वसे ही सम्पूर्ण भूत, देवता, पशु मनुष्य, औषधि-वनस्पति, इत्यादि स्थावर—जङ्गम सर्गोंकी उत्पत्ति हुई, और इस प्रकार विद्वानों का-'*सर्वमापोमयं जगत्' यह सिद्धान्त सर्वात्मना चरितार्थ हुआ। लक्ष्मी-लक्षणा, सर्वजगन्मूला, वाग्देवीकी इसी सर्वव्यापिका स्पष्टीकरण करते हुए वेदभगवान कहते हैं—

†वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे, वाचं गन्धर्वाः, पशवो मनुष्याः वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥ (तै० ब्रा० २।८।८।५)।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती तीनों शक्तियाँ एक ही शक्तिकी विभिन्न तीन अवस्था हैं। महाकाली सृष्टिकी पूर्वावस्था है, महालक्ष्मी सृष्ट्यवस्था है, महासरस्वती दोनोंकी संधि में प्रतिष्ठित है। अव्यक्त स्वयंभू पुरुष महाकाल है, इसकी शक्ति महाकाली। अव्यक्ताव्यक्त परमेष्ठी विष्णुकी शक्ति महालक्ष्मी है, एवं व्यक्त सूर्यकी महाशक्ति महासरस्वती है। सरस्वती और लक्ष्मी, दोनोंकी प्रतिष्ठा महाकाली (अव्यक्त शक्ति) है। अव्यक्ता स्वयंभूवी वाक् (अनादिनिधनावाक्) ही वह महाशक्ति है, जो स्वयंभू-

---

*"उस प्रजापतिने नानाविध प्रजोत्पत्ति कामनाको लक्ष्य बनाकर अपने वाङ्मय शरीरसे सर्व प्रथम पानी ही उत्पन्न किया, एवं उन पानियों में (अपगर्भ में) हिरण्मयात्मक अग्निबीज प्रतिष्ठित किया।"

*—"अप्सु त मुञ्च भद्रं ते लोकाह्यप्सु प्रतिष्ठिताः आपोमयाःसर्वरसाः सर्वमापोमयं जगत् ॥ (महाभारत) हे पुरुष! तू इस शवको पानीमें बहा। क्योंकि सम्पूर्ण लोक पानीमें प्रतिष्ठित हैं, सम्पूर्ण रस आपोमय हैं, किंबहुना-सम्पूर्ण जगत ही आपोमय है।"

†—"सम्पूर्ण देवता वाक्को आधार बनाकर ही जीवित हैं। गन्धर्व, पशु, मनुष्य आदि-आदि सम्पूर्ण चर-अचर प्रपञ्च वाक् में ही समर्पित हैं। ऐसी सर्वाधिष्ठात्री इन्द्रपत्नी वह वाग्देवी हमारी प्रार्थना सुने।"

'स्वयंभू-परमेष्ठी-सूर्य' इन तीन लोकोंके भेदसे तीन अवस्थाओंमें परिणत होकर क्रमशः काली-लक्ष्मी-सरस्वती, कहलाई है। वर्तमान भौतिक विज्ञान जहाँ सूर्य पर सृष्टिका अवसान मान लेता है, वहाँ भारतीय वैदिक-विज्ञान अव्यक्त स्वयंभू पर सृष्टिका अवसान मानता है। जिस प्रकार चन्द्रमा पृथिवीके चारों ओर परिक्रमा लगा रहा है, सचन्द्रा पृथिवी जैसे सूर्यके चारों ओर परिक्रमा लगा रही है,एवमेव चन्द्र-पृथिवीको स्वमहिमामण्डल में भुक्त रखता हुआ सूर्य परमेष्ठीके चारों ओर परिक्रमा लगा रहा है। तथा चन्द्रमा-पृथिवी-सूर्य, तीनोंको अपने महिमामण्डलमें भुक्त रखता हुआ परमेष्ठी स्वयम्भूके चारों ओर परिक्रमा लगा रहा है। स्वयम्भू सर्वथा स्थिर है। सूर्यसे ऊपर परमेष्ठी-पिण्ड है, परमेष्ठीसे ऊपर स्वयम्भू-पिण्ड। दोनों सर्वसाधारणके लिए अज्ञात बन रहे हैं, अतएव इनके सम्बन्धमें यह स्पष्टीकरण हुआ है।

बतलाया गया है कि अव्यक्त स्वयम्भूकी महाकालीलक्षणा वाक्से आपोमय परमेष्ठीका आविर्भाव हुआ। इस अप्तत्वमें स्नेह, तेज, नामक दो गुणों का विकास हुआ। स्नेहगुणानुगत पारमेष्ठ्य-तत्व 'भृगु' कहलाया, एवं तेजोगुणानुगत पारमेष्ठ्य तत्व 'अंगिरा' कहलाया। इस प्रकार एक ही पारमेष्ठ्य अप्तत्व गुणभेदसे 'भार्गव आपः, आंगिरस आपः' दो अवस्थाओंमें परिणत होगया *।

स्नेहगुणात्मक भार्गव अप्तत्वका विकास तो स्वयं परमेष्ठी-मण्डलमें हुआ, एवं तेजोगुणानुगत आंगिरस तत्वका विकास सूर्यमें हुआ। परमेष्ठीका एक ही अप्तत्व इस प्रकार भृगुधारा, अंगिरा-धारा भेदसे दो उन विभिन्न धाराओं में विभक्त हो गया, जिनका मूल एक ही अप्तत्व था। भृगुधारा अर्थसृष्टिकी अधिष्ठात्री बनी, अङ्गिरा-धारा शब्दसृष्टिकी अधिष्ठात्री बनी, शब्दप्रवर्त्तिका अङ्गिरा धारा 'सरस्वती' कहलाई, अर्थ प्रवर्त्तिका भृगुधारा, 'लक्ष्मी' कहलाई, जोकि सौम्या (आप्या) लक्ष्मी 'आम्भृणीवाक्' नाम से भी प्रसिद्ध हुई है, एवं जिसका ऋग्वेदके 'आम्भृणीसूक्त' में विशद वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। शब्दात्मिका अङ्गिरा प्रधाना (अतएव -आग्नेयी) वाक् तथा अर्थात्मिका भृगु-प्रधाना (अतएव सौम्या) वाक् दोनोंका मूल चूँकि एक है, अतएव जिस क्रमसे शब्दसृष्टिका विकास हुआ, उसी क्रमसे अर्थसृष्टिका विकास हुआ। शब्द और अर्थके इसी औत्पत्तिक सम्बन्धके आधार पर वैज्ञानिकोंने शब्द, और अर्थका तादात्म्य सम्बन्ध माना है। शब्दात्मिका सरस्वती, अर्थात्मिका लक्ष्मी, दोनोंकी मूल-प्रतिष्ठा है,अव्यक्त शब्द-अव्यक्त अर्थात्मिका, अतएव उभयात्मिका, अतएव च सर्वात्मिका 'काली' है। महाकालीके इन्हीं दोनों शब्द-अर्थात्मक विवर्तों का निम्नलिखित रहस्य-मन्त्रों द्वारा विश्लेषण हुआ है—

अर्थात्मिकालक्ष्मी

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥१॥

---

* आपो भृग्वङ्गिरोरूपमापोभृग्वङ्गिरोमयम् ।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः ॥
अप् तत्व भृगु और अङ्गिरारूप है, तन्मय है। इस भृग्वङ्गिरोमय आपोमण्डलके गर्भमें त्रयीवेद प्रतिष्ठित है। गोपथब्रा० पू० १।३९।

शब्दात्मिकासरस्वती

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय-
वार्त्ताच सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥२॥
सप्तशती ४ अ० ८, ६, मन्त्र।

सर्वात्मिका काली, अर्थात्मिका लक्ष्मी, शब्दात्मिका सरस्वती, इन तीन महाशक्तियोंमेंसे प्रस्तुत लेखमें लक्ष्मीका ही स्वरूप-परिचय लक्ष्मी-भक्तों के सम्मुख हमें उपस्थित करना है। प्राकृतिक विश्व की इस स्थितिको लक्ष्य बना कर ही हमें लक्ष्मी स्वरूपका विवेचन करना है कि उस ओर अव्यक्त स्वयम्भू है, इस ओर व्यक्त सूर्य्य है, दोनोंके मध्य में व्यक्ताव्यक्त परमेष्ठी-विष्णु हैं। उस ओर काली है, यही मध्यस्था लक्ष्मीकी अन्तः प्रतिष्ठा है। इस ओर सरस्वती है, यही मध्यस्था लक्ष्मीकी बाह्य प्रतिष्ठा है। अव्यक्ता कालीको मूल बना कर, व्यक्ता सरस्वतीके द्वारा मध्यस्था लक्ष्मी स्वविकासमें समर्थ हुई हैं। जिसका सहज भाषामें यही तात्पर्य्य निकलता है कि जिस पुरुषका आत्मा अन्तर शक्ति (अव्यक्त शक्ति) से परिपूर्ण रहता हुआ, बाह्यशक्ति (सौरशक्ति) से युक्त रहता है वही मध्यस्था लक्ष्मीका निधान बनता है। सौरशक्ति विज्ञानात्मा (बुद्धि) से युक्त है, विज्ञानात्मा प्रज्ञानात्मा (मन) से सम्परिस्वक्त है। विज्ञानात्मासे स्थिर-लक्षण धैर्य्य धर्म्मका विकास होता है, तद्युक्त प्रज्ञानात्मासे प्रगणाका उदय होता है। विज्ञानयुक्त (धीरता युक्त) प्रज्ञानात्मक मानस बल ही लक्ष्मीकी बाह्य प्रतिष्ठा है, जिसका 'यत्र धीरा, मनसा वाचमक्रत' इस वाक्यसे समर्थन हुआ है। बुद्धियुक्त मनोबल ही वाङ्मयी लक्ष्मीका विकाशभूमि है। विचारशून्य, अतएव अधीर, अतएव च स्खलितमना एक मूर्ख की वाणी निस्तत्व होती है, प्रभावशून्या रहती है। अतएव न तो ऐसे मूर्खोंकी वाणीमें ही कुछ आकर्षण होता, न इनका परस्पर संघटन ही हो पाता। अपि तु अविद्याजनित रागद्वेषादि क्लेशोंसे इनका आत्मा दुरात्मा बना रहता है। 'सुमति' शून्य दुरात्माओंका संघ पारस्परिक कलहके अनुग्रहसे भद्रा लक्ष्मीके अनुग्रहसे वञ्चित रहता हुआ 'निऋति' नामक अलक्ष्मी देवताका निधान बना रह जाता है। 'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना, जहाँ कुमति तहँ बिपति विडाना' कहते हुए महात्मा तुलसीने भी इसी श्रौत-सिद्धांतका लोकभाषामें स्पष्टीकरण किया है।

'सक्तु मिव तितउना पुनन्तः' इत्यादि उक्त वेदमन्त्र का तात्पर्य्य यही निकलता है कि, जिस राष्ट्रके व्यक्ति विचारशील होते हैं, विज्ञान युक्त प्रज्ञानबलसे संयुक्त रहते हैं, मनः-प्राण-वाक्के समत्वसे जिनका आत्मा विकसित रहता है जिनमें परस्पर सख्यभाव रहता है, उन्हींकी वाणीमें ओज- पराक्रम आकर्षण आदि गुणोंका विकास रहता है। एवं गुणक पुरुषों की वाणी ही वाङ्मयी लक्ष्मीकी आवासभूमि बनती है। ठीक इसके विपरीत जिस राष्ट्रके पुरुष अव्यक्तमूलक तात्त्विक ज्ञानसे वंचित रहते हैं, अतएव जिनका विज्ञानात्मा (बुद्धि) धीरतासे वंचित रहता है, अतएव जिनका प्रज्ञानात्मा (मन) अस्थिरप्रज्ञ बना रहता है। अतएव जिन की वाणी निर्बल बनी रहती है, जिनके मानससंकल्प कर्म्म, वाणी, परस्पर विरुद्ध पथका अनुगमन करती हुई आत्मसमत्वका उच्छेद कर देती है, अतएव जो रागद्वेषादि की आवासभूमि बनते हुए पारस्परिक मैत्रीसे वंचित

रहते हुए कलहप्रिय बने रहते हैं, वे लक्ष्मीके अनुग्रह से वंचित रह जाते हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्त्तमान युगका भारतीय राष्ट्रिय समाज है। एकतन्त्रात्मक संघटन जहाँ लक्ष्मीकी आवासभूमि है, वहां विभिन्न तन्त्रात्मक विघटन अलक्ष्मीकी निवासभूमि है, यही प्रारम्भके मन्त्रका निष्कर्ष है।

लक्ष्मीके निगम (वेद) शास्त्रोक्त स्वरूपका दिग्दर्शन कराया गया। अब दो शब्दोंमें आगमशास्त्रोक्त लक्ष्मीके स्वरूपका भी परिचय प्राप्त कर लीजिए। महाकाली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बल्गामुखी (बगलामुखी) मातङ्गी, कमला, इन दस महाविद्याओंके द्वारा आगम शास्त्रमें सृष्टिविद्याका तात्विक विश्लेषण हुआ है। इनमें दशवीं महाविद्या 'कमला' ही लक्ष्मी है। यही आरोहिणी नामक रोहिणी है। ७ वीं महाविद्या 'धूमावती' ही अलक्ष्मी है, यही अवरोहिणी नामक ज्येष्ठा है। नक्षत्रोंमें रोहिणी नक्षत्र कमलातत्वकी प्रतिकृति है। इस रोहिणी नक्षत्रसे ठीक षड्भान्तर (१८० अंश) पर स्थित वृश्चिक राशिमें भुक्त ज्येष्ठा नक्षत्र ही अलक्ष्मीकी प्रतिकृति है। अतएव शकटाकार रोहिणी नक्षत्रका दर्शन जहाँ मङ्गलप्रद माना गया है, वहाँ ज्येष्ठानक्षत्रदर्शन अमाङ्गलिक माना गया है। कमलाशक्तिके पुरुष 'सदाशिवविष्णु' माने गए हैं, एवं धूमावतीशक्ति 'विधवा' पुरुषवंचिता मानी गई है। आगमोक्त रात्रितत्वानुसार कमला 'महारात्रि' है, धूमावती दारुणरात्रि' है। कमला सृष्टिस्वरूपकी संरक्षिका है, धूमावती सृष्टिस्वरूपविनाशिनी है, सुखसम्पत्ति उर्वर भूप्रदेश, प्रचुर ओषधि वनस्पति, आदि कमलाके अनुग्रह हैं। दुःख विपत्ति, ऊसर भूप्रदेश, क्षत-विक्षत भूप्रदेश, निर्धनता, महामारी, दुष्काल, आदि धूमावतीकी कृपाके फल हैं।

समस्त वसुन्धरा सर्वविध भाग्यसामग्रीसे परिपूर्ण है। भोक्ता प्राणियोंमें भोग्य सामग्रीके भोगकी पर्याप्त शक्ति भी है। परन्तु देखते हैं – कितने ही प्राणी इस प्राकृतिक भोग्य सम्पत्तिसे वंचित रहते हुए दीन-हीन-दरिद्री बनकर इतस्ततः भटकते फिरते हैं। क्यों ? इस प्रश्नका समाधान इसी धूमावतीसे हो रहा है। 'संसारमें दुःखके मूल प्रवर्तक रुद्र, यम, वरुण निर्ऋति; ये चार देवता (शक्त्यात्मक प्राण) हैं माने गये हैं। विविध प्रकार के ज्वर महामारी, उन्माद, आदि आग्नेय सन्तापात्मक रोग रुद्रके क्रोध पर अवलम्बित हैं। मूर्छा, अंगभंग कम्पन (मिर्गी), आदि रोग यम देवता की कुदृष्टि के फल हैं। ग्रन्थिबन्धन (गठिया), वातशूल (बायगोला), गृध्रसी, अर्द्धाङ्ग (लकवा), आदि रोगों का वरुण देवता से सम्बन्ध है। इन सर्वविध रोगोंसे कहीं भयंकर-शोक, कलह, दरिद्रता, आदि रोगों की संचालिका निर्ऋति देवता हैं। जीर्णशीर्ण कन्थाधारी भिक्षुक (भिखारी), क्षतविक्षत भूप्रदेश, भग्नप्रासाद, बुभुक्षा, पिपासा, रोदन, वैधव्य, पुत्रसन्ताप, आदिका मूलकारण एकमात्र निर्ऋति देवता ही मानी गई है। रुद्र-यम-वरुण देवताओंसे सम्बद्ध पूर्व रोग इस निर्ऋतिके कोपसे ही पुष्पित पल्लवित होते हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण दरिद्र, अतएव सर्वरोगभंगी आजका भारतवर्ष बना हुआ है। निर्ऋति देवता अन्य दुःखप्रवर्त्तकोंसे सर्वतोऽधिक घोर है, भयानक है, अतएव इसका 'घोरा पाप्मा वै निर्ऋतिः' (शत० ७।२।१।११) यह लक्षण किया गया है। इसके आक्रमणको शान्त करनेके लिए जो वैज्ञानिक प्रक्रिया विहित हुई है, वही

'निऋ ति इष्टि' कहलाई है, जिसकी इतिकर्त्तव्यता नैऋ तकोण में पूरी की जाती है। भयानक-रूक्ष-शरीराकृति, रूक्षभोजन, रूक्षकेश, मलिन-जीर्णवस्त्र, इसके प्रत्यक्ष दर्शन हैं। इन्द्रियातीता इस धूमावती महाशक्तिके भौतिक कार्य्योंके आधार पर ही वैज्ञानिकोंने निदानविद्याके द्वारा इसकी रूप कल्पना की है। वही रूप-कल्पना उसका 'ध्यान' कहलाया है। वह धूमावती सौन्दर्यसे रहित है, चंचल है, दुष्ट है, लम्बी है, मलिन वस्त्र पहिने हुए है, केश-पाश बिखरे हुए हैं, विधवा है, दांत बड़े चौड़े और धीदे हैं, उसके रथ पर (विनाश सूचक) काक की ध्वजा है, वाहनशून्य भग्न ऐसे रथ पर वह बैठी हुई है, स्तन युग्म अतिशय रूप से लम्बित हैं, हाथ में (दरिद्रता सूचक) छाज, दृष्टि बड़ी रूखी है, हाथ को नाश मुद्रासे घुमा रही है, भूख-प्यास से व्याकुल है, भय-कलहकी अधिष्ठात्री है। यही अलक्ष्मी-लक्षणा धूमावतीका आगमोक्त स्वरूप दिग्दर्शन है। निम्नलिखित आगमवचन धूमावतीके इसी नैदानिक रूपका विश्लेषण कर रहे हैं—

विवर्णा चंचला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बरा ॥
विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरलद्विजा ॥१॥
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ॥
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्षा धूतहस्ता वरानना ॥२॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिलं कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा ॥३॥
—शाक्तप्रमोद, धूमावतीतन्त्र।

बतलाया गया है कि, स्वयम्भू, और सूर्य्यके मध्यमें स्थित आपोमय पारमेष्ठ्य विष्णुकी शक्ति ही महालक्ष्मी है। त्रैलोक्य व्यापक यह अप्तत्व ही-'आपो वै पुष्करपर्णम्' (शत ६।४।२।२) के अनुसार पद्म है। इसी आधार पर आपोमय त्रैलोक्य 'पुष्करपर्ण' कहलाया है। यही सदाशिव विष्णु, एवं तदभिन्ना महाशक्ति कमला (लक्ष्मी) की प्रतिष्ठा (आसन) है, अतएव यह 'पद्मासना' कहलाई है। यह कमलातत्त्व धूमावतीका प्रतिद्वन्द्वी भाव है। वह ज्येष्ठा थी, यह कनिष्ठा है। वह अवरोहिणी थी, यह आरोहिणीलक्षणा रोहिणी है। वह असुरप्राणप्रधाना थी, यह देवप्राणप्रधाना है। निम्नलिखित आगमवचन इसी महालक्ष्मीके नैदानिक (काल्पनिक) ध्यानका स्पष्टीकरण कर रहे हैं—

कान्त्या काञ्चन-सन्निभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैर्-
हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।
बिभ्राणां वरमब्जयुग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां-
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बबलितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ॥
—शाक्तप्रमोद, कमलातन्त्र

"सौर हिरण्यमण्डलके सम्बन्धसे जिसके शरीरकी कान्ति सुवर्ण जैसी है। दिक्पाल सम्बन्ध से जो चार गजोंसे युक्त है, जो दिग्पाल अपने शुण्डादण्डसे त्रैलोक्य व्यापक दिक्सोमरूप अमृत रस से जिसका अभिषेक कर रहे हैं, वर, कमलद्वय, अभयमुद्रा, जिसके नैदानिक आयुध हैं, श्वेतवर्णात्मक सूर्य्यबिम्बलक्षणज्योतिःपुञ्ज जिसका उज्ज्वल किरीट है, जो रेशमी परिधानसे युक्त है, कमलासन पर विराजमान उस कमला भगवती को हम प्रणाम कर रहे हैं।"

आपोमय पारमेष्ठ्य मण्डलके आसुर और दैव भेदसे दो विवर्त्त माने गये हैं। विशुद्ध आपोमय मण्डल आसुरमण्डल है। तमःप्रधान आप्यप्राण ही आसुर है. जिसके अधिष्ठाता हैं वरुणदेवता। सौर मण्डलयुक्त तेजोमय आप्यमण्डल दैवमण्डल है। ज्योतिप्रधान सौरप्राण ही देव है, जिसके अधिष्ठाता

हैं इन्द्रदेवता। सौरप्राणसे युक्त पारमेष्ठ्य ज्योतिर्म्मय अप्तत्त्व ही 'लक्ष्मी' है। अतएव इसकी शरीर-कान्ति काञ्चनसन्निभा बतलाई गई है। 'हिरण्मयेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्' (यजुः-सं० ३३-४३) के अनुसार सौर मण्डल हिरण्यमय (सुनहरी) है। तत्सम्बन्धसे ही ज्योतिर्म्मयी लक्ष्मी भी हिरण्यवर्णा मानी गई है। इस हिरण्मयी लक्ष्मी के 'लक्ष्मी', और 'श्री' ये दो रूप माने गये हैं। अव्यक्त आभ्यन्तर प्राणतत्त्व 'श्री' है, एवं व्यक्त बाह्य भूततत्त्व 'लक्ष्मी' है। लक्ष्मी 'श्री' के आधार पर प्रतिष्ठित है, भूत प्राणके आधार पर प्रतिष्ठित है। 'तस्माद् प्राणाः श्रियः' (शत० १।१।१।४।) के अनुसार अव्यक्त-प्राणात्मिका श्री (आत्मगत ऐश्वर्य नामक भग-सम्पत्ति) ही व्यक्त-भूतात्मिका लक्ष्मीकी प्रतिष्ठा है। श्रीविहीन लक्ष्मी थोड़े ही समयमें उत्क्रान्त हो जाती है। क्या आज भारतवर्षमें लक्ष्मीका, और लक्ष्मीपुत्रोंका अभाव है? नहीं।-फिर यह दारिद्र्य दुःख क्यों? इसलिए कि आज लक्ष्मी श्रीं से वंचित है। अव्यक्त आत्मबलात्मिका श्री की उपेक्षा कर आज व्यक्त भूतबलके आधार पर असदुपायोंसे लक्ष्मीका संचय किया जा रहा है। अतएव श्रीविहीना ऐसी लक्ष्मी कालान्तरमें अलक्ष्मीके रूपमें परिणत होती हुई दारिद्र्य दुःख का कारण बन जाती है। 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' (यजुः सं० ३१।२२) के अनुसार श्री और लक्ष्मी, ये दोनों विष्णुपत्नियां हैं। भूता-सक्तिके आकर्षणसे हम लक्ष्मी के तो उपासक बन जाते हैं, परन्तु प्राणात्मिका श्रीकी उपेक्षा कर देते हैं। यही कारण है कि, लक्ष्मी (भूतसम्पत्ति-रुपय्या-पैसा) के प्रचुर-मात्रामें रहनेपर भी हम अहर्निश सन्तप्त बने रहते हैं, सदा अपने आपको निर्धन मानते रहते हैं। एक करोड़पति भी यही कहता सुना गया है कि,– 'क्या करें रोजगार नहीं है।' 'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत' के अनुसार जब–तक हम व्यक्त लक्ष्मीको अव्यक्तपर प्रतिष्ठित नहीं कर देते, तबतक श्रीविहीना ऐसी लक्ष्मी कभी आत्मतुष्टिका कारण नहीं बन सकती। श्री– युक्ता लक्ष्मी ही हमारी भोग्या बन सकती है। क्योंकि ऐसी लक्ष्मी आत्मबलसे सुरक्षित रहती है। श्रीविहिना लक्ष्मी सबलोंके द्वारा छीन ली जाती है। हमारे सञ्चयका लाभ दूसरे उठा लेते हैं। यही तो आज हो रहा है। आत्मबलसे वञ्चिता, अतएव श्रीविहीना आजकी लक्ष्मी हमारे अपने उपयोगमें कहाँ तक आरही है?, इस प्रश्नका समा.ान वर्त–मानयुगके श्रीविहीन लक्ष्मीपुत्र ही भलीभाँति कर सकेंगे।

देवताओंका सोना और जागना––

लक्ष्मी-अलक्ष्मीका तात्त्विक स्वरूप क्या है? लक्ष्मी कहाँ प्रतिष्ठित रहती है?, इत्यादि प्रश्नोंके समाधानकी चेष्टा की गयी। अब एक दूसरे तत्त्वकी ओर लक्ष्मीपुत्रोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है। प्रसिद्ध है कि आषाढशुक्ला एकादशीको देवता सो जाते हैं, एवं कार्तिकशुक्ला एकादशीको देवत उठते हैं, इस प्रकार वर्ष में आठ मास देवता जागते रहते हैं, एवं ४ मास सोते रहते हैं। बतलाया गया है कि, पारमेष्ठ्य आप्यप्राण वरुणप्रधान बनते हुए असुर हैं, एवं सौर आप्यप्राण इन्द्रप्रधान बनते हुए देव देवता हैं। दोनों परस्पर प्रतिद्वन्द्वी हैं, विरोधी हैं। आ० शु० एकादशी से आरम्भ कर का० शुक्ल एकादशी पर्य्यन्त भूपिण्ड पारमेष्ठ्य आप्यमण्डलके अधिकार में रहता है, जिसका तात्पर्य्य यही है कि ४ मासपर्य्यन्त पार्थिव–सौर इन्द्रप्रधान देव देवताओं

पर पारमेष्ठ्य वरुणप्रधान आप्यप्राणात्मक असुरोंका शासन रहता है। जिस प्रकार रात्रिभुक्त वरुणप्राणके आक्रमणसे आध्यात्मिक अहःकालीन इन्द्रप्राणात्मक देवता (इन्द्रियवर्ग) सो जाते हैं, एवमेव प्रकृतिके प्राणदेवता भी इन चार महीनोंमें आप्य-असुराक्रमणसे अभिभूत रहते हैं, और यही इनका शयन है। प्राणाग्नि वास्तवमें चातुर्मास्य में सुप्त रहता है, अतएव—'वर्षासु दोषा कुप्यन्ति तेऽम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे' (अष्टांगहृदय)के अनुसार वर्षामें अग्निमान्द्यसे धातुत्रयी कुपित रहती है। क्योंकि इन चार महीनोंमें आसुरप्राणका साम्राज्य रहता है, अतएव दिव्यप्राणोपासक भारतीय प्रजावर्ग इन चार महीनों में विवाह, यज्ञोपवीत, यात्रा, आदि किसी भी दिव्यकर्म्मका अनुष्ठान नहीं करता।

वरुण, निर्ऋति, यमदेवतात्रयी,इन्द्र, कमला कुबेरदेवतात्रयी, और दीपावली महोत्सव—

सहयोगी वरुणके अनुग्रहसे इस चातुर्मास्यमें निर्ऋति देवताका भी प्रभुत्व अक्षुण्ण बना रहता है। कार्त्तिककृष्णा चतुर्दशी तिथि निर्ऋतिकी अन्तिम तिथि मानी गई है। एकमात्र इसी आधारपर धर्म्माचार्य्योंने इसे 'नरकचतुर्दशी' नामसे व्यवहृत किया है। इसी मध्यरात्रिमें निर्ऋति-लक्षणा अलक्ष्मीका तो गमन होता है, एवं रोहिणीरूपा लक्ष्मीका आगमन होता है। त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या, प्रतिपत्, द्वितीया (१३, १४, ३०,१,२,) यह तिथिपञ्चक लक्ष्मी,और अलक्ष्मी प्रवर्त्तक प्राणदेवताओंका संघर्ष काल माना गया है। वरुण, निर्ऋति, यम, ये तीन प्राणदेवता सजातीय हैं, एवं तीनों अलक्ष्मीभाव के प्रवर्त्तक हैं। इन्द्र कमला कुबेर ये तीन प्राण देवता सजातीय हैं एवं तीनों लक्ष्मीभावके प्रवर्तक हैं। जिस प्रकार ग्रहणदशा ग्रहणकालसे पहिले लग जाती है, जो दशा 'सूतक' नामसे व्यवहृत हुई है, तथैव अमावस्या तिथिसे सम्बन्ध रखने वाली कमलाके आगमनकी दशा त्रयोदशी तिथिसे आरम्भ हो जाती है। चतुर्दशीकी मध्यरात्रि पर्य्यन्त स्वसत्तासे प्रतिष्ठित रहने वाली निर्ऋति (अलक्ष्मी-धूमावती) की भोगकालात्मिका त्रयोदशी तिथिमें ही कमलाकी प्रतिच्छाया का समावेश हो जाता है। अतएव इस त्रयोदशीको 'धनत्रयोदशी' कहा गया है। मकान का कड़ा-करकट निर्ऋति प्रधान है। क्योंकि धनत्रयोदशीको कमलादशाका प्रवेश हो जाता है, अतएव त्रयोदशीकी रात्रिसे पहिले-पहिले कूड़ा साफ कर दिया जाता है। घरके बाहिर डाले गए कूड़े पर कुलदेवियाँ दीप प्रज्ज्वलित कर देती हैं। अस्वच्छता रोगका मूल है। रोग यमराजका मित्र है। आज साफ किया हुआ, बाहिर फैंका हुआ कूड़ा निर्ऋति, और यम, दोनोंका आधार बना हुआ है। अतएव यह दीप, 'यमदीप' कहलाया है। दीपप्रभा घरसे निकलते हुए निर्ऋति, और यमका सत्कारसचक भी है, साथ ही लक्ष्मीदशा प्रवेश का भी सूचक है। लक्ष्मीदशाके आगमनके अभिनयके लिए त्रयोदशी को नूतनवस्त्र, नूतनपात्र (बर्तन) आदि नवीन वस्तु क्रय मङ्गलाचार माना गया है।

इन्द्र पूजन और दीपावली—

धनत्रयोदशीके आगेकी चतुर्दशी निर्ऋति, और वरुण, दोनों प्राणदेवताओंका समन्वयकाल है। आप्य-असुर-प्राणात्मक-वरुण, और निर्ऋतिके सम्बन्धसे ही यह तिथि 'नरकचतुर्दशी' कहलाई है। असुरप्राण तमः- प्रधान है,-अतएव तत-सत्कारके

लिए इस तिथिमें कृष्णवस्त्र-परिधानका आदेश हुआ है। जिस प्रकार वरुणसे प्रतिमूर्च्छित अग्नि घृत है, एवमेव वरुणसे प्रतिमूर्च्छित इन्द्र तैल है। घृत ऐन्द्र है, तैल वारुण है। वरुण सत्कारके लिये इस दिन तैलाभ्यञ्जन आवश्यक माना गया है। तैलाभ्यञ्जनसे वरुणका तो सत्कार होता ही है, साथ-साथ तैलाभ्यञ्जन पूर्वक स्नानसे प्राप्त होनेवाली रूप-ज्योतिलक्षणा निर्म्मलतासे इन्द्र, और कमलाका भी सत्कार हो जाता है। इसी रूपभावके कारण यह आसुरी-वारुणी चतुर्दशी दिव्या ऐन्द्री चतुर्दशी भी बन जाती है। अतएव इसे 'रूपचतुर्दशी' (रूपचौदस) भी कहा जाता है। अमावसके अनन्तर आनेवाली प्रतिपतसे निऋ्ति सहयोगी वरुणका साम्राज्य हट जाता है, एवं कमला सहयोगी इन्द्र का साम्राज्य आरम्भ हो जाता है, इन्द्र प्रधानतासे शारीराग्नि प्रबल होने लग जाता है। वरुणनिर्गमनसे दुग्ध-दधि आदिमेंसे वर्षाऋतु-जनित विकार निकल जाते हैं। इसीके उपलक्षमें अमोत्तर प्रतिपत्को विविध व्यञ्जनयुक्त 'अन्नकूट-महोत्सव' मनाया जाता है। साथ ही इसी तिथिमें इन्द्र पूजन महोत्सव भी मनाया जाता है (था), जो 'आर्षधर्मविलुप्ति' एवं सम्प्रदायवादप्राधान्यसे आज स्मृतिगर्भमें विलीन हो गया है। कहते हैं भगवान् श्री कृष्णने इन्द्रका दर्पदलन करनेके लिये इन्द्रपूजनके स्थानमें गोवर्द्धन पूजन प्रचलित किया था। सम्भव है ऐसा हुआ हो। परन्तु हमतो भगवान् नहीं हैं। हमें क्या अधिकार है कि हम भी इन्द्रपूजनकी उपेक्षा कर बैठें। हमारे लिए तो दोनों आराध्य हैं। एक ओर यदि हम गोवर्द्धनपूजन आवश्यक समझते हैं, तो दूसरी ओर तत्वानुगत इन्द्रपूजनका भी हमें अनिवार्य्य रूपसे अनुगमन करते रहना चाहिए। यही इन्द्रपूजन महोत्सव 'मार्गपाली नामसे भी व्यवहृत हुआ है। प्रतिपत्के अनन्तर आनेवाली द्वितीया यमदेवताप्रधाना है। अतएव यह 'यमद्वितीया' कहलाई है। ऋग्वेदके सुप्रसिद्ध 'यमयमीसूक्त' में इसी यमतत्त्वका वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है। यम भ्राता है, यमी भगिनी है। दोनोंके प्राकृतिक सौहार्दको लक्ष्य बनाकर ही इसदिन भ्रातृवर्ग भगिनीवर्गके यहाँ भोजन करता है। अतएव यह तिथि 'भ्रातृद्वितीया' (भय्यादूज) कहलाई है। इस प्रकार त्रयोदशी, चतुर्दशी, प्रतिपद्, द्वितीया, इन चार तिथियों में दीपदान, नूतनवस्तुक्रय, तैलाभ्यञ्जन, कृष्णवस्त्र-परिधान, अन्नकूट, पशुपूजन, इन्द्रपूजन आदिसे वरुण निऋति यमका सत्कार तथा कमलागमन प्रयुक्त उल्लास प्रकट किया जाता है। शेष रह जाती है—अमावस्या तिथि, उसके सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर इस निबन्ध को समाप्त करेंगे।

अमावस्या और दीपावली--

अमावस्या मुख्यरूपसे कमला, तथा धनाधिप कुबेरका भोगकाल है। अतएव इस तिथिमें कमलापूजन, और कुबेरपूजन विहित है। कुबेरपूजन आज विलुप्त हो चुका है। केवल कमलापूजन प्रचलित है*। किस समय कमलापूजन करना ? इस सम्बन्ध

*इस समयके धनिक वैश्यवर्गके यहाँ तो कमलापूजन भी नहीं होता, अपितु मुख्यरूपेण रुपयों और आभूषणोंका पूजन होता है। वास्तवमें देखा जाये तो रुपया स्वर्ण आभूषणादि तो स्वयं कमला व लक्ष्मी नहीं; ये वस्तुएं तो लक्ष्मीका प्रसाद मात्र हैं। प्रसादकी पूजा करके आधुनिक भारतीय धनिकवर्ग अत्यन्त बहिर्मुख वा "प्रसादिया भक्त" बना हुआ है, इस तथ्यकी ओर अभी तक किसीने ध्यान

में अनेक पक्ष हैं। जिनमें तात्त्विक पक्ष यही है कि प्रदोष समयमें ही कमलापूजन होना चाहिए। कारण यही है कि, श्री और लक्ष्मी विष्णुरूप सूर्यकी पत्नियाँ हैं। प्रदोषकालमें दिन और रातका समन्वय रहता है। रात्रि पारमेष्ठ्य अप्तत्व है, और दिन इन्द्रतत्त्व है। पूर्वमें यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सौरतत्त्वानुगत हिरण्मय पारमेष्ठ्य तत्त्व ही हिरण्यवर्णा लक्ष्मी है। प्रदोषकालमें लक्ष्मी का यह सौररूप विद्यमान रहता है। रात्रिमें लक्ष्मीके इस हिरण्यरूपका अभाव है। अतएव सूर्य्य-सत्तात्मक प्रदोषकालमें ही लक्ष्मीपूजन तत्वसम्मत है।

दीपावली और अग्नि क्रीड़ा—

अमावस्या तिथिमें होने वाले लक्ष्मी-पूजनके उपलक्ष्यमें दीपावली, तथा अग्निक्रीड़ा, इन दो कर्म्मों का मुख्य रूपसे समावेश हुआ है। तैल-घीके दीप प्रज्ज्वलित करना, तथा विविधप्रकारकी आतिशबाजी का उपयोग करना, लोकप्रचलित कर्म्म हैं। क्या इनमें कुछ तथ्य है? इस प्रश्नके समाधानसे पहिले दो शब्दोंमें 'ज्योति'का तात्विक स्वरूप-ज्ञान लेना आवश्यक होगा। राजर्षि जनकके यह प्रश्न करने पर कि—याज्ञवल्क्य! पुरुष किन ज्योतियोंके आधार पर जीवित रहता है?' भगवान याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया है कि, 'राजन! पांच ज्योतियोंसे पुरुषकी जीवनसत्ता प्रतिष्ठित रहती है। ज्ञानज्योति, भूतज्योति, भेदसे तत्वता ज्योति दो ही भागोंमें विभक्त है। ज्ञानप्रकाश, भूतप्रकाश दो ही तो मुख्य प्रकाश हैं। जब तक हमारा ज्ञानप्रकाश सुरक्षित रहता है, तभी तक भूतप्रकाशकी स्वरूपरक्षा रहती है। अतएव ज्ञानज्योतिको 'ज्योतिषां ज्योति' कहा गया है। यही सुप्रसिद्ध 'आत्मज्योति' है, जो भूतज्योतियों की मूल प्रतिष्ठा मानी गई है। सूर्य्य, नक्षत्र, विद्युत, चन्द्रमा, अग्नि भेदसे आधिभौतिक भूतज्योति पाँच भागोंमें विभक्त है—जैसा कि—'न तत्र सूर्य्यो भाति-न, चन्द्र-तारकं, नेमा विद्युतो भान्ति, कुतोऽयमग्निः' (मण्डूकोपनिषद्-२।२।१०) इत्यादि उपनिषश्रुतिसे प्रमाणित है। नक्षत्र ज्योतिका चान्द्र-ज्योतिमें अन्तर्भाव है, एवं विद्युज्ज्योतिका सूर्य्य ज्योतिमें अन्तर्भाव है। फलतः पांच भूत ज्योतियोंके स्थानमें 'सूर्य्य चन्द्र अग्नि' ये तीन ज्योतियाँ ही मुख्य रह जाती हैं। आत्मज्योतिर्लक्षण ज्ञानज्योति अध्यात्मिक ज्योति है, एवं शब्दात्मिका वाग्ज्योति अध्यात्मसंस्थामें भुक्त आधिभौतिक ज्योति है। सब मिलकर आत्मज्योति, सूर्य्यज्योति 'चन्द्रज्योति' अग्निज्योति, वाग्ज्योति, ये पंचज्योतियाँ हो जाती हैं। जीवन सत्ता क्योंकि इन्हीं पाँचों पर प्रतिष्ठित है, अतएव श्रुतिने 'किं ज्योतिरयं पुरुष ?, इस प्रश्न का समाधान किया है–'पंचज्योतिरयं पुरुषः'

(शथपथ ब्रा० ७।१।१।)

एक व्यक्ति सौर प्रकाशात्मक दिनमें निर्भय होकर जंगलोंमें भ्रमण कर लेता है। सूर्यास्त हो जाने पर वह रात्रिमें भी चन्द्रज्योत्सना (चांदनी) में घूमनेमें समर्थ हो जाता है। यदि चन्द्रमाका भी अभाव रहता है, तो उसे दीपादि कृत्रिम ज्योति (अग्निज्योति) की अपेक्षा रहती है। यदि दीपक का अभाव रहता है तो उसे किसी बातचीत करने वाले सहयोगीकी अपेक्षा रहती है। 'अग्निर्वाग्-भूत्वा मुखं प्राविशत'के अनुसार हमारी शब्दात्मिका वाक् अग्निमयी है। शारीराग्नि ही मनकी प्रेरणासे

नहीं दिया। प्रसादका पजन उसके अपने स्थान में गौण रूपसे हो सकताहै मुख्यरूपसे देवताके स्थानमें नहीं। —सम्पादक

प्राणवायु द्वारा उरःस्थल छाती कण्ठ मूर्द्धा (मस्तक), इन तीन स्थानोंसे टकराकर क्रमशः अनुदात्त, स्वरित, उदात्त स्वरोंमें परिणत होता हुआ क-च-ट-त पादि लक्षण शब्दात्मिक वाक्का रूपधारण कर लेता है। आप अँधेरी रात में निर्जन प्रदेशमें घूम रहे हैं। सूर्य-चन्द्र-अग्नि (दीपादि), तीनों ज्योतियोंके अभावसे आत्मामें भयका संचार हो पड़ता है। मार्गमें चलते चलते सहसा आपके कानोंमें किसी सजातीय वाक्का (मनुष्यके शब्दका) प्रवेश हो जाता है। इस वाग्ज्योति के समाविष्ट होते ही आपका भय मिट जाता है। यही चौथी वाग्ज्योतिका निदर्शन है। जिस समय ऐसी परिस्थितिमें वाग्ज्योति भी आपको प्राप्त नहीं होती, उस समय आप अपने बल पर ही धैर्य्य धारण करते रहते हैं। "मेरा कौन क्या बिगाड़ सकता है, यदि आपत्ति आवेगी, तो अमुक उपायसे उसे दूर कर दूंगा, इधर बच जाऊंगा, उधर बच जाऊंगा" ऐसे अपने आपके आत्मानुगत आश्वासनोंके बल पर आप धीर बने रहते हैं। संस्कारात्मिका यही पांचवीं आत्मज्योति (ज्ञानज्योति) है। दुर्भाग्यसे यदि किसीका आत्मा निर्बल रहता है, तो उक्त समयमें आत्मा सूर्य्य चन्द्रमा अग्नि वाक् और स्व (आत्मा) इन पांचों ज्योतियोंसे शून्य रहता हुआ शरीर छोड़ देता है।

उपर्युक्त ज्योति-स्वरूप परिचयसे प्रकृतमें बतलाना हमें यही है कि, जीवनसत्ताका मूलतत्त्व 'ज्योति' ही है। चन्द्रमाका प्रकाश भी सूर्य्यका ही प्रकाश है। प्रतिफलित सौरज्योति ही चन्द्रज्योतिरूपमें परिणत हुई है, जैसा कि-इत्थं चन्द्रमसो गृहे' ऋक् सं० १।८४।१५)–'दिनकरदिशि चञ्चच्चन्द्रिकाभिश्चकास्ते' (सिद्धान्त-तत्वविवेक) इत्यादि वचनोंसे प्रमाणित है। पार्थिवी अग्निज्योति भी उपग्रह सम्बन्धसे सूर्य्य-ज्योतिमें ही अन्तर्भूत है। 'वाक्पतङ्गाय धीयते' (ऋक् सं० १०।१८९।३) के अनुसार वाग्ज्योतिका अधिष्ठाता भी सूर्य्य ही है। एवं 'सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (यजुः सं० १३।४६) के अनुसार आत्मज्योतिका मूलप्रभव भी सूर्य्य ही है। इस प्रकार हमारे रोदसी ब्रह्माण्डका, तथा रोदसी ब्रह्माण्डमें प्रतिष्ठित चर-अचर प्रजावर्गका प्रभव-प्रतिष्ठा-परायण स्वज्योतिर्घन सूर्य्य ही बन रहा है, जैसा कि–'नूनं जनाः सूर्य्येण प्रसूताः' 'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः' (प्रश्नोपनिषत् १।८) इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट है। प्रकाशतत्त्व भूत, और प्राण भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। भूतप्रकाश स्थूल है, आधेय है। प्राणप्रकाश सूक्ष्म है, आधार है। दृश्य पिण्डभूत है, दृश्य पिण्डके असंख्य परमाणुओं (त्तरों) को नियत समय तक एक सूत्रमें आबद्ध कर वस्तुपिण्ड (भूतपिण्ड) को स्वस्वरूपमें सुरक्षित रखने वाला सुसूक्ष्म, अतएव इन्द्रियातीत, अधामच्छद (जगह न रोकने वाला) तत्त्व ही प्राण है। प्राण ही भूतपिण्डकी शक्ति (दम) है। प्राणके उत्क्रान्त हो जानेपर भूतपरमाणुओंका बंधन टूट जाता है, । भूतस्वरूप विनष्ट हो जाता है। यही प्राणतत्त्व निगमपरिभाषामें 'देवता' कहलाया है, एवं आगमपरिभाषामें 'शक्ति' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। जिन भूतज्योतियोंका पूर्वमें दिग्दर्शन कराया गया है, उनकी आधार भूमि यही प्राण-ज्योति है। प्राणज्योतिके मलीमस हो जानेपर रहती हुई भी भूतज्योति आत्मस्वरूपरक्षा करनेमें असमर्थ हो जाती है।

ज्योतिर्मय प्राणतत्त्व देवदेवता हैं, तमोमय प्राणतत्त्व असुरदेवता हैं। अन्धकार, और पानी, दोनों असुरप्राणकी आवासभूमि है। अन्धकारमें रहनेवाला असुर प्राण "वृत्र" कहलाया है, एवं पानी में रहनेवाला असुरप्राण 'वरुण' कहलाया है। वरुण, और वृत्र, दोनों असुरप्राणसंघके अधिनायक माने गए हैं। उधर सूर्यमें रहनेवाला ज्योतिर्मय प्राण 'इन्द्र' कहलाया है। प्रकाश और सावित्राग्नि, दोनों इसकी आवास भूमि है। ३३ अवान्तर भागोंमें विभक्त यज्ञिय देवदेवताओंके अधिष्ठाता ये ही इन्द्रदेवता हैं। इन्द्र और वृत्रमें, दूसरे शब्दोंमें देवता और असुरोंमें सदा प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती है। पूर्वाधिपति इन्द्र, और पश्चिमाधिपति वृत्र-वरुणका संघर्ष प्राकृतिक है। इस संघर्षका आधार बनता है सम्वत्सरमण्डल। सम्वत्सरके १२ महीनों में से चार मास असुरोंका बल प्रवृद्ध रहता है, यही देवसुषुप्ति काल है, जैसाकि पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है। वर्षाकालिक चार महीनोंमेंसे आश्विनके कुछ दिन (८ दिन), और पूरा कार्तिक मास विशेषतः कार्तिक कृष्णपक्ष आसुर प्राणके निम्राभ (उतार) के कारण अतिशय रूप से भयावह माना गया है जैसाकि "आश्विनस्य दिनान्यष्टौ, समस्तः कार्त्तिको मासो यमदंष्ट्रेति गीयते' इत्यादि वचनसे स्पष्ट है।

समस्त कार्तिक मास, उसमें भी कृष्णपक्ष उसमें भी अमवस्या तिथि, उसमें भी रात्रि सर्वतोऽधिक भयावह मानी गई है। भयानकताका कारण है आत्मस्वरूपरक्षिका ज्योतिका आत्यन्तिक रूपसे इस रात्रिमें अभिभूत हो जाना। आश्विन मासमें सूर्य कन्याराशिमें भुक्त रहता है—तत्सम्बन्ध से ही आश्विनका पितृपक्ष 'कन्यागत महालयश्राद्धपक्ष' कहलाया है। ज्योतिर्विज्ञानके अनुसार कन्याराशि में भुक्त सूर्य अपने स्वाभाविक ज्ञानप्रद ज्योतिर्विकास से वञ्चित रहनेके कारण नीचका सूर्य, कहलाया है। सौर ज्योतिको अभिभूत करने वाला दूसरा कारण वारुण चातुर्मास्य है। तीसरा कारण अमावस्याकी रात्रि है। इन सब कारणोंके समन्वयसे कार्तिककी अमा-रात्रि सूर्यज्योतिके प्राकृतिक अनुग्रह से वंचित रह जाती है। चन्द्रज्योतिका अभाव स्पष्ट ही है। वर्षाभोगसे पार्थिव अग्निज्योति भी हीनवीर्या बन रही है। इन तीनों प्राकृतिक ज्योतियों के अभिभूत रहनेसे आत्मज्योति तथा 'वाग्ज्योति' इन दोनों आध्यात्मिक ज्योतियोंका निर्वीर्य रहना भी स्वाभाविक बन जाता है। साथ ही ज्योतिके अभावमें तेजोमय आसुरप्राणका प्राधान्य भी स्वाभाविक बन जाता है। इस प्रकार कार्तिक अमावस्यामें प्रकृतिसे मिलनेवाली ज्योतियों का एकान्ततः अवरोध होजाता है। इसे दूर करने के लिए इस तिथि में वैध (कृत्रिम) ज्योतिः संचय करना भारतीय वैज्ञानिकोंने आवश्यक माना है। कृत्रिम साधनोंसे अग्निज्योतिः-संस्कारका आत्मा में आधान करनेके लिए ही दीपावली, और अग्निक्रीड़ाका विधान हुआ है। वातावरणमें प्रविष्ट आसुरप्राणके निरोधके लिए विहित आकाशदीप भुक्त वारुणान्न-जनित दोष निवृत्तिके लिए विहित कार्तिकमासोपवास, सान्तपनाग्निप्रज्वलन द्वारा दुरितक्षयके लिए विहित ब्राह्मणभोजन, अग्निक्रीड़ा, आदिसे युक्त भारतीय दीपावली महोत्सवका यही संक्षिप्त वैज्ञानिक रहस्य है जिसे भुलाकर हमने वरुणानुगत असुरसम्प्रदायको अपना अतिथि बना लिया है। इन अतिथियोंको सादर विदा करनेके लिए आजके इस मंगल मुहूर्त्तमें भारत राष्ट्र

को—"अत्रा सखायः सख्यानि जानते' को लक्ष्य बना कर पारस्परिक रागद्वेषका परित्याग कर भद्रा लक्ष्मीकी अनन्य निष्ठासे प्रदोष समयमें शास्त्र विधि पूर्वक उपासना करना चाहिए।

दीपावली और द्यूत क्रीड़ा

द्यूतक्रीड़ा (जूआखेलना) वस्तुतः सर्वथा निन्द्यहै। *अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व (फांसों से जूआ मत खेलो, यदि तुम्हें जूए का व्यसन ही है तो खेती ही करो। 'एक लगाना और दस पाना' इसी प्रलोभनसे तो तुम जूआ खेलते हो, तुम उस कितव—जुआरी से जुआ खेलो, जो कभी जीतना जानता ही नहीं। तुम उस के साथ जुआ खेलते हुए एक एक के स्थानमें सैंकड़ों गुणा प्राप्त कर लोगे। एक जौ खेतमें बोओगे, कितव (प्रजापति)हार मान कर बदलेमें सैंकड़ों दाने देगा। भला इससे बढ़ कर लाभप्रद अन्य द्यूतकर्म्म क्या होगा? इत्यादि वेदमन्त्रने द्यूतकर्म्मको सर्वथा निषिद्ध माना है। इस प्रकार शास्त्र-द्वारा सर्वथा निषिद्ध द्यूतक्रीड़ा दीपावली महोत्सवका अंग कैसे, और क्यों बनगई? इस स्वाभविक प्रश्नका जन्म हो जाता है, जिसका उत्तर 'शकुनविज्ञान' पर अवलम्बित है। भारतीय व्यवहारकाण्डमें शुभ-अशुभ शकुनों का बड़ा महत्त्व माना गया है। बिल्लीका रास्ता काट जाना, यात्रा करते समय छींक हो जाना, रिक्त घटका सम्मुख मिल जाना,आदि शकुनों पर आस्तिक प्रजाका दृढ़ विश्वास है। शकुनविज्ञान अन्य सब तात्त्विक विज्ञानोंसे इसलिए महत्वपूर्ण है कि, इस का कार्य्य कारणभाव मानवी दृष्टिके लिए सर्वथा अज्ञात ही बना रहता है। तत्त्व यही है कि यद्गुणक वस्तु पर हमारी दृष्टि पड़ती है, मनमें तद्गुणक भावका ही उदय हो जाता है। एवं तद्गुणक मन की वृत्तियां उसीके अनुरूप बन जाती हैं। स्वयं वेदने भी—'सर्वतो नः शकुने भद्रमावद'*इत्यादि रूप से शकुनका महत्व स्वीकार किया है। 'कौन शकुन क्यों किस फलका जनक बन जाता है' शकुन—सम्बन्धी इस कार्य्यकारणविज्ञानको जाननेमें असमर्थ रहते हुए भी हमें वेदप्रामाण्यके आधार पर उसका समाधान करना चाहिए। सांसारिक व्यवहार मार्गकी मूलप्रतिष्ठा लक्ष्मीतत्त्व माना गया है। दीपावली—तिथि इसी लक्ष्मीकी आवासभूमि है। अतएव इस रात्रिमें अपनी पत्नीके साथ थोड़े समयके लिए द्यूतक्रीड़ाका विधान हुआ है, जिससे जय पराजय शकुनके आधार पर पूरे वर्षके हानि-लाभका अनुमान लगाया जाता है। इसीलिए दीपावलीकीरात्रि के अन्तमें (प्रतिपत्को प्रातः) शकुन-रूपसे द्यूतक्रीड़ा प्रचलित हुई है, जिसका तत्त्व न समझनेके कारण हमारा धनिक समाज द्यूतकर्म से अनुचित लाभ उठाना भी दीपावली उत्सवका मुख्य अङ्ग माननेकी भूल कर रहा है। केवल शकुन परीक्षाके लिए विहित द्यूतकर्म्म निन्द्य नहीं है, अपितु छल-कपट-मिथ्या-भाषण-अनुचित लाभ-

---

* अक्षैर्मा दीव्यः कृषि मित् कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः। तत्र गावः कितव! तत्र जयो तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः॥ ऋक्सं० १०। ३४। १३किंते द्यूतेन राजेन्द्र! बहुदोषेण मानद!॥ देवने बहवो दोषास्तस्मात्तात परिवर्जयेत् (महाभारत४। ६।)

*उद्गातेव शकुने साम गायसि, ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या, सर्वतो नः शकुने भद्रमावद, विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद॥ ऋ०स० २।४३।२।

आदि कुलक्षणोंसे सुसज्जित वर्तमान युगका हमारा व्यवहारकाण्ड ही वास्तविक निन्द्य द्यूतकर्म्म है।

भारतकी वर्त्तमान दीपावली—

भारतवासी कहते हैं, भारतवर्षकी लक्ष्मी आज विदेशोंमें चली गई। हम भी थोड़ी देरके लिए ऐसा ही मान लेते हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि भारतमें लक्ष्मीको ऐसा क्या कष्ट हुआ, जिससे उसने श्वसुर-गृह (सुसराल)को छोड़कर पितृगृह (पीहर) लौट जाना आवश्यक समझ लिया? भारत पूर्वदेश है, अतएव यह ऐन्द्रदेश है, क्योंकि इन्द्र ही पूर्व दिशा के दिक्पाल माने गए हैं। विदेश पश्चिम देश है, अतएव वह वारुणदेश है, क्योंकि वरुण ही पश्चिम दिशाके दिक्पाल माने गए हैं। वरुण पानीके देवता हैं, समुद्रके अधिष्ठाता हैं। महामुनि दुर्वासाने एक बार इन्द्रको जयमाला प्रदान की। इन्द्रने माला ऐरावत हाथी पर डाल दी। ऐरावतने उसे कुचल कर भूमि पर डाल दिया। दुर्वासाने क्रुद्ध होकर शाप दे डाला कि 'जिस लक्ष्मीके मदमें आकर तूने मेरी दी हुई माला की यह दुर्दशा कराई है वह लक्ष्मी तेरे लोक (पूर्वदिशा-पूर्वदेश-भारत)को छोड़कर समुद्र में चली जायगी। ऐसा ही हुआ। लक्ष्मीके अभावमें त्रैलोक्य दुःखी हो गया। लक्ष्मीको वापस लानेके लिए समुद्र मथा गया, और यों रूठी हुई महालक्ष्मी ने समुद्रमें से निकलकर पुनः इन्द्र पर अनुग्रह किया। आज भी तो यही हो पड़ा है। ऐन्द्र भारत-देशके भारतीय ऐन्द्र पुरुषोंने पुष्पोपलक्षित ओषधि वनस्पतिलक्षण कृषि-धनकी उपेक्षा कर, साथ ही विदेशी चाकचिक्यमें पड़ कर लक्ष्मीको अप्रसन्न कर दिया है। फिर भला वह यहां रहती, तो कैसे, और क्यों रहती? चली गई अपनी जन्मभूमि समुमें, वारुण-पश्चिमी देशोंमें। वह आ सकती है, बशर्ते हमारी धमनियों, शिराओं, स्नायुतन्तुओंमें इन्द्रका बल पुनः प्रवाहित हो, और उस ऐन्द्र बलसे हम समुद्रशक्तिका मन्थन कर सकते हों?।

हां, तो पश्चिम-देश वारुण है, अतएव उसे लक्ष्मी का पितृगृह कहा जा सकता है और ऐन्द्र-भारतवर्ष? वह है लक्ष्मीका श्वसुरगृह। कैसे? पतिगृह ही तो श्वसुरगृह माना गया है। लक्ष्मीके पति हैं–विष्णु'। विष्णुतत्व यज्ञरूप माना गया है, जैसा कि–'यज्ञो वै विष्णुः' (शत० १।१।२।१३) इस श्रुतिसे प्रमाणित है। यज्ञकी मूलप्रतिष्ठा माना गया है–त्रयीवेद'– 'सैषा त्रयीविद्या यज्ञः' (शत० १।१।४।३)। त्रयीवेद-मूलक यज्ञ ही विष्णु है, और कृष्णमृग (काला हरिण) इसकी प्रतिकृति (नकल-प्रतिमा) माना गया है (देखिए तै० ब्रा० २।७३।३।)। जिस देशमें कृष्ण-मृग स्वच्छन्द विचरण करता है, वही देश वेदात्मक यज्ञविष्णुका अपना घर है, और उसी देशसे वेद-मूलकवर्णाश्रमाचारसिद्ध प्राकृतिक धर्म्म (सनातन-धर्म्म) पुष्पित पल्लवित हुआ है, जैसा कि–'यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्म्मान्निबोधत' (याज्ञ० स्मृति १।२।) इत्यादि वचनसे प्रमाणित है। वह देश यही भारतवर्ष है, जहां कृष्णमृग स्वच्छन्द विचरण करता है। करता क्या है, करता था, जब तक कि यज्ञात्मक विष्णु यज्ञ-तप-दानलक्षण धर्म्माचरणोंसे स्वरूपसे सुरक्षित थे। हमने यज्ञधर्म्मका परित्याग कर लक्ष्मीपतिको जब अप्रसन्न कर दिया, तो कौन साध्वी स्त्री पतिके अपमान पर वहां ठहर सकती है। यज्ञविष्णुने देखा, इन्होंने (भारतीयोंने) मेरा तिर-स्कार कर दिया, अब मुझे यहां नहीं रहना चाहिए। परिणाम स्वरूप लक्ष्मीको साथ लेकर विष्णु भी अपने श्वसुरगृहमें जाकर आरामसे सो गए और यों

धर्म्मविमुख हम भारतवासी धर्म्मानुगत परलोकसुख, लक्ष्म्यनुगत ऐहलौकिक सुख, दोनों सुखोंसे वञ्चित बन गए।

जहाँ लक्ष्मी चली गईं वहां दीपावली जगमगा उठी। यहाँ दीपावली की दीपज्वाला तो बुझ गई थी, परन्तु तैल थोड़ा शेष रह गया था। वहां वालों ने देखा, अपनी दीपावली कहीं तैलके अभावमें बुझ न जाय। तैलकी खोज हुई, वह मिल गया भारतवर्ष में और लक्ष्मी की दीपावलीके साथ साथ यों हमारा तेल भी निकाल लिया गया। यही है तैलशून्या-दीपप्रभ शून्या वर्त्तमान भारतकी निस्तत्व दीपावली, जो प्रतिवर्ष हमारी सुप्तवेदनामें ठेस लगाकर हमारा उपहास किया करती है। जो अग्निक्रीड़ा कर सकते हैं, आगसे खेल सकते हैं, दीपावली मनानेका अधिकार उनको है, जिनके दीपकों (शरीरों)में तैलमात्रा (इन्द्रगर्भित वारुणबल) परिपूर्ण है। दीपज्योतिसे वे लाभ उठा सकते हैं, जिनके चर्म्मचक्षुओंमें देखने की शक्ति है। वह दीपावली हमारा क्या हित साधन करेगी, जिसकी प्रभा (बिजलीकी रोशनी) आंखें खोलनेके बजाय उन्हें हीनवीर्य्य बना रही है। दरिद्र प्रजाकी निकली हुई चर्बीसे जलाई गई यह धनिकों की दीपावली क्या भारतवर्षकी दीपावली है? । श्री-लक्ष्मीसम्पन्न देश ही दीपावली मना सकते हैं, मानते हैं दिवालिया भारततो दीवाली (दिवाला) मना सकता है, दीपावली नहीं। इसीलिये तो सबके मुखसे 'दीवाली-दीवाली' यही शब्दध्वनि निकल रही है। वर्त्तमान भारतकी यह दीवाली कब दीपावली बनेगी ?, इस प्रश्न का उत्तर हम किससे माँगें, जबकी उत्तरदाता विद्वत-समाज ही स्वयं दीप प्रभासे वञ्चित है। सम्प्रदायाभिनिविष्ट आज का विद्वत्-समाज कैसे इस वर्तमान—विज्ञान युग का समाधान कर सकता है। क्या क्षत्रिय समाज उत्तर देगा ?' नहीं, वहाँ तो आपको पहुंचनेका भी अधिकार नहीं है। क्या धन प्रेमी वैश्य समाजका शिष्यत्व स्वीकार करना पड़ेगा ? अब्रह्मण्यम् ! अब्रह्मण्यम् ! सरस्वती, काली सम्पत्तियों से वञ्चित, अतएव सर्वथा निर्म्मूल अस्थिर बनी हुई लक्ष्मीके भक्त वर्तमान युगके वैश्य समाजसे तो इस सम्बन्धमें प्रश्न करना भी धृष्टता मानी जायगी। फिर कौन हमें दीपावलीके तत्त्वज्ञानसे अवगत करेगा ?

वैदिक-युगकी नारी ऋषियें

[ले०— श्री० अहमदअलीखां कुहज़ाद]



[यह लेख एक फारसी लेखका स्वतन्त्र अनुवाद है, जिसे काबुलके प्रसिद्ध पुरातत्त्वके विद्वान् श्री अहमदअलीखां कुहजादने काबुलके प्रसिद्ध मासिक पत्र "आर्याना" में प्रकाशित कराया था। 'आर्याना' सिन्धु पार के प्रदेशोंकी वेद-कालीन संज्ञा है, और इसमें ईरान या फारस आदि प्रान्त भी गिने जाते हैं, उसी प्रदेश समूहकी संस्कृतिका इतिवृत्त देकर उसे पुनर्जीवित करनेके उद्देश्यसे यह फारसी भाषाका मासिक पत्र काबुलसे प्रकाशित होता है। और इसीलिए उसका नाम भी 'आर्याना' रखा गया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि वैदिक-युग तथा मध्यकी आर्याना-संस्कृति और भारतीय-संस्कृति एक ही थी, अर्थात् वैदिक। इस लेखकी सामग्री चाहे हमारे कुछ पाठकोंको अधिक रुचिकर एवं आकर्षक न जान पड़े, किन्तु इस लेखका महत्त्व और कई बातोंमें है। जैसे उनको ज्ञात होगा कि उनके पड़ौसी मुसलमान—देशोंमें कैसी वायु बह रही है, उनमें और हमारे देशके मुसलमानों में कितना अन्तर है, भारतवर्षकी वर्तमान सीमाओंसे बाहर भी 'बृहत्तर' या—'महा' भारत सम्बन्धी आन्दोलन किस स्थितिमें है, और सबसे बढ़कर हमारे देशवासी मिस्टर जिन्ना आदि जिस पाकिस्तानका स्वप्न इस देशमें देख रहे हैं, उसके सम्बन्धमें उन्हींके धर्म-बन्धु उनके पड़ौसी देशोंमें कैसे विचार हृदयमें रखते होंगे। मूल लेखमें ऋग्वेद के सूक्तका अनुवाद ग्रीफ़िथके अनुसार दिया गया है, और वही यहां उद्धृत किया है। अनुवादक]

आर्यावर्तके प्राचीन इतिहाससे वैदिक युगका विस्तार २००० ई० पू०से १००० ई० पू० तक होना सिद्ध होता है, और इसका मध्याह्न लगभग १५०० ई० पू० था। सांस्कृतिक इतिहासमें यह आर्योंकी नई संस्कृतिका युग माना जाता है। इस नये युगमें जितने भी प्रसिद्ध मन्त्रकार कवि हुए वे केवल कवि ही नहीं थे किन्तु ऋषि और पूर्ण विद्वान् भी थे। अब इस नई जागृतिके वातावरण और जिज्ञासाके युगके इन ऋषियोंका सदाचार और उनकी सामाजिक, राजनैतिक योग्यताका महत्त्व समझा जाने लगा है, और उनका व्यक्तित्व स्पष्ट होता जा रहा है।

ये ऋषि अपने काव्यों और गीतोंके द्वारा समाजको प्राकृतिक और आत्मिक (भौतिक और अध्यात्मिक) मार्गोंका उपदेश करके सदाचार और सहयोगका महत्त्व और पवित्र जीवनका गौरव हृदयंगम कराते थे। इन ऋषियोंमें नर भी थे और नारी भी। कविताकी दृष्टिसे नारी ऋषियोंका पद नर-ऋषियोंसे किसी प्रकार घटकर नहीं था, उनकी योग्यता भी इनसे घट कर नहीं थी, तथा ये भी अपने काव्य एवं गीतोंके द्वारा धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवनमें उचित भाग लेती थीं।

वैदिकयुगकी स्त्री-ऋषियोंने आर्योंके सामाजिक जीवनमें क्या भाग लिया, यह एक स्वतंत्र निबन्धका विषय है जिस पर अधिक विस्तारसे प्रकाश डालना आवश्यक है। इस लेखमें हमें इन देवियोंका संक्षेप में उल्लेख मात्र केवल उनकी शिक्षा-दीक्षा आदिकी दृष्टिसे करना है। वैदिक-युगमें आर्य-गृहस्थोंमें पुत्र और पुत्रीका पालन-पोषण तथा शिक्षा आदि एक ही ढंगसे की जाती थी, एवं इन बातोंमें इन दोनोंके मध्यमें किसी प्रकारका भी भेदभाव नहीं बर्ता जाता था। यों तो माता और पिता दोनों ही समानरूपसे सन्तानके पालन-पोषण और शिक्षा विधिसे परिचित होते थे, और दम्पति ही समान रूपसे सन्तानके पालन-पोषण तथा शिक्षणमें दत्त-चित्त रहते थे, किन्तु इन कार्योंमें पिताकी ही प्रधानता रहती थी, क्योंकि पिताका कर्तव्य माना जाता था कि पितरोंसे प्राप्त

हुई सांस्कृतिक सम्पत्ति और अध्यात्मज्ञानको भावी सन्तान और उत्तराधिकारियोंको सौंप दे। पुत्रकी प्रवृत्ति पिताके अनुवर्तनी होती है; वह बड़ा होकर बाहरके कठिन कार्योंमें पिताका हाथ बंटाता है। इसके विरुद्ध पुत्री माताके पास रहती है और उसके पालन-पोषणमें माताका स्वभावतः ही अधिक अधिकार होता है, किन्तु मुख्य बात यह थी कि सामान्यतः पुत्र और पुत्रीका पालन एक प्रकारसे ही होता था, क्योंकि गृहस्थ जो वात्सल्य और प्रेमका धाम होता था उनकी संयुक्त पाठशाला थी, परिणामतः वैदिक युगमें काव्य साहित्यकी रुचि स्त्री-पुरुषोंमें समान-रूपसे पाई जाती थी। जो सामाजिक कार्य पुरुष करते थे वही स्त्रियां भी करती थीं—वे कविता या मन्त्रोंकी रचना करती थीं, यज्ञोंमें भाग लेती थीं और देवताओंकी स्तुतिके सूक्त पढ़ती थीं और इस प्रकार वे ऋषियोंकी महत्त्वपूर्ण श्रेणीमें गिनी जाती थीं। यहां हम वैदिक युगकी कई कवयित्री ऋषियोंके नाम गिनाते हैं—

१—घोषा—यह राजकुमारी बहुत प्रसिद्ध कवयित्री थी, इसके रचे मन्त्र ऋग्वेदके प्रथम मण्डल के सूक्त ११७ और मण्डल १० के सूक्त ३९ और ४० में हैं।

२—लोपामुद्रा—एक यशस्विनी कवयित्री थी, इसके रचे मन्त्र प्रथम मण्डलके १७९ वें सूक्तमें संगृहीत हैं।

३—ममता—इस कवयित्रीकी रचना ऋग्वेदके छठे मण्डलके सूक्त २ और १० में है।

४—अपाला—इस मन्त्ररचयित्रीके मन्त्र सप्तम मण्डलके ९१ सूक्तमें प्राप्त होते हैं।

५—सूर्या—इस विदुषीकी रचना दशम मण्डलके ८५ वें सूक्तमें उपलब्ध होती है।

६—इन्द्राणी—इसके रचे मन्त्र दशम मण्डलके १४५ वें सूक्तमें हैं।

७—शची—इस विदुषीके रचे मन्त्र दशम मण्डलके १६–१५६ वें सूक्तमें संगृहीत हैं।

८—सार्पराज्ञी—ऋग्वेदके दशम मण्डलका सूक्त १८९ इसी देवीका रचा है।

९—विश्ववारा—इसके रचे कुछ मन्त्र ऋग्वेद के पांचवें मण्डलके २८ वें सूक्तमें संगृहीत हैं।

इस विचारसे 'आर्याना' के पाठक हमारे देशकी वैदिक युगकी कवयित्रियोंकी विचार-धारा, उनकी वाक्-शक्ति, वर्णन-शैली एवं विषय-चयनकी रुचिका अनुमान कर सकेंगे, हम राजकुमारी घोषाके रचे एक सूक्तका अनुवाद यहां भेंट करते हैं—

"हे अश्विनियों! हे प्रातःकालीन नक्षत्रों! तुम्हारा रथ मनकी गतिसे भी शीघ्र गति वाला है; तुम्हारा रथ जिसे वीर द्रुतगामी अश्व खींचते हैं, तुमको मनुष्योंकी ओर ले जा रहा है। तुम किधर जा रहे हो? यदि तुमको शुद्ध आत्मा वालोंकी तलाश हो तो तुम हमारे गृहमें पधारो।"

"तुम वन्दनके अद्भुत कार्योंको प्रकाशमें लाये कि जिससे उसे सम्मान प्राप्त हुआ, जैसे भूमिमें गड़ा हुआ कुन्दन स्वर्ण भूमिसे खोदकर निकालने पर ही महत्त्व प्राप्त करता है। उस मनुष्यकी नाईं जो आपत्ति और मृत्युकी गोदमें सुप्त है या जिस प्रकार अन्धकार से घिरा सूर्य छिपा रहता है, ऐसे ही वन्दन अपना सम्मान और प्रतिष्ठा नष्ट कर चुका था, किन्तु तुमने उसे फिर प्रतिष्ठा प्रदान की"।

"हे अश्विनियों! तुमने अपने शौर्य और वीर्य से उस पुराने मनुष्य च्यवनको सदाके लिये युवा बना दिया"।

"हे नासत्यो। तुम सूर्यकी कन्याको पूर्ण वैभवके साथ अपने रथमें वहन करो"।

"तुम, जो सदैव युवा रहते हो, तुमने अपने प्राचीन नियमके अनुसार तुग्रको स्मरण किया, तुमने

अपने घोड़ोंके द्वारा जो गतिशील पक्षोंसे उड़ते हैं, भुज्युको समुद्रकी लहरोंसे बचाया"।

"अद्भुत कर्म करने वालो! तुमने भूमिको हल से कर्षण किया, और उसमें यव बोये जिससे मनुष्य को अन्न प्राप्त हो सके; तुमने दस्युको अपनी ध्वनिसे डरा कर भगा दिया, और आर्यको सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होने वाला प्रकाश दिया"।

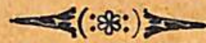
"मान्यों! मैं आपकी सहायता चाहती हूँ; अश्विनि कुमारों! मेरी कामना पूर्ण करो! नासत्य देवों! मुझे धन भी दो और वीर सन्तान भी"।

"मनुष्य आपके प्राचीन पराक्रमपूर्ण कार्योंसे अनभिज्ञ हैं, मेरी प्रार्थना है कि वीर और युवक पुत्रों से युक्त मैं आपकी स्तुतिके मन्त्र पढ़ूं"।

"मैं इस समय सोम उपस्थित करती हूँ, जो मेरे निकट है और जो मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं प्रार्थना करती हूँ कि मेरे पाप क्षमा कर दो। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें कोई न कोई इच्छा रहती है, उसी प्रकार अगस्त्यकी हार्दिक इच्छा है कि उसे धन, वीर पुत्र और शक्ति प्राप्त हो और वह अपनी इस इच्छाको पूर्ण करनेके लिये बड़ा प्रयत्न और परिश्रम करता है"।

ये मन्त्र ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ११७ सूक्तमें आये हैं। (अनुवादक स्व० श्री जगनलाल गुप्त, मुख्तार)

—श्री पं० सूर्यनारायण जी व्यासके 'विक्रम' के सौजन्यसे



राशिस्वामियोंकी विशिष्ट-उपपत्ति

[लेखक—राजकुमारगुरु ज्योतिषालङ्कार श्री पं० तारादत्तजी राजज्योतिषी]

(हेमन्ताङ्कसे आगे)



राशिचक्र विश्वका अधिष्ठाता है, इसलिए उसके अन्त्य-विभाग वस्तुओंके अन्तके अधिष्ठाता हैं। राशिचक्रके विभागोंमें राशिरूप और नक्षत्ररूप विभाग प्रधान हैं। इसलिए जहां राशि और नक्षत्र दोनोंका अन्त होता है, वह स्थान प्रधान रूपसे वस्तुओं के अन्तका अधिष्ठाता है। अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवतीके अन्तमें राश्यन्त भी होता है। इसलिए अश्लेषान्त, ज्येष्ठान्त और रेवत्यन्त प्रधान रूपसे अन्तके अधिष्ठाता हैं। जहां अन्त होता है, वहींसे आरम्भ भी होता है। इसलिए मूलका आदि, मघाका आदि और अश्विनीका आदि ये प्रधान रूपसे वस्तुओं के आरम्भके अधिष्ठाता हैं। अत एव मघा, मूल और अश्विनी ये नैसर्गिक उत्पत्ति नक्षत्र हैं। इन तीन नैसर्गिक उत्पत्ति-नक्षत्रोंमें अश्विनी नक्षत्र चक्रारम्भ नक्षत्र होनेसे प्रधान है।

जन्म समयमें प्रधान रूपसे उत्पत्ति होती है। इसलिए अश्विनी नैसर्गिक जन्मनक्षत्र है। इस नक्षत्रमें विश्वकी उत्पत्ति हुई है। जन्म नक्षत्रसे अधिष्ठित जन्मके कारणरूप अन्तर्देह व्यापिनी शक्तियां इस नक्षत्रसे भी अधिष्ठित हैं, जन्मसे प्रथम देहकी उत्पत्ति आधान समयमें होती है। इसलिए मूल नैसर्गिक आधान नक्षत्र है। इसमें सृष्टिकी मूल राशियोंका आविर्भाव संभावित होता है। आधान नक्षत्रसे अधिष्ठित आधानके कारण अन्तर्देह व्यापिनी शक्तियां इस नक्षत्रसे भी अधिष्ठित हैं। आधान-प्रथम देहकी उत्पत्ति माता पिताके देहकी उत्पत्तिके साथ होती है। इसलिए मूलरूप उत्पत्ति-नक्षत्रसे प्रथम उत्पत्ति-नक्षत्र मघा पितृ नक्षत्र है। इसमें दिव्य पितरोंको समर्पित मूल शक्तियोंका बीज प्रकट करने वाली जगत्पिताकी दिव्यशक्तियोंका आविर्भाव

प्रतीत होता है। पितृग्रह तथा पितृस्थानसे अधिष्ठित शक्तियां इस नक्षत्रसे भी अधिष्ठित हैं।

जन्म समयमें तात्कालिक नक्षत्र-चक्रमें भी प्रथम नक्षत्र जन्म-नक्षत्र और उन्नीसवां नक्षत्र आधान नक्षत्र माना गया है।

जन्मर्क्षमाद्यं दशमं तु कर्म संघातिकं षोडशभं वदन्ति।
अष्टादशं स्यात् समुदायसंज्ञमाधानमेकोनितविंशतिः स्यात्॥
(जातकपारिजात)

पूर्व जन्मके कर्मोंसे गर्भमें प्रवेश होता है। इस लिए जन्म-समयके नक्षत्र चक्रमें आधान नक्षत्रसे प्रथम उत्पत्ति नक्षत्र कर्म-नक्षत्र माना गया है।

दशम नक्षत्र पितृ-नक्षत्र और कर्म-नक्षत्र भी युक्तिसे सिद्ध होता है। व्यवस्थासे वह नैसर्गिक नक्षत्र चक्रमें पितृ नक्षत्र और जन्म समयके नक्षत्र चक्रमें कर्म नक्षत्र माना गया है। कर्म मुख्य कारण है। जन्मसमयका नक्षत्र-चक्र भी मुख्य है। इसलिए जन्म समयमें दशम नक्षत्र कर्म-नक्षत्र माना गया है। पूर्वजन्म कृत कर्मोंकी अपेक्षा पितरोंके उत्पादन कार्यमें अप्रधान होनेसे नैसर्गिक नक्षत्र चक्रमें दशम नक्षत्र पितृ नक्षत्र माना गया है।

जन्म-नक्षत्रके आरम्भसे तीस तीस अंशोंके अन्तमें एक एक राशिका अन्त मानने पर जन्म-समयके नक्षत्रचक्रमें भी नवम, अष्टादश और सप्तविंश नक्षत्रके अन्तमें राशि, नक्षत्र दोनोंका अन्त सिद्ध होता है।

चतुर्थ स्थान मातृ स्थान है। इसलिए नैसर्गिक कुण्डलीमें भी चतुर्थ-कर्क मातृ राशि है। सप्तम स्थान स्त्रीका पति स्थान है। इस लिए चतुर्थसे सप्तम-दशम पितृ स्थान है। इस प्रकार मातृ राशि कर्कसे सप्तम राशि मकरको पितृराशित्व प्राप्त हुआ। परन्तु मकर स्त्री राशि है। इसलिए इस नियमके स्थानमें अन्य नियमके अवलम्बनकी आवश्यकता हुई। वह इस प्रकार है:—

कर्कके संमुखमें मकर है इसलिए सिंह कर्ककी दक्षिण ओर है। कर्क स्त्री और सिंह पुरुष राशि है। स्त्री वामाङ्गी कहलाती है। इस लिए सिंह राशि कर्ककी पति राशि शिद्ध हुई। कर्क मातृ राशि है। अतएव सिंह राशि पितृराशि सिद्ध हुई। सिंह राशिका आरम्भ मघासे है, अतएव मघा पितृ-नक्षत्र सिद्ध हुआ। यह दूसरा प्रकार है।

प्राच्यादि गृहे क्रियादयो द्वौ-द्वौ कोण गता द्विमूर्तयः॥
(बृहज्जातक)

इस नियमके अनुसार कर्क सिंह राशियां दक्षिण दिशामें होती हैं। जैमिनीय दृष्टि चक्रमें भी ऐसा ही क्रम है।

दक्षिण दिशा पितृ दिशा है।

एसा वै (दक्षिणा) दिक् पितृणाम्।
(श) १।२।५।१७॥

दशम स्थान पितृ स्थान है, उसके दक्षिण दिशामें होनेसे भी दक्षिण दिशा पितृ दिशा सिद्ध होती है। अत एव कर्क-सिंहका मध्य मुख्य रूपसे पितरोंसे अधिष्ठित प्रतीत होता है, वह मघाके आरम्भमें है। अतएव मघा पितृ नक्षत्र सिद्ध हुआ। यह तीसरा प्रकार है। पूर्व लेखमें मघाको पितृ नक्षत्र मानकर राशि स्वामियोंकी उपपत्ति लिखी गई। इस लेखमें शास्त्र सिद्ध मघाका पितृ नक्षत्रत्व युक्तिसे भी सिद्ध किया गया है।

फलित अतीन्द्रिय शास्त्र है। इसलिए फलितोपत्तिकी लौकिक युक्तियां गणितोपपत्तिकी युक्तियोंके समान सर्वत्र पूर्णरूपसे दृढ़ नहीं होती हैं। अनेक अदृढ युक्तियां भी मिल कर "तृणैर्हि बध्यते रज्जू-रज्जुना बध्यते गजः" इस नियमके अनुसार दृढ़ रूप धारण कर लेती है। इसलिए फलितोपपत्तिके लिए अनेक प्रकारकी युक्तियोंका आविष्कार आवश्यक है।

'राशिनाथोपपत्तिः कालिदासोक्ता' इस ज्यौतिष मीमांसादर्शनके परिशिष्ट सूत्रमें कालिदास शब्दको समान न्यायसे यवनाचार्यका भी उपलक्षण जानना चाहिये।

भारतीय ज्योतिष-शिक्षण

[लेखक—ज्योतिषमार्तण्ड श्री पं० मदनलाल जी शास्त्री]



भारतवर्षमें ज्योतिष विद्या सृष्टिके रचनाकालसे या यों कहिये कि अज्ञातकालसे चली आती है। इस विषयमें एतद्देशीय विद्वानोंने बड़ी उन्नति की है। वेदोंके छः अङ्ग हैं, अर्थात् शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, छन्द और ज्योतिष। इनमें ज्योतिष एक ऐसा अङ्ग है जिसका सम्बन्ध यज्ञादि अनुष्ठानोंसे बड़ा घनिष्ठ है।

वेदाङ्गोंकी रचना कब हुई, इसके विषयमें अनेक धुरन्धर विद्वानोंकी अनेक सम्मतियां होने पर भी यह बात अभ्रान्त सिद्ध है कि इनका समय अत्यन्त प्राचीन है। नवीन विचारकोंके मतसे वह कमसे कम ३५०० वर्ष पूर्वका है। उनके अनुमानसे उस समयमें भारतवर्षके अतिरिक्त और कोई देश सभ्यता और विज्ञानकी ऐसी ऊंची दिशामें नहीं था। भारतीयोंके सिद्धान्तानुसार तो ज्योतिष वेद-विहित है; जिसके प्रमाण स्वरूप वेदकी संहिताओंमें अनेक श्रुतियां हैं। इस विषयका विवेचन अन्य किसी लेखमें किया जायगा।

यह कहना कि भारतीय ज्योतिषके सिद्धान्त अन्य देशोंसे प्राप्त हुए हैं सर्वथा निर्मूल है। यह विद्या नितान्त भारतवर्षीय ही है, इस विषयकी परिपुष्टि करने वाले भारतवर्षमें गर्गादि बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं, जिनके लिखे अनेक गौरवशाली ग्रन्थ विद्यमान हैं। अन्य वैज्ञानिक विद्याओंके समान ज्योतिष भी दो भागोंमें विभक्त है, एक (गणित) सिद्धान्त दूसरा फलित। फलित ज्योतिषको मिथ्या कहना वैज्ञानिक नियमोंके विरुद्ध है। यदि किसी शास्त्रका सिद्धान्त पक्ष है तो उसका प्रायोगिक पक्ष भी अवश्य हो सकता है।

व्यापक नियमोंको खोज निकालना सिद्धान्त पक्ष कहलाता है, उन नियमोंका प्रयोग करना अर्थात् उन्हें प्रतिदिनके कार्योंमें लगाकर लाभ उठाना प्रायोगिक पक्ष है।

इसी प्रायोगिक पक्ष (फलित ज्योतिष) के द्वारा भारतवासियोंने प्राणी मात्रका उपकार करनेकी इच्छा से अनेक ग्रन्थोंका निर्माण किया है। इस ज्योतिषका हिन्दू जीवनसे तो बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। और जब तक हिन्दू समाजकी प्राचीन मर्यादायें रहेंगी ज्योतिषका सम्बन्ध बराबर ऐसा ही चला जायगा। दुःख है कि ऐसे शास्त्रकी हम उपेक्षा कर बैठे हैं जो हमारा सांसारिक और पारलौकिक सहचर है। इस बातको सब हृदयंगम कर सकें एतदर्थ भारतीय ज्योतिष शिक्षण प्रणाली इस पत्रमें लिखना निश्चय करके भारतीय ज्योतिष शिक्षणका उपक्रम किया जाता है।

ज्योतिष वेदका अङ्ग होनेसे भारतवासी मात्रको उसका ज्ञान होना आवश्यक है। इतना ही नहीं प्राणीमात्रको उपादेय है, ऐसे शास्त्रको सीखनेसे (ज्ञान प्राप्ति करनेसे) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की प्राप्ति होती है, जैसे कहा है:—

"कं सूर्यमलति भूषयतीति काली एवं विधः दासः कालिदासः सूर्यभक्तः सूर्योक्त ज्योतिःशास्त्र प्रचारेण यशसा सूर्यस्य शोभावर्धनमिह भूषणम् ।" इसप्रकार भी यहां कालिदास शब्दसे यवनाचार्यका ग्रहण हो सकता है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है:—

"ब्रह्मणा कथितं भानोर्भानुना यवनाय यत्"

"हलन्त्यम्" इस सूत्रके समान यहां भी द्विरावृत्ति जाननी चाहिए।

यज्ञात्त्ष्टिर्देवतानां प्रदिष्टा—
तज्जा वृष्टिर्वृष्टितोऽन्नं किलान्नात् ।
भूतानिस्युर्यज्ञ मूलं हि विप्रा—
संस्कारैस्तद्यज्ञसिद्धिः सुकालात् ॥

देवता यज्ञोंसे प्रसन्न होते हैं, उनके प्रसन्न होनेसे वर्षा होती है, वर्षासे अन्न और अन्नसे प्राणी होते हैं। यज्ञोंके मूल द्विज हैं, उनका द्विजत्व संस्कारोंसे है, संस्कार और यज्ञ सिद्धि ज्योतिषमें कहे हुये शुभकालमें अनुष्ठान करनेसे होती है, यज्ञादिकी सिद्धि होने पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि फल प्राप्तिके साथ लोगोंमें प्रसिद्धि और यश होता है (तदध्ययनतो रवितां समेति) इसके द्वारा चराचर जगत्का शुभाशुभ जाना जाता है, ऐसे शास्त्रको अवश्य जानना चाहिये।

प्रिय पाठक !

ज्योतिष विद्याके विचार बहुत ही गहन और सूक्ष्म हैं, उनके वास्तव ज्ञानमें कठिनश्रम और मनोनियोगकी बहुत आवश्यकता है अतः विचारपूर्वक पठनसे ही लाभ हो सकेगा। ज्योतिःशास्त्र शब्दकी व्युत्पत्ति निम्नलिखितानुसार होती है — यथा (ज्योतिः 'सूर्यादि गोलमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्यौतिषम् तत्सिद्धांत, संहिता, होरा, रूपेण स्कन्धत्रयेण शासकत्वाच्छास्त्रम्) प्रकाशित सूर्यादि गोलोंके आधार पर रचे ग्रन्थको ज्यौतिष कहते हैं, यह सिद्धान्त, संहिता, होरा नामक तीन स्कन्धों (समूहों) द्वारा जगत् पर शासन कर्ता है इससे शास्त्र, इस व्युत्पत्तिसे ज्यौतिषशास्त्र शब्द बना। इसके वेद वत् छः अङ्ग होनेसे इसको ज्योतिष महाशास्त्र कहते हैं। यथा:—

जातक गोलनिमित्त प्रश्न—
मुहूर्ताख्य गणित नामानि ।
अभिदधतीह षडङ्गान्याचार्या—
ज्योतिषे महाशास्त्रे ॥

किसीके मतसे पंचाङ्गात्मक वर्णित है यथा।

पञ्चस्कन्धमिदं शास्त्रं—
होरा गणित संहिताः ।
केरलिः शकुनं चेति—
ज्योतिःशास्त्रमुदीरितम् ॥

बहुत सी सम्मतियां इसके त्रिस्कन्धात्मक होने पर ही हैं, जिनको इस विषयमें विशेष जानना हो वे ज्योतिषके अङ्ग उपाङ्गोंके वर्णनमें देखें। अतः जिस शास्त्रको जाननेकी इच्छा हो प्रथम उसकी परिभाषा का ज्ञान आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र समय मूलक है इसी कारण प्रथम समयका मान लिखते हैं:—

दिग्भिः याद्गुरु वर्णकैरसुरसोः—
षड्भिः पलं तत्खखड् ।
नाड़ी तद्युगलं क्षणोऽत्र—
खगुणैस्तैस्यादहर्यामिनी ॥

पक्षस्तत्तिथिभिश्च पक्ष—
युगलो मासो ऋतुस्तद्द्वयं ।
तद्रामैरयनं किलायन—
युगं वर्षंभचक्रोन्मितम् ॥

जितने समयमें १० दीर्घ अक्षरोंका उच्चारण हो उतने समयको एक १ असु कहते हैं, ६ छः असुओं का एक पल, ६० पलकी एक घड़ी, दो २ घड़ीका एक क्षण (मुहूर्त) ६० घड़ीका एक दिन रात्रि, १५ रात्रि दिनका एक पक्ष, २ पक्षका एक महीना, दो २ महीनोंका एक ऋतु, तीन ३ ऋतुका एक अयन, दो २ अयनोंका एक वर्ष, बारह वर्षका एक भचक्र होता है (अर्थात्) सूर्यादिग्रह जितने समयमें १२ राशि को भोगते हैं वह समय उन उन ग्रहोंका वर्ष कहाता है। वर्ष या सम्वत्सर चान्द्र, सौर, सावन, जैव, भेदोंसे चार प्रकारका कहा है। यथा—

सौरं वर्षं चक्र भोगो रवेस्तत् ।

खाङ्का ज्याशार्कोदयैः सावनं स्यात् ॥
दार्शै पौर्णैं दिग्द्विमासैश्च चान्द्रं ।
मध्येज्यार्क्षो वत्सरौब्जोमधोर्वा ॥

सूर्य जितने समयमें बारह राशियोंका भोग करता है (अर्थात्) मेष राशिके प्रारम्भसे मीन राशिके अन्त तक सूर्य जितने काल तक रहता है वह समय सौर वर्ष यानी सूर्यका वर्ष कहा जाता है। सूर्यके ३६० उदयोंका एक सावन वर्ष होता है—जिस दिनसे गणना करनी हो उस दिनके सूर्योदयसे ३६० उदय सूर्यके होने पर एक सावन वर्ष होगा। शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावसके अन्त तक, या कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे पूर्णिमासीके अन्त तक एक चान्द्रमास होता हैं, ऐसे १२ महीनोंका एक चान्द्र वर्ष होता हैं, शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे जो महीना गिना जाता है उसको शुक्लादि चान्द्रमास कहते हैं और जो कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे गिना जाता है उसको कृष्णादि चान्द्रमास कहते हैं। चाद्र वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे फाल्गुन कृष्णा अमावस तक शुक्लादि क्रमसे गिना जाता है और कृष्णादि गणनासे चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे चैत्र कृष्ण अमावस तक चाद्र वर्ष होता है । बृहस्पति अपनी मध्यमा गतिसे जितने समयमें एक राशिको भोगता है उसे गुरु वर्ष या जैव सम्वत्सर कहते हैं, प्रभवादि षष्ठि-सम्वत्सर इसी गणनानुसार परिगणित होते हैं; इस प्रकार सम्वत्सर या वर्षके चार भेद हैं।

यूरुपीय ज्योतिष-शिक्षण ।

जिस प्रकार भारतवर्षमें ज्योतिषके आचार्यों द्वारा ज्योतिषका प्रचार (बहुत समय) अनादि कालसे होता रहा है उसी प्रकार यूरुपमें भी जबसे ज्ञानका विकाश हुआ तभीसे भारतवर्षसे ही इस विद्याका ज्ञान प्राप्त करके अनेक ज्योतिर्विद् विद्वान् इस साहित्यकी वृद्धि करते रहे हैं। जैड्कील, रौल, मरकरी, एलनलीओ, शेरो आदि ज्योतिष विद्याकी सचाईको जगत्‌में प्रकट करने वाले और भविष्य-वाणी करने वाले कई विद्वान् यूरोपमें हो चुके और अब भी कई हैं। उनकी लिखी पुस्तकों द्वारा आज कल यूरुपमें फलित ज्योतिषका खूब प्रचार हो रहा है, क्योंकि ज्योतिषके साधन, यन्त्रादि, सूक्ष्माति सूक्ष्म यूरुपमें ही उपलब्ध हैं, समयकी गतिसे यूरुप का शिक्षागुरु भारत ऐसे कालसाधनके उपकरणोंसे खाली तो नहीं है, परन्तु उनका समकक्ष भी नहीं है। यूरुपने जड़वादी जगत्‌में यह सिद्ध कर दिया है कि ज्योतिषके सिद्धान्त अटल और सत्य हैं, इनमें भ्रम करना अज्ञानताका ही कारण है। लोग उपरोक्त विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकोंसे यथेष्ट लाभ उठा रहे हैं। भारतवर्षमें भी मराठी गुजराती, आदि भाषाओंमें उन ग्रन्थोंके आधार पर ही गणित और फलितके अनेकों ग्रन्थ लिखे गये हैं, परन्तु हिन्दी भाषामें बहुत कम देखनेमें आते हैं, इसी कारण 'श्रीस्वाध्याय' में एक स्तम्भ हिन्दी भाषा भाषियोंकी जानकारीके लिये (यूरुपीय ज्योतिष शिक्षण) नाम का रख रहे हैं। इसमें गणित और फलित दोनों प्रकारके ज्योतिषका समावेश रहेगा।

तलवारकी ललकार

[श्री पं० चम्पालालजी विशारद कविशेखर 'मञ्जुल']



कर दो अब जागृत-जागृत हो अतिक्लान्त कलेवर हो रही हूँ।
कर्तव्य-विहीन निराशभरी पृथ्वीराजके राजसे सो रही हूँ॥
बल-उत्थित आर्यसुसंततिका कबसे मग 'मञ्जुल' जोह रही हूँ।
दिखला कर जङ्गमें जौहरको अब जङ्गमें जौहर खो रही हूँ॥

गत वैभव चाहते जो अपना अपनाके मुझे रण दान करो।
शुचि–शौर्य–समुज्ज्वल–चन्द्रिकामें सब स्वत्व सुधारस पान करो॥
बिन मानके 'मञ्जुल' मान कहां? इतना उरमें अनुमान करो।
बस मेरे निरापद आश्रयमें उठके अमरत्व विधान करो॥

सं० २००३ वि० का

श्रीविश्व-विजय-पञ्चाङ्ग

दैनिक स्पष्ट ग्रह, दैनिक लग्नसारणी वर्षफल भविष्यवाणी आदि अनेक आवश्यक महत्त्वपूर्ण विषयोंसे परिपूर्ण उत्तर भारतीय पंचागोंमें अभूतपूर्व नवीनताओंको लिए हुए सर्वाङ्ग शुद्धसूक्ष्म-गणित द्वारा निर्माण किया हुआ हमारा "श्रीविश्वविजय-पञ्चाङ्ग" शीघ्र ही अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक रूपमें प्रकाशित हो रहा है। वर्तमान वर्ष सं० २००२ वि० के "श्रीविश्वमार्तण्ड पञ्चाङ्ग" में प्रकाशककी अनवधानता और प्रूफ हमें न दिखानेके कारण अनेकों अक्षम्य अशुद्धियां छप गई हैं, उनका उत्तरदायित्व प्रकाशक पर ही है। अब "श्रीविश्वमार्तण्ड पञ्चाङ्ग" और "मेहर-आलमजंत्री" से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। नवीन सूक्ष्म गणितका पञ्चाङ्ग चाहने वाले सज्जन हमारे "श्रीविश्वविजय पञ्चाङ्ग" की प्रतीक्षा करें।

—हरदेव शर्मा त्रिवेदी ज्यौतिषाचार्य

सम्पादक 'श्रीस्वाध्याय' और 'श्रीविश्वविजय-पञ्चाङ्ग' सोलन (शिमला)



तेतीसवें अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (उदयपुर) के उद्घाटनरूप महान् सुकार्यके लिए आर्य-कुल-कमल-दिवाकर 'हिन्दुआँसूर्य' प्रातःस्मरणीय श्रीप्रतापवंश-विभूषण महाराजाधिराज हिज हाईनेस श्री १०५ मान् **महाराणा सर भूपालसिंह जी बहादुर G. C. S. I., K. C. I. E.** महोदयके भारतकी भारती (हिन्दी-राष्ट्रमाता) इस मङ्गलमय विजयादशमीके विजय मुहूर्तमें विजयतिलक कर रही है।

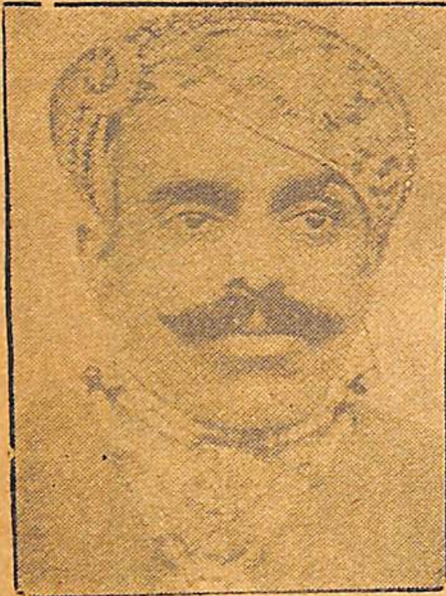
अ० भा० हि० सा० सम्मेलनके मनोनीत अध्यक्ष



श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कुछ कर्णधार

मेवाड़के वर्तमान महाराणा साहब



आपके करकमलोंसे सम्मेलनका उद्घाटन हो रहा है।

विश्ववन्द्य बापू



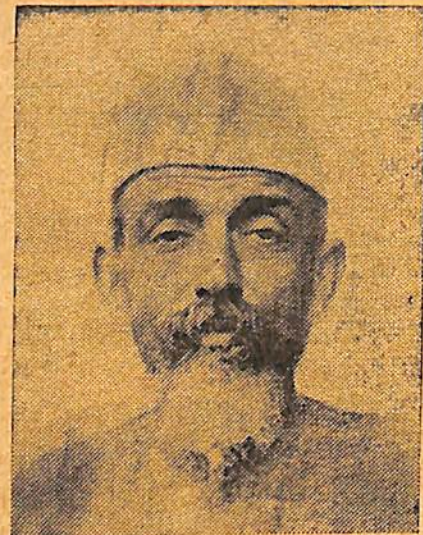
आप सम्मेलनके सर्वस्व हैं, पर अब किनारा कर बैठे हैं

श्रीत्यागमूर्ति गो० गणेशदत्तजी



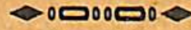
आपके सभापतित्वमें सम्मेलनने पर्याप्त प्रगति की है।

श्री बा० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन



आप सम्मेलनके प्रमुख आधारस्तम्भ एवं राष्ट्रभाषा हिन्दीके सच्चे संरक्षक सेनानी हैं।

अ० भा० हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, उदयपुर



[अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका ३३वां अधिवेशन इस वर्ष आश्विन शु० ११-१२-१३ को उदयपुरमें हो रहा है। वीरप्रसू मेवाड़की राजधानी उदयपुरमें देशके प्रत्येक कोने-कोनेसे पधारे हिन्दी हितैषी महानुभावोंको अपने मध्यमें पाकर मेवाड़की आबाल वृद्ध सम्पूर्ण जनता हर्षातिरेकसे उल्लसित हो उठी है — वर्ष भरकी लम्बी प्रतीक्षाके पश्चात् अपने आदरणीय अतिथियोंके स्वागत सत्कारका सुअवसर पाकर कृतकृत्य हो रही है। अतः मेवाड़ी होनेके नाते हम भी सम्मेलनमें पधारने वाले मान्य महानुभावोंका हार्दिक स्वागत करते हैं और उनकी सेवामें अपने निम्न विनम्र विचार उपस्थित किया चाहते हैं। —सम्पादक]

उदयपुरमें अंग्रेजीका प्रभुत्व—

एक ओर जब कि आज देशके कोने-कोनेमें राष्ट्र भाषा हिन्दीके प्रचारकी ध्वनि गूंज रही है — सम्पूर्ण कार्य हिन्दीमें करनेकी प्रबल लहर चल रही है — उन देशी राज्योंमें भी जहां पहले अंग्रेजी, उर्दू या अन्य प्रान्तीय भाषाओंका अखण्ड आधिपत्य था, हिन्दीको स्थान दिया जा रहा है — सर्वत्र राष्ट्र-भाषा हिन्दी व देवनागरी-लिपिके प्रचारका आन्दोलन व्यापक रूप धारण कर रहा है, वहां दूसरी ओर हिन्दू संस्कृतिकी सर्व श्रेष्ठ संरक्षक वीर भूमि मेवाड़में एक दूसरा ही दृश्य दिखाई दे रहा है। यहां आजसे कुछ वर्ष पूर्व तक एकमात्र हिन्दी ही राज्य-भाषाके रूपमें प्रतिष्ठित थी — राज्यका छोटा बड़ा लिखा पढ़ीका सम्पूर्ण कार्य हिन्दी ही में हुआ करता था — राज्य कर्मचारियोंके लिये केवल हिन्दी भाषा व नागरी लिपिका ज्ञान ही आवश्यक एवं वाञ्छनीय था। किन्तु, दुःख और क्षोभसे कहना पड़ता है कि अब राज्यका अधिकांश कार्य अंग्रेजीमें होने लगा है — उच्च अधिकारियोंके लिये अंग्रेजीका जानना एक प्रकारसे आवश्यक-सा हो गया है — साधारण क्लर्कोंको भी अंग्रेजी जाननी ही होती है — एक शब्दमें यों कहें कि अब मेवाड़में अंग्रेजीका बोल-बाला होने लगा है। परिणाम स्वरूप अंग्रेजीसे अनभिज्ञ राज्यकर्मचारी व जनता त्रस्त, आतंकित एवं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही है। केवल अंग्रेजी भाषा ही क्यों, सम्प्रति मेवाड़में अंग्रेजी सभ्यताका भी पर्याप्त प्रचार किया जा रहा है! महकमाखासके नवनिर्मित भवनों पर हिन्दू-संस्कृतिके प्रतीक मन्दिरोंके शिखर या छत्रियोंके स्थान पर क्रिश्चियन ढंगके गुम्बज बने देखकर किस भारतीयका हृदय कराह न उठेगा।

कहां तक लिखें, वर्तमानमें उदयपुरको अंग्रेजी भाषा व संस्कृतिका केन्द्र बनाया जा रहा है। एक समय था जब भारतके अन्य प्रान्तोंसे यवनों द्वारा उत्सारित हिन्दू संस्कृतिने इसी भूमिमें आकर अपनी रक्षा की थी—हिन्दू संस्कृतिके रक्षक होनेका गौरव मेवाड़ ही को प्राप्त हुआ था — पर आज उसके सर्वथा विपरीत होने जा रहा है और इस प्रकार मेवाड़में सम्प्रति उल्टी गङ्गा बहने लगी है। किन्तु, साथ ही हम यहां यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस महान् अपराधका—राष्ट्र माता हिन्दीके प्रति उपेक्षा भावका — उत्तरदायित्व राज्यवंश या भोली-भाली जनता पर नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण एवं निश्चित रूपसे उन विदेशी शासकों—उच्च राज्याधिकारियों पर ही है जिनकी कृपासे अंग्रेजीकी विषाक्तलता मेवाड़में पनपने लगी। अस्तु।

श्रीगणेश यहींसे हो—

राजपूतानेके राज्योंमें हिन्दीको उचित एवं वास्तविक अधिकार दिलानेका दायित्व सम्मेलनको अपने कन्धों पर ले ही लेना चाहिये और इस सम्बन्धमें अविलम्ब कोई क्रियात्मक ठोस पग उठाया जाना

चाहिये। यद्यपि गत वर्ष भी इस कार्यके लिये जयपुर अधिवेशनमें एक उपसमिति बनी थी, पर हमें नहीं ज्ञात कि उक्त समितिने इस एक वर्षमें कितना कुछ कार्य किया, अब हमें भूतको न देखकर वर्तमान व भविष्यके लिये ठोस एवं रचनात्मक कार्यक्रम बनाना चाहिये।

हमारी समझमें रियासतोंमें हिन्दीको उचित स्थान दिलानेका कार्य उदयपुर हीसे आरम्भ किया जाए तो सर्वोत्तम रहेगा। कारण यह कि यहां अंग्रेजी पनप तो अवश्य गई है, पर अभी बद्धमूल नहीं हो पाई है, अतः साधारणसे प्रयत्नसे ही इसे उखाड़ा जा सकता है। किन्तु, यदि इस समय उपेक्षा कर दी गई तो फिर सम्भवतः अंग्रेजीके स्थान पर हिन्दीको लाना कठिन ही नहीं असम्भव हो जायगा। अतः समय रहते हिन्दी-हितैषियोंको सावधान हो जाना चाहिये। हम स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन करना चाहते हैं कि मेवाड़की जनता तो तभी 'सम्मेलन' की कृतज्ञ और उपकृत होगी कि जब 'सम्मेलन' मेवाड़मेंसे अंग्रेजीका समूलोमूलन करनेमें समर्थ हो जाय। इस प्रकारके क्रियात्मक कार्यों हीसे सम्मेलनकी सार्थकता प्रमाणित सकती है, अन्यथा वर्षमें कहीं न कहीं मेला लगा देने मात्रसे क्या।

श्री म० गांधीजीका त्यागपत्र—

पिछले दिनों श्री० महात्मा गांधी जीने 'हिन्दी हिन्दुस्तानी' के प्रश्न पर सम्मेलनकी नीतिसे मतभेद होनेके कारण अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे त्यागपत्र दे दिया। इस त्यागपत्रको लेकर हिन्दी संसारमें—विशेषतः पत्रपत्रिका-जगत्में—एक अत्यन्त विक्षुब्ध-सा वातावरण उपस्थित हो गया है। कुछ सज्जन येनकेन प्रकारेण महात्माजीको पुनः सम्मेलनमें ले आनेके लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरे पक्ष वाले श्री महात्माजीका सम्मेलनमें रहना वाञ्छनीय एवं श्रेयस्कर समझते हुए भी उर्दूके चरणों पर राष्ट्रभाषा हिन्दीको बलि होते देखना नहीं चाहते। अब यह प्रश्न युक्ति सिद्धान्त व तर्क का विषय न रहकर वैयक्तिक अथवा सम्मान या अपमानका विषय बनता जा रहा है "टण्डनजी आदि हिन्दीके नेतागणोंने प्रस्तुत अवसर व उक्त विषयमें हिन्दी-संसारका ठीक प्रतिनिधित्व किया है या नहीं' यह प्रश्न अब 'टण्डनजी आदि महानुभाव बड़े हैं या गांधीजी?' इस रूपमें उठाया जा रहा है। किन्तु, स्मरण रहे कि युक्ति और तर्कका स्थान भावना और श्रद्धाको देकर साधारण जनताको कुछ समय तक भले ही भ्रममें रक्खा जा सके, परन्तु सत्य और वास्तविकताको अधिक समय तक दबाया नहीं जा सकता।

श्री ठाकुर श्रीनाथसिंहजीके इस कथनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि—'महान संस्थाएं महान् व्यक्तियोंके योगसे बनती हैं और सम्मेलन गांधीजी जैसे महान् व्यक्तियोंके संयोगसे ऊंचा उठा है।' किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि यदि गांधीजी स्वयं अपना हाथ खेंचना चाहें तो भी उन्हें ऐसा न करने दिया जाये।

दूसरी बात यह है कि 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' उर्दू साहित्य या हिन्दुस्तानीकी अभिवृद्धिके लिये स्थापित नही हुआ था। हिन्दी भाषाकी समुन्नति भी उसका उतना प्रमुख लक्ष्य नहीं, जितना कि हिन्दी-साहित्यकी समुन्नति। फिर भला उससे यह आशा करना कि उर्दू साहित्य व खरोष्ट्री (फारसी) लिपि की उन्नतिका भी वह बीड़ा उठाये, अपनी परीक्षाओंमें उर्दूको भी स्थान दे, दुराशा मात्र नहीं तो क्या? सम्मेलनने कभी उर्दूकी उन्नतिका विरोध नहीं किया, प्रत्युत उर्दूको भी हिन्दीकी एक शैली माना है। किन्तु इसका यह अभिप्राय तो नहीं कि वह उर्दूका भी प्रचार करे। हां, इतने पर भी वह अपनी परीक्षाओंमें उर्दूको स्थान दे सकता है, तब जबकि उर्दू परीक्षाओंमें भी हिन्दीको वैसा ही स्थान मिले। 'हिन्दुस्तानी'के पक्षपतियोंको चाहिए कि वे हिन्दी तथा उर्दूकी प्रतिनिधि संस्थाओंको समानरूपेण एक ही बात या एक ही सिद्धान्त माननेको

कहें। यदि उनमेंसे कोई किसी एक सामान्य सिद्धान्तको अस्वीकार कर दें तो दूसरेको भी बलात् उसे स्वीकार करनेको न कहा जाये। यदि 'अञ्जुमन तरक्की-ए-उर्दू' या अन्य उर्दू की संस्थायें हिन्दुस्तानी-प्रचारक नेताओंकी बात नहीं मानती—वे उर्दू प्रचारके साथ हिन्दीको समान स्थान देनेको प्रस्तुत नहीं होतीं—तो किसीको क्या अधिकार है कि हिन्दी वालोंको उर्दू ग्रहण करनेके लिये बाध्य करें। हिन्दी प्रेमी तो पहिले हीसे किसी समझौतेके लिये अथवा सौदेके लिये प्रस्तुत ही नहीं, अपितु आवश्यकतासे अधिक झुके हुए हैं। किन्तु समझौता या सौदा किया किससे जावे, कोई सामने भी तो आवे। यह कैसी विचित्र बात है कि एक पक्ष तो चुपचाप अपने मार्ग पर चलता रहे और दूसरा पक्ष अपने आप ही विरोधी पक्षकी बातें स्वीकार करता जावे और कहता जावे कि हमने समझौता कर लिया है। प्रयोजन यह है कि यदि 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक हिन्दी और उर्दू दोनोंका हित चाहते हैं तो उन्हें दोनों भाषाकी प्रतिनिधि संस्थाओंके नेताओंकी संयुक्त सभा बुलवाकर कुछ ऐसा निर्णय करायें कि जो दोनोंको समानरूपेण स्वीकार हो। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो चुपचाप बैठे रहें, 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू का अड़ंगा अड़ाकर हिन्दी-जगत्के नेताओंमें फूट डलवानेकी चेष्टाका प्रयत्न कदापि न करें।

श्रीनाथसिंहजीने एक बड़ी विचित्र बात लिख डाली है कि "जिस संस्थामें गांधीजीको स्थान नहीं वह महान् कैसे हो सकती है ? राष्ट्रीय कैसे हो सकती है ? और उसमें कोई भला आदमी कैसे रह सकता है ? यह प्रश्न हैं जो आज हमारे मनमें बार बार उठ रहे हैं।"

समझमें नहीं आता ठाकुर सा० जैसे विज्ञ व्यक्तिने ऐसे अस्तव्यस्त विचार कैसे व्यक्त कर दिये। राष्ट्रिय महासभा कांग्रेसके गांधीजी साधारण सदस्य भी नहीं फिर भी कांग्रेस महान् संस्था भी है और राष्ट्रिय भी। साथ ही नेहरूजी, राष्ट्रपति आजाद सरीखे सैकड़ों 'भले आदमी' अभी तक उसमें (कांग्रेसमें) विद्यमान हैं। यदि आप कहें कि 'चाहे गांधीजी कांग्रेसमें नहीं फिर भी उनकी सहानुभूति तो उसके साथ है।' तो इस प्रकार सम्मेलनके साथ भी तो महात्माजीकी पूरी सहानुभूति है। इसलिए ऐसे सज्जनोंको चाहिए कि सम्पूर्ण परिस्थितिपर शान्त हृदयसे विचार करें और श्री गांधीजीको सम्मेलनसे स्वतन्त्र रहकर इच्छानुसार स्वतन्त्र कार्य ही करने दें—ठीक उसी प्रकारसे जैसे कांग्रेसी देशभक्तोंने महात्माजीको कांग्रेससे पृथक् रह कर स्वेच्छापूर्वक कार्य करनेकी सुविधा दे दी।

कृष्णार्जुनयुद्ध—

आगे आप कृष्णार्जुन युद्ध होनेका भय प्रकट करते हैं, यह भी सर्वथा निराधार है। क्योंकि जब तक कोई तीसरा पक्ष आ कर व्यर्थ ही में अपनी टांग इस विषयमें नहीं अड़ावेगा तब तक ऐसी किसी स्थितिकी संभावना नहीं। और 'वादितोषन्याय' से क्षण भरके लिए मान लिया जाय कि कदाचित् ऐसी स्थिति आ भी गई तो भी उससे भयभीत होनेकी कोई बात नहीं। क्योंकि 'कृष्णार्जुन युद्ध' के कारण भगवान् अर्जुनसे रुष्ट नहीं हुए थे प्रत्युत सन्तुष्ट ही हुए थे। कर्तव्य पालन, सिद्धान्त रक्षाके लिए अर्जुनको भगवान्से भी युद्ध करना आवश्यक हो गया था। फलतः भगवान् कृष्ण तो तभी अर्जुनसे रुष्ट होते यदि वह उनसे युद्ध न करता, क्योंकि ऐसी स्थितिमें वे समझते कि अर्जुनने मेरी गीताका उपदेश ही भुला दिया। अस्तु।

अब अधिक कुछ न कहते हुए 'हिन्दुस्तानी' नेता गणोंसे हम इतना ही निवेदन करना चाहते हैं कि वे श्री गांधीजीको सम्मेलनसे पृथक् रहने देकर उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी साधना करने दें और यदि उन्हें हिन्दी और उर्दू का किसी भी रूपमें सहयोग अभीष्ट हो तो हिन्दी उर्दू दोनोंकी प्रधान संस्थाओंके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन बुलवाकर कोई सर्वमान्य सिद्धान्त निर्धारित करवायें। किन्तु ऐसी

चेष्टा कदापि न करें जिससे कि सम्मेलनका यह उदयपुर-अधिवेशन कांग्रेसका सूरत अधिवेशन बन जाय।

यह तो हुई सम्मेलनसे श्री गांधीजीके त्याग पत्र की बात। अब यहां राष्ट्रभाषास्वरूपके सम्बन्धमें भी हम अपने विचार पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करते हैं—

राष्ट्रभाषाका स्वरूप—

'राष्ट्रभाषा' इस पदके विश्लेषण करने पर कई प्रकारके अर्थ होंगे। उसका विस्तार करना यहां ठीक न होगा। संक्षेपमें यही कि इस पदमें दो शब्द हैं और दोनोंका या 'राष्ट्र भाषा' का सीधा अर्थ 'राष्ट्रकी बोली' है। बोली व्यक्ति भेदसे, देश भेदसे, समयके भेदसे अनन्त हो सकती है। किन्तु, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके साथ व्यवहार तभी कर सके।। जब कि दोनों एक दूसरेकी बोलीको भली प्रकार समझ सकते हों। इसी लिए सम्पूर्ण राष्ट्रकी यदि सुव्यवस्था करनी हो तो प्रत्येक राष्ट्रियको सम्पूर्ण राष्ट्रमें अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए सम्पूर्ण राष्ट्रके राष्ट्रिय जिस बोलीको पूर्णरूपसे जानते हों, उस बोलीको भली-भांति जानना ही होगा। अनन्त बोलियोंमें व्यवहार एक व्यक्ति कर नहीं सकता, अतः किसी एक भाषाका निश्चित रूपेण सम्पूर्ण राष्ट्रके लिए निर्माण या स्थापन करना परमावश्यक है। एक भाषाको सीखनेमें उतना परिश्रम नहीं, जितना कि दो चार या दश बीस भाषाओंको सीखने में पड़ता है। एतदर्थ प्रत्येक राष्ट्रमें प्रत्येक राष्ट्रियको राष्ट्र भाषाकी शिक्षा अत्यन्त आवश्यक हो जाती है, जिससे राष्ट्रके एक ओरसे दूसरे छोर तक किसी व्यक्तिके परिचयके लिए किसी भी व्यक्तिको कोई कठिनाई नहीं पड़ती। एक बार बनारसमें ढुण्ढी-राज गणेशके पास यात्रियोंकी भीड़में एक मद्रासी महिला बंगीय (बंगाली) वनितासे (स्त्रियोंमें स्त्रियां चलें इस विचारसे) अपनी प्रान्तीय भाषामें कहने लगी "राण्डी राण्डी" (आइये आइये) इस पर बंगालिनने क्रुद्ध होकर मुखसे "अमी राण्डी कि तुमी रांडी" (मैं रण्डी कि तू रण्डी) कहते हुए अपने हाथके पीतलके मोटे कमण्डलुसे नाक पर ऐसा प्रहार किया कि उस मद्रासी-महिलाकी नाकसे रुधिर चलने लगा। यह सारी दुर्दशा राष्ट्रभाषा ज्ञान न होनेके कारण हुई। ऐसी ही सहस्रों घटनाएं होती रहती हैं;

विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार है तो विदेशी भाषा का क्यों नहीं ?

राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता कितनी है यह तो आप समझ ही गये होंगे। अब राष्ट्रभाषाका स्वरूप क्या हो ? इसका निर्णय अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान भारतके अधिकतर राजनैतिक कर्णधार "हिन्दुस्तानी" नाम देकर एक विचित्र ही भाषाको भारतकी राष्ट्रभाषाका गौरवास्पद स्थान देनेके लिए कह रहे हैं। इस "हिन्दुस्तानी" भाषाके विषयमें हम यहां कुछ नहीं कहेंगे, कारण इस पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है। प्रायः सभी राष्ट्रविज्ञ इसकी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। यद्यपि भारत अन्यान्य सम्पत्तिकी दृष्टिसे तो निर्धन हो ही चुका है, तथापि वाङ्मयकी दृष्टिसे अभी वह निर्धन नहीं हुआ है। फिर भी पाश्चात्यशिक्षा-विभूषित (विदूषित) कुछ भारतीय उसे वाङ्मयसम्पत्तिसे भी वंचित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यह प्रयत्न यद्यपि अज्ञानसे ही हो रहा है, अतः यदि वे हमारी बातों पर शान्त चित्तसे विचार करेंगे तो उन्हें अपनी भूल अवश्य समझमें आयेगी।

श्रीराष्ट्रालोकमें इस सम्बन्धमें यों लिखा है—

वस्तु शक्योत्पत्ति राष्ट्रान्तरादायाति यत्र तत्।
नाशमाशु प्रयात्येव राष्ट्रमालस्य संयुतम् ॥

[जिस वस्तुकी उत्पत्तिका राष्ट्रमें सम्भवहै वही वस्तु राष्ट्रान्तरसे लाई जाय या आती हो तो वह राष्ट्र आलसी तथा अकर्मण्य हो कर शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।]

विचार करनेसे बात ठीक ही ज्ञात होती है। इसके लिये सम्पूर्ण विश्वमें मतभेदकी सम्भावना नहीं।

महात्मा गांधीजीका नमक सत्याग्रह भी इसी बात पर हुआ था। भारतमें नमक पर्याप्त मात्रामें उत्पन्न होते हुए भी हठात् भारतके बाहरसे यहां नमक आया करता था, तब महात्माजीने भारतको निर्धन होनेकी बात सोचकर नमक सत्याग्रह किया था। हम भी उन राजनैतिक नेताओंसे सरलता पूर्वक पूछते हैं कि भारतीय उर्वरभूमिमें अन्यान्य वस्तुओंकी भांति वाङ्मय उत्पन्न करनेकी शक्ति अब क्षीण हो चुकी है क्या? अथवा जैसे मोटर, रेलवे इञ्जिन विमान आदि भारतमें निर्मित नहीं हो सकते वैसे ही क्या भाषा पर भी शासकोंका प्रतिबन्ध है?

बड़े आश्चर्य और दुःखकी बात है कि राजनैतिक दल इस विषयमें भारतकी दरिद्रताको ध्यानमें ही नहीं लाता। यदि ऐसा नहीं तो फिर स्वदेशी विदेशी का प्रश्न क्यों उठाया जाता है? इसी कारणन, कि भारतमें विदेशी वस्तुओंके आनेसे भारत निर्धन हो जायगा? तो फिर विदेशी शब्दोंसे क्या भारत निर्धन नहीं होगा? जो लोग यह कहते हैं कि विदेशी शब्दोंसे राष्ट्रभाषाकी समृद्धि बढ़ेगी, वे यह क्यों नहीं मानते कि विदेशी वस्तुओंके यहां आनेसे भारत की समृद्धि बढ़ जायेगी? उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि विदेशी वस्तुओंको भारतीय जैसा आकार प्रकारमें समान बनाकर भारतमें लाने पर भी जिस प्रकार भारत निर्धन होता गया; उसी प्रकार विदेशी शब्दोंको भारतीय ढांचेसे ढक कर भारतमें लाने पर भी भारतकी राष्ट्रभाषा समृद्ध होनेके स्थानमें निर्धन ही हो जायेगी। 'हिन्दुस्तानी' उसी प्रकारकी भाषा है जिसमें अधिकतर अभारतीय शब्दोंकी ही भरमार है।

'हिन्दुस्तानी' क्यों नहीं?—

राष्ट्रभाषा शिक्षणीयाऽवश्यं राष्ट्रहितैषिणा।
स्थविरेणापि सा पूर्णं हितं तस्य विधास्यति॥

[राष्ट्रहितैषी वृद्ध हो जाने पर भी राष्ट्रभाषा अवश्य सीखे। कारण उसकी अपनी राष्ट्रभाषा (बुढ़ापे में सीखी हुई भी) उसका पूर्ण हितसाधन कर सकती है।] श्रीराष्ट्रालोककी इस कारिकाके श्रीराष्ट्रसञ्जीवन भाष्यमें यह लिखा है कि—

'राष्ट्रभाषा कौनसी होनी चाहिए, इसका निर्णय करनेके लिए सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि उस राष्ट्रमें कितनी भाषाओंका व्यवहार हो रहा है। तथा किस किस भाषासे कितने कितने लोग व्यवहार कर रहे हैं। फिर यह देखना कि सबसे अधिक संख्या किस भाषासे व्यवहार करने वालोंकी है। हां, इस बातको भी न भूलना चाहिए कि राष्ट्रके साथ चारों सम्बन्ध जिन पुरुषोंके हैं उनमें बहुसम्मत जो भी धर्मभाषा हो उसका विरोध करने वाली राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। यदि धर्मभाषा ही वहां राष्ट्रभाषा हो सकती हो तो सोनेमें सुगन्ध है।'

राष्ट्रमें मनुष्येत्तर प्राणी व्यक्तभाषासे तो सम्बन्ध ही नहीं रखते, अतः राष्ट्रभाषाका प्रश्न केवल मनुष्योंके लिए ही है। मनुष्योंमें विश्व-हित राष्ट्रवादी ही सोच सकते हैं। राष्ट्रवादी अराष्ट्रिय नहीं हो सकता। राष्ट्रके साथ चारों सम्बन्ध हुए बिना कोई व्यक्ति उस राष्ट्रका राष्ट्रिय नहीं कहला सकता। राष्ट्र पर स्वत्व उत्पन्न हुए बिना राष्ट्रकल्याण भावना हृदयमें जागृत नहीं हो सकती। राष्ट्र पर स्वत्व भी तभी हो सकता है जबकि राष्ट्रके साथ उस व्यक्तिके चारों सम्बन्ध हों, इन बातोंको श्रीराष्ट्रालोकमें यों लिखा है—

पितृपुण्यभुवं राष्ट्रं यन्मन्यन्ते च ये नराः।
तेषां नराणां राष्ट्रं तत् स्वीयं भवति सर्वथा॥
पितृभूत्वं पुण्यभूत्वं द्वयं यस्य न विद्यते।
तस्य स्वत्वं तत्र राष्ट्रे भवितुं न किलाऽर्हति॥

[जिस राष्ट्रको जो लोग सब प्रकारसे पितृपुण्य भू मानते हैं उन लोगोंका उस राष्ट्र पर सभी प्रकारसे अपनापन हो सकता है। जिस व्यक्तिका दोनों प्रकार

का पितृभूत्व तथा दोनों प्रकारका पुण्यभूत्व जिस राष्ट्रमें नहीं होता उस व्यक्तिका उस राष्ट्रमें स्वत्व नहीं हो सकता]

पितृभू सम्बन्धके दो प्रकारके नाम प्राकृत तथा अप्राकृत व पुण्यभू सम्बन्धके दोनों प्रकारोंके नाम प्रधान तथा अप्रधान श्रीराष्ट्रसञ्जीवन भाष्यमें दिये हुए हैं। राष्ट्रका वास्तविक हित राज्यवादी संघवादी तथा व्यक्तिवादी—इन तीनोंमेंसे एक भी नहीं सोच सकता। राष्ट्रवादियोंके मतमें भारतकी राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो संस्कृतसे विरोध न रखती हो, तथा अभारतीय शब्दोंसे रहित हो और सरलतासे भारतका राष्ट्रिय बहुजन समाज जिसे समझ सकता हो। इसमें किसी भी विदेशी अथवा विधर्मीको ननु-नच करनेका अधिकार ही नहीं प्राप्त होता, कारण वह राष्ट्रवादी नहीं है। राष्ट्रवादी अपने आपको राष्ट्रका पुत्र मानता है, न कि पति, पुत्रत्वकी भावनामें भोक्तृत्वकी कुभावना कभी उत्पन्न नहीं हो सकती। भोक्तृत्वकी कुभावना रखने वाले राष्ट्रिय नहीं हो सकते।

वर्तमान समयमें ये सम्पूर्ण बातें हिन्दीमें आती हैं, अतः हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, हिन्दुस्तानी नहीं, अस्तु।

अब यह बतानेकी आवश्यतता नहीं कि लिपि कौनसी हो। कारण राष्ट्रभाषाकी प्रतिनिधि भाषा लिपि भी देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं, क्योंकि राष्ट्रलिपि होनेके सम्पूर्ण गुण भारतमें देवनागरीमें ही हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होनेसे भारतकी किसी भी प्रान्तीय भाषाको हानि पहुँचनेकी तिल मात्र भी सम्भावना नहीं, अपि तु उनकी साहित्य श्री समृद्धि ही कर सकती है। अतः हम राष्ट्रहितैषियोंसे निवेदन करते हैं कि केवल हिन्दी हीको राष्ट्रभाषाके रूपमें यथापूर्व स्वीकार करते रहें।

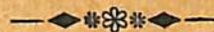


पीछोला सरोवरस्थित उदयपुरका सुरम्य जगमन्दिर राज

दैवज्ञकी दृष्टिमें संसारचक्र

शनि राहु मंगल और युद्धोत्तरकालीन संसार

परमाणु बम और उसका भविष्य



नैपोलियनकी पराजयके बाद १८१५ में यूरोपके सामने आर्थिक और राजनीतिक पुनर्व्यवस्थाका प्रश्न था। नैपोलियनकी पराजयके समय शनि और मंगलका साथ था। इनको और किसी भी शुभ ग्रहका साहचर्य प्राप्त नहीं था। इनके मेलके फलस्वरूप नैपोलियनकी पराजयके बादके यूरोपमें यथापूर्व स्थिति कायम रक्खी गई। सिंहासनों पर पुराने राजवंश स्थापित किये गए। अक्तूबर १९४५ में शनि और मंगल पुनः कर्क राशिमें मिल रहे हैं। शनि स्वतः क्रान्तिकारी है और यदि इसकी किरणें राहुके साथ मिल जाय तो यह विशेष रूपसे क्रान्तिकारी होता है। परन्तु जब मंगल भी इनके साथ होता है तो फल क्रान्ति, नाश और अव्यवस्था होता है। १८१५ में यूरोपके भावी युद्धोंका बीज वपन किया गया। इतिहास बताता है कि १८१५ से १८२५ के समयमें जब शनि क्षीण हो रहा था तब इङ्गलैण्डने यूरोपकी एकताके प्रयत्नोंको विफल कर दिया। आधुनिक युगमें भी शक्तियोंके विघटनका दृश्य दिखाई दिया, जब १९२० में संयुक्त राष्ट्र अमरीकाने राष्ट्र संघमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। राष्ट्रसंघकी स्थापना उस समय हुई जब शनि सिंह राशिमें था।

राष्ट्रसंघका उद्देश्य शान्तिकी स्थापना करना, शान्ति-भंग करने वालों पर कड़ी दृष्टि रखना, यूरोपकी यथापूर्व स्थितिको बनाये रखनेका ध्यान रखना और जनतन्त्रको बढ़ाना था। पर ये मनोरथ पूर्ण नहीं हुए, क्योंकि १—द्विर्द्वादश ग्रहोंको थी। २—चन्द्रमा पर बुरा प्रभाव, जोकि अपकर्तृयोग द्वारा उसपर पड़ रहा था। चन्द्रमा राहु और शनिके बीचमें था और जब क्रूर ग्रह मङ्गलका साथ हो, तो इसका फल क्या होगा? राष्ट्रसंघने मानवकी सहज बुद्धिको रोकनेकी चेष्टा की।

राष्ट्रसंघकी मारक दशा मङ्गलका काल आरम्भ होनेके साथ आरम्भ होती है और 'चीनी दुघटना'के समय जब जापानने मित्रराष्ट्रीय कानूनको भंग किया तो राष्ट्रसंघ नपुंसक सिद्ध हुआ और मंगल दशाके अन्त होनेसे पहले ही राष्ट्रसंघका अन्त हो गया।

इसलिए राजनीतिज्ञों और शासकोंको ग्रहों और ज्योतिष विज्ञानकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि सभ्य राष्ट्र एक दिन पहले मौसम बतानेके लिए वायुविज्ञान विभाग पर लाखों रुपये व्यय कर सकते हैं तो उनको वर्षों पहलेसे ऋतु और अन्य घटित होने वाली अवस्थाओंकी सूचना देने वाले ज्योतिष विभागकी स्थापना अवश्य करनी चाहिए।

राहु मंगल और शनि सामूहिक विनाश करने वाले ग्रह हैं। शनि अभी कर्क में आया है। ७ नवम्बर १९४५ से इसका पीछे हटना प्रारम्भ होगा। और मार्च १९४६ तक यह पीछे हटता रहेगा। मईसे नवम्बर तक इसने लगभग १७ अंश पार किये हैं। जबकि उसको यह दूरी १५-१६ मासमें

पूरी करनी चाहिए थी। यह शनिका अति चार कर्कराशि में हो रहा है, जोकि उत्तरीय और पश्चिमी अमरीका स्काटलैंड, हालैंड, कांस्टेन्टी नोपल, बेनिस, ट्युनिस और मेञ्चेस्टरका अधिपति है। इन स्थानोंमें आकस्मिक राजनीतिक भावनाका विस्फोट होना सम्भव है।

इसी समय राहु वृष राशिमें प्रवेश कर रहा है। वृष इंगलैंडके राज्यका एक दूसरा चिह्न है। दूसरे घरमें होना नेताओंकी बुद्धि, राष्ट्रीय सम्पत्ति और मैत्री आदिको सूचि। करता है, जबकि ४ था घर भूमिके स्वार्थको सूचित करता है। चूंकि शनि का अतिचार ४ थे घरमें होता है और राहुका संक्रमण दूसरे घरमें होता हैं, इसलिए इंगलैंडमें सब कुछ भला ही भला न होगा। शनि जनमतका ग्रह है, इसलिए जब शनि अतिचार और भीत अवस्था में है तब इंगलैंड और अमरीकाके राजनीतिज्ञोंका राजनीतिक भूलें करना सम्भव है। जनतंत्रके नाम पर की गई भूलोंके लिए उनको बादमें पछताना पड़ेगा। इंगलैंड और अमरीका अगले मासोंमें इस बातको भूल जावेंगे कि लड़ाई किस उद्देश्यसे लड़ी जा रही थी। अक्तूबर १६४५ के तीसरे सप्ताहमें कर्कके प्रारम्भमें मंगल और शनिका फिर मेल हो रहा है। नेपोलियन युद्धके आरम्भमें ऐसा ही योग आया था। फलतः जापानमें फोजी शासन स्थापित होगा, भारी कर लगेंगे और जापानी गवर्नमेण्टको कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। इंगलैंडके अन्दर सम्भव है विदेशी नीति पर सरकारकी हार हो और खनकों और किसानोंके लिए संकट उत्पन्न हो। भारतकी राजनीतिक स्थिति अशान्त रहेगी और राजनीतिक कार्यक्रम और कथन दूरदर्शिता और दूरदृष्टिसे शून्य होंगे। शनिके अतिचारमें होनेसे विशेषतः ११ वें होनेके कारण भारत विशेषतः और एशियाई अधीन देश अधिक स्वतन्त्रता देनेकी मांग करेंगे और यह सम्भव है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट कुछ सत्ता भारतीय जनताको हस्तान्तरित करे। ब्रिटिश गवर्नमेंट मजदूर गवर्नमेंट भी साम्राज्यको जैसेका तैसा बनाये रखनेकी चेष्टा करेगी। अन्तर्राष्ट्रिय विचारों और निर्णयोंमें रूसकी आवाज ऊंची रहेगी, भारतमें दो वर्ष और आर्थिक अवस्था खराब रहेगी। नेताओं और सरकारको सावधान रहना चाहिए। सुदूर पूर्वके लोगोंकी जागृति के लिए शनिकी आरोह दशा उत्तरदायी है।

पौलैंड आदि देशोंकी सीमाएं ज्योतिषके अनुसार निश्चित की जानी चाहिए।

शनि जब तक अतिचारमें है, तब तक विश्वके भविष्यका निश्चय न करना चाहिए।

परमाणु बम और उसका भविष्य

मनुष्यको पशुसे भिन्न करने वाली उसकी मानव बुद्धि व मस्तिष्ककी प्रतिभा है। परन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य व दुःखकी बात है कि मनुष्यने अपनी उस श्रेष्ठ प्रतिभाका प्रयोग सबसे अधिक विध्वंसके कार्यों के लिये ही किया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिंसक पशु तो आज भी अपने साधारण से शारीरिक बलसे दूसरेको चोट पहुंचाता है। परन्तु मनुष्य अपनी सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रतिभाका प्रयोग शत्रु के विनाशके लिए करता है। उसकी उच्च गणित, उच्च भौतिक विज्ञान या रसायनशास्त्र तथा अन्य कलाओंका सम्पूर्ण ज्ञान जिसके द्वारा मनुष्यने आज अनन्त शक्ति प्राप्त कर ली है विध्वंस और विनाशके लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य विज्ञानकी सहायतासे और भी अधिक विध्वंसक हो गया हैं। परन्तु दार्शनिक दृष्टिसे हम चाहे कितना ही विचार करें यह संसार तो सांसारिक नियमोंसे ही चलेगा। जब तक संसारमें 'जिस की लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त विद्यमान है, तब तक विज्ञानका विध्वंसके लिये प्रयोग होता ही रहेगा। विध्वंसके लिए सबसे नवीन आविष्कार 'परमाणु बम' है। जापान पर इस बमके गिरनेके समाचारसे सारा संसार स्तब्ध रह गया है। अब प्रत्येक राष्ट्रको सदा यह भय रह सकता है कि हजारों मीलसे छोड़ा गया कोई वायुयान दिल्ली और कलकत्ते जैसे बड़े २ नगरोंको परमाणु बम द्वारा कभी नष्ट भ्रष्ट न

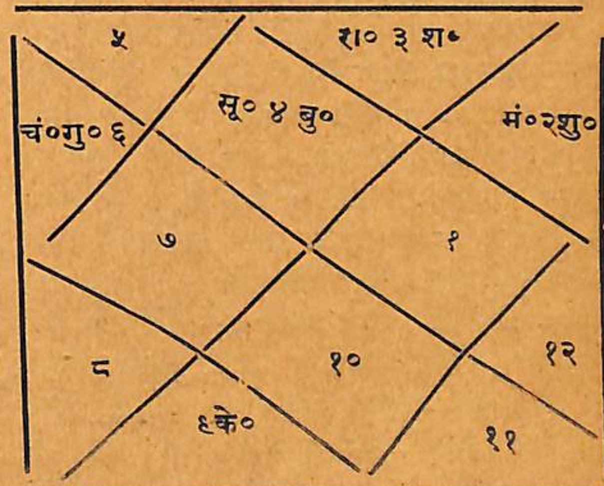
कर दे। भले ही परमाणु बमोंसे कितने ही नगर नष्ट भ्रष्ट क्यों न हो जायें, पृथ्वी अपने केन्द्र ही पर स्थिर रहेगी। परमाणु बमोंसे पृथ्वी अपने स्थानसे विचलित नहीं हो सकती। अमेरिकामें इन्हीं बमों के सम्भावित आक्रमणोंसे रक्षाके लिए भू-गर्भ नगरोंके निर्माणकी कल्पना की जाने लगी है। इसका अर्थ यह है कि अभी विज्ञानसे विध्वंसका कार्य बढ़ता जायेगा।

प्रमुख वैज्ञानिकोंके कथनानुसार परमाणु किसी वस्तुका अत्यन्त सूक्ष्मतम खण्ड है। इस परमाणुमें भी केन्द्रके चारों ओर इलकट्रोन अत्यन्त तीव्र गति से—सैंकड़ों मील प्रतिक्षणकी चालसे घूम रहे हैं। रदरफोर्ड और सोडीने यह पता लगाया था कि रेडियोके द्वारा इस परमाणुको भी खण्डित किया जा सकता है। इसके खंडित होते ही इसमें से अत्यन्त शक्ति निकलती है, और इसी शक्तिका प्रयोग विध्वंसके लिए किया जाता है।

यदि निर्जीव परमाणुमें इतनी शक्ति विद्यमान है तो इस मानव प्राणीके सजीव परमाणुमें कितनी शक्ति निहित होगी। अभी विज्ञानको उस अगाध शक्तिका पता लगाना है, इस मानव शरीरमें लाखों परमाणुओंके कारण विद्यमान हैं। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"। विश्वके राशि-चक्रका प्रतिनिधि यह शरीर भी है। इसीलिए आकाशमें होने वाले परिवर्तनोंका मानव शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। और यही फलित ज्योतिषका आधार है। मनुष्यकी दृढ़ संकल्प शक्तिके प्रभावको भी हम इसलिये अस्वीकार नहीं कर सकते। योगकी अद्भुत व चमत्कारी सिद्धियोंका भी यही रहस्य है। योगी अपने दृढ़ संकल्पसे अपने शरीरके परमाणुओंकी चमत्कार पूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेता है।

हमारे प्राचीन महर्षियोंको परमाणु बम जैसे भयंकर अस्त्रका ज्ञान अवश्य था। आग्नेयास्त्रका वर्णन ऐसे ही भयंकर विध्वंसकी याद दिलाता है। प्राचीन शास्त्रोंमें 'महायन्त्राणि वर्जयेत्' कह करके ऐसे भीषण शस्त्रोंका प्रयोग न करनेकी आज्ञाएं दी गई हैं। एक ऐतिहासिक (फिलास्ट्राप्स) के कथनानुसार सिकन्दरको भारतीयोंके आग्नेयास्त्रके प्रयोगके कारण हार खानी पड़ी थी, हेलहेड लिखता है—'भारतीयोंके आग्नेयास्त्रकी ज्वाला कई भीषण ज्वालाओंमें विभक्त हो जाती थी व उनमेंसे प्रत्येक ज्वाला बुझाये नहीं बुझती। किन्तु अब इस प्रकार के आग्नेयास्त्र नहीं मिलते। उटेन्स लिखतर है कि 'सिकन्दरको हराने वाले आर्य प्रारम्भमें शत्रुको कुछ नहीं कहते। परन्तु जब शत्रु पास आजाता है तब वे विद्युत्के समान प्रकाश व गर्जना करते हुए अस्त्र फैंकते हैं। इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन आर्य परमाणुकी महान् शक्तिसे परिचित थे। विभिन्न धातुओंसे सोना बनाना, तथा अन्य चमत्कार आज भी तन्त्रोंमें पढ़े जा सकते हैं। यह और बात है कि हम अपने पूर्वजोंको मूर्ख समझ कर उनकी अवहेलना करें।

अब हम ज्योतिष शास्त्रानुसार परमाणु बमके भविष्यकी चर्चा करेंगे। प्रेस समाचारोंके अनुसार मानव जातिके लिये परमाणु युगका जन्म १६ जुलाई १६४५ को ५ बजकर ३० मिनट प्रातःकाल (स्टैण्डर्ड-टाइम) अवअल्बुकर्कसे १२० मील दक्षिण पूर्वमें आर्मागोर्डोके हवाई अड्डे पर हुआ था। उस समय ग्रहोंकी स्थिति निम्नलिखित थी—



लग्न कर्क है और वर्गोत्तममें है। विनाश और विदाहका स्वामी मंगल ११ वें घरमें है। अर्थात् विध्वंसका पूर्ण बल रहेगा। मंगलकी दशाका प्रभाव २० अगस्त तक था। यह आश्चर्यकी बात है कि हिरोशिमा पर मंगल दशाकी समाप्तिके साथ ही बम गिरा। क्योंकि मंगल ११ वें में है, इसलिये बम गिरानेका उद्देश्य भी एकदम सफल हो गया। अमेरिकाकी राशि मिथुनमें शनि राहुकी स्थिति है। यह उपर्युक्त कुण्डलीमें विनाशका योग हो गया है। इसका अर्थ यह है कि सप्तमेश अष्टमेश शनिकी दशामें अमेरिकाको परमाणु बमके प्रयोग स्वरूप पर्याप्त हानि उठानी पड़ेगी। चन्द्रमा व गुरुका संयोग यह स्पष्ट करता है कि अन्तमें संस्कृति और मनुष्यताकी जीत होगी। नवांशमें योग कुछ अशुभ है। आठवें घर पर मंगल व राहुका अधिकार है, शनिकी उसपर दृष्टि है। अतः जब एक साथ बुराइयां जोर पकड़ जाती हैं तभी उनका विनाश प्रारम्भ होता है। शनिकी दशा सन् १९७९ में प्रारम्भ होगी। तब तक परमाणु शक्तिके दुष्प्रभाव भी दूर हो जाएंगे—श्री बी० वी० रमन के सौजन्यसे

ग्रस्तास्त खग्रास चन्द्रग्रहण

और उसका संसार पर प्रभाव

[ले०— श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी]



सं० २००२ वि० मार्गशीर्ष शुक्ला १५ बुधवार तदनुसार ता० १९ दिसम्बर १९४५ ई०को भारतमें ग्रस्तास्त पूर्णग्रस्त (खग्रास) चन्द्रग्रहण होगा। यह चन्द्रग्रहण बुधवारको प्रातः (सूर्योदयसे पूर्व) परिवर्द्धित नये स्टेण्डर्ड टाइमसे ७ बज कर ९ मिनट पर स्पर्श (आरम्भ) होगा। इस टाइमसे पहले जहां चन्द्रास्त हो जायगा वहां (पूर्वीय बंगाल शिलांग ढाका आसाम ब्रह्मदेश आदि में) यह ग्रहण दिखाई नहीं देगा। अतः उक्त प्रान्तोंमें इस ग्रहणके वेधादि मानने की आवश्यकता नहीं है। इस दिन ता० १९ दिसम्बरको प्रातः नये स्टेण्डर्ड टाइमसे घं० ८ मि० ९ पर दिल्लीमें चन्द्रास्त होगा, अतः सूर्योदयसे पहले स्पर्श घं० ७ मि० ९से चन्द्रास्त घं० ८ मि० ९ तक (एक घण्टे तक) ग्रहण लगा हुआ दिखाई देगा और दिल्ली पंजाब काश्मीर सिन्ध गुजरात बम्बई युक्तप्रान्त राजपूतानामें सम्मीलन होनेसे (पूरा चन्द्रबिम्ब ढकनेसे) कुछ पहले ही चन्द्र अस्त हो जावेगा। सूक्ष्म दृश्यगणितानुसार नवीन परिवर्द्धित स्टेण्डर्ड टाइमके अनुसार इस ग्रहणका स्पर्शादि काल निम्नलिखित है—

अर्धरात्रोत्तर स्टेण्डर्ड टाइम	घं०	मि०
स्पर्श (ग्रहण आरम्भ)	७	९
सम्मीलन	८	१३
मध्य	८	५३
उन्मीलन	९	३३
मोक्ष	१०	३७

सर्वग्रहण (पर्वकाल) ३ घण्टे २८ मिनट का है।

यह स्पर्शादिका समय किसी एक स्थानका नहीं है, अपितु नवीन स्टेण्डर्ड टाइमके अनुसार सम्पूर्ण भारतवर्षमें ऊपर लिखे समय पर ही स्पर्श होता दिखाई देगा। यदि आज कलका नवीन टाइम बदल कर (घड़ियां एक घण्टा पीछे करके) पुराना स्टेण्डर्ड टाइम ही इस ग्रहणसे पहले भारतमें पुनः प्रचारित कर दिया जाये तो उक्त स्पर्शादि कालमेंसे भी एक घण्टा न्यून कर देना चाहिये। घड़ी रेडियो टाइम वा स्थानीय पोस्ट-आफिससे ठीक मिली हुई होना आवश्यक है। छाद्य-छादक-कक्षा भेद न होनेके

कारण चन्द्रग्रहणका स्वरूप (ग्रास) सर्वत्र एक जैसा ही दिखाई देता है।※

वेध वा सूतक

इस चन्द्रग्रहणका वेध ता० १८ दिसम्बर मार्गशीर्ष शु० १४ मङ्गलवारको सायंकाल (रात्रि) घं० १० मि० ६से आरम्भ होगा और ग्रस्तास्त होनेके कारण बाल वृद्ध रोगी और अशक्त मनुष्योंके अतिरिक्त धर्मप्राण जनताको दूसरे दिन ता० १६ बुधवारको दिन भर व्रत रखकर सायंकाल चन्द्रदर्शन कर स्नान करके भोजन करना चाहिए, ऐसा धर्मशास्त्रका विधान है। बुधवारको दिनमें सन्ध्या, हवन, देवपूजनादि करनेमें कोई बाधा नहीं है।

राशियोंको शुभाशुभ

यह ग्रहण मृगशीर्ष नक्षत्र और मिथुन, कर्क, वृश्चिक, मीन राशिवालोंको दुःख शोक चिन्तादि अशुभ फल कारक है। वृषभ, तुला, धनुः, कुम्भ राशिवालोंको मध्यम और मेष सिंह कन्या मकर राशिवालोंको श्रेष्ठ है। जिन राशियोंको यह ग्रहण अशुभ है वे लोग और गर्भवती स्त्रियां ग्रहणका दर्शन न करें। उन्हें कल्याणार्थ भगवद्‌भजन और यथा शक्ति दान हवनादि अवश्य करना चाहिए।

ग्रहणका संसार पर प्रभाव

यह चन्द्रग्रहण संसारके लिए अनिष्ट सूचक है। जिस प्रकार यह भारतमें ग्रस्तास्त होगा, उसी प्रकार यही ग्रहण सुदूर पश्चिमस्थ देशों (अमरिका यूरोपादि) में ग्रस्तोदय होगा। ग्रस्तास्त ग्रस्तोदय ग्रहणका फल है—दुर्भिक्ष, प्रजानाश, राजाओंको कष्ट "ग्रस्तोदितौ च ग्रस्तास्तौ धान्य भूपाल नाशकौ" के अनुसार यूरोप के अनेक प्रान्तोंमें और सुदूर पूर्वके जापानादि छोटे बड़े द्वीप समूहोंमें भीषण अन्न सङ्कट और भांति भांतिके उत्पातोंसे प्रजा त्रस्त हो उठेगी। भारतके लिए भी इस ग्रहणका फल अच्छा न होगा। ग्रहण मध्यकालीन धनुर्लग्नसे अष्टममें शनि मंगलकी युति और षष्ठेशलाभेश शुक्रका राज्येश सप्तमेश व्यापाराधिपति बुधके साथ व्ययमें चले जाना उत्पात और अशान्तिके द्योतक हैं। भारतकी आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्या शोचनीय रहेगी। गुरु बुध शुक्रके कारण वाग्युद्ध वादविवाद राष्ट्रिय और अराष्ट्रिय दलोंमें अधिक होंगे। साम्प्रदायिक संघर्ष कहीं २ तीव्र रूप धारण करेगा। पंजाब काश्मीर सिन्ध गुजरात काठियावाड़ महाराष्ट्र और बंगालमें रोग दुर्भिक्ष वायुप्रकोप वर्षा ओले हिमपातादि उत्पातोंसे फसलको हानि पहुंचे और अन्न वस्त्रादिके नानाविध कष्टोंसे प्रजा पीड़ित रहे। जापान जर्मनी और यूरोपके कई प्रान्तोंमें भीषण अन्न संकट रोग महामारी आदिसे प्रजाका संहार हो। कहीं २ भूकम्प और झंझावातसे भी बहुत हानि होगी। श्रमजीवियों और पूंजीपतियोंका संघर्ष बढ़े। राजाओं सामन्तों जागीरदारों धनाढ्य सम्पन्न व्यक्तियों उत्तम स्त्रियों, कलाकुशलों, यमुनाके निकट वर्ति प्रदेशोंमें रहनेवाले मनुष्यों और वस्त्र फल पुष्प मोती आदि रत्न और सुगन्धित वस्तुओं पर इस ग्रहणका बुरा प्रभाव पड़ेगा। धान्य, धातु, ताम्बा, सोना, लोहा तथा उनके पदार्थ चावल, शक्कर, रस पदार्थ तेज होवें। इस ग्रहणका प्रभाव ६ मास तक होगा। इस चन्द्रग्रहणसे एक सप्ताहके अन्दर २ जिन प्रान्तोंमें वर्षा हो जावेगी उन प्रान्तोंमें ग्रहणजन्य अनिष्ट फल अधिक नहीं होगा।

※इस सम्बन्धमें विशेष निर्णय अर्थात् चन्द्र-ग्रहण कैसे कब और क्यों होता है? चन्द्रमा ग्रहण और राहु क्या वस्तु है? इनसे हमारा क्या सम्बन्ध है? ग्रहणमें दान जपादिका विशेष महात्म्य और भोजनादिका निषेध क्यों है? इत्यादि कई महत्त्वपूर्ण ज्ञातव्य बातोंका शास्त्रीय और वैज्ञानिक रीतिसे सप्रमाण विस्तृत विवेचन हम 'श्रीस्वाध्याय'के प्रथम वर्षके दूसरे अङ्क (हेमन्ताङ्क)में कर चुके हैं। जो सज्जन अपनी उक्त जिज्ञासाएं पूर्ण करना चाहें वे कार्यालयसे मंगवाकर उक्त अङ्कमें देख सकते हैं। इस अङ्कका मूल्य अब २॥) रु० है। इस अङ्क सहित प्रथमवर्षकी पूरी फाइलका मूल्य ६) रु० है।

व्यापारिक तेजी मन्दी और ज्योतिष

[लेखक—श्री० प्रो० बी० सी० महता म्युनिस्पल कमिश्नर]

जहां तक मेरा अनुमान है यह लेख पाठकोंको १० अक्टूबर बाद ही मिलेगा और यही समय व्यापारियोंको व्यापार प्रारम्भ करने का है। ता० १२ अक्टूबरको शुक्र अपनी नीच राशिमें प्रवेश करेगा, तथा ता० १३ को बृहस्पति उदय होंगे, ये दोनों योग चांदी सोनेमें जनरल मन्दी लाईन पैदा करते हैं, अतः ता० १०-११ अक्टूबरको चांदी सोनेकी मन्दी लगानी चाहिए। ता० १८ तक अच्छी मन्दी आ सकती है। परन्तु यह योग रुईके लिए मंदी कारक नहीं है, रुई प्रायः तेज जावेगी। ता० १६-२० को तेजीके रिएक्शन चांदी सोनेमें आ सकते हैं और फिर ता० २२ से ही पुनः मंदी आनेकी सम्भावना है। ता० २२ से २७ तक चांदी सोना और रुई तीनों वस्तुओंमें मन्दी आनेकी सम्भावना है।

तारीख ३० अक्टूबरसे चांदी सोना और रुईका बाजार तेजीकी ओर जावेगा। यह तेजी लगभग ३ नवम्बर तक रहेगी, फिर ता० ४ को अनायास मंदी आवेगी जो दो एक दिन रहेगी। ता० ५ से फिर वापिस चांदी सोनेमें तेजी चलेगी, जो ता० ७ तक तेजी रह कर बाजार मुड़ जावेगा। और फिर इकतरफी मन्दीकी सम्भावना है। बीच-बीचमें छोटे तेजीके रिएक्शन चाहे आते रहे परन्तु लाइन मंदी की ही बन रही है। रुईका बाजार ता० ७ से ही भड़क जावेगा। अतः ता० ७/८ नवम्बरसे तेजीका व्यापार रुईका करना चाहिए। ता० २३ नवम्बर तक चांदी सोनीकी रुख मन्दीकी है। बीच-बीचमें तेजीके रिएक्शनकी तारीखें ६, १२, १७ नवम्बर है।

दिसम्बरका प्रारम्भ चांदी सोनेमें तेजी बताता है, क्योंकि वृश्चिक राशिमें शुक्र और बुध शामिल रहेंगे। यह तेजी ता० ४ तक बराबर चलेगी और इन चार दिनोंमें चांदी सोनेमें अच्छी तेजीकी सम्भावना है।

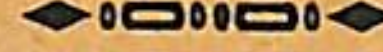
तारीख ५ दिसम्बरको मंगल बक्री होता है; यह बाजारको तेज करके मंदीकी ओर ले जावेगा। ता० ७ को अच्छी मंदीकी सम्भावना है। दिसम्बरमें दूसरे सप्ताहमें चांदी सोनेमें दुतरफी घटा-बढ़ी चलेगी, परन्तु जोर मन्दीका ही रहेगा। अतः हर उछालेमें बेच कर मंदी आने पर नफा खानेका ध्यान रखना चाहिए।

रुईके लिए यह महीना अत्यन्त महत्त्वका है; क्योंकि ता० ८ को शुक्रका trine त्रिकोण मङ्गलसे होता है, तथा बृहस्पति भी तुला राशिमें प्रवेश होता है अतः यह रुईके मारकेटमें तेजी ट्रेण्ड पैदा करता है और ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे बाजार काफी तेज हो जायेगा। एतदर्थ रुईकी तेजी ता० ८ दिसम्बर तक अवश्य लाभ देगी।

ता० १६ दिसम्बरको एक चन्द्रग्रहण मिथुन राशि पर होगा। उस दिन वार भी मंगल है, यह योग रुईकी अच्छी तेजीका, तथा चांदी सोनेकी मंदीका द्योतक है। ता० २३ दिसम्बरको राहु सायन मिथुनमें प्रवेश होता है वहां पर हरशल भी पहले से विद्यमान है। यह योग चांदी सोनेमें भारी घटा-बढ़ीका द्योतक है। यदि उस दिन मन्दी प्रारम्भ हो गई तो बहुत अच्छी मन्दी आ सकती है और तेजी आरम्भ हुई तो बहुत अच्छी तेजी, किन्तु विशेष सम्भावना मन्दीकी है, हर तेजीके रिएक्शन बराबर आते रहेंगे। ता० २५, २८, २६ तेजीकी खास तारीखें नजर आती हैं। आगामी लेखमें इससे ज्यादा (Detailed) विस्तृत लिखनेकी कोशिश की जावेगी।

त्रैमासिक पर्व-व्रतादि निर्णय

[लेखक—श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी)



आश्विन शुक्ल	१० मंगलवार	ता० १६ अक्तूबर	विजया १० दशहरा राजचिह्न पूजा।
	११ बुधवार	१७ ,,	पापांकुशा एकादशी व्रत, तुलासंक्रांतिमु० १५ पुण्यकाल सारादिन
	१३ शुक्रवार	ता० १६ ,,	प्रदोषव्रत
	१४ शनिवार	ता० २० ,,	सत्यव्रत, शरद् १५, कोजागरी
	१५ रविवार	ता० २१ ,,	कार्तिकस्नानारम्भ आकाश दीपदान
कातिक कृष्ण	४ बुधवार	ता० २४ ,,	श्रीगणेश ४ करक (करवा) चौथव्रत चन्द्रोदय स्टे० टा० ८। ३०
	८ रविवार	ता० २८ ,,	ॐ होई ८ अशोकाष्टमी
	११ बुधवार	ता० ३१ ,,	रमा एकादशी व्रत
	१२ गुरुवार	ता० १ नवम्बर	गोवत्स १२ नवम्बर मा० ११ प्रारम्भ
	१३ शुक्रवार	ता० २ ,,	प्रदोषव्रत, धन १३, धन्वन्तरि जयन्ति, यमदीपदान
	१४ शनिवार	ता० ३ ,,	नरकहरा १४, रूप १४, श्रीहनुमज्जन्मदिन
	३० रविवार	ता० ४ ,,	दीपमालिका, श्रीमहालक्ष्मी पूजन
कातिक शुक्ल	१ सोमवार	ता० ५ ,,	अन्नकूट, गोवर्द्धनपूजा वर्ष्टिकाकर्षण (रस्साकशी)
	२ मंगलवार	ता० ६ ,,	चन्द्रदर्शन, यमद्वितीया भ्रातृटिक्का
	८ मंगलवार	ता० १३ ,,	गोपाष्टमी
	६ बुधवार	ता० १४ ,,	परिक्रमा ६ अक्षया ६ (स्वर्ण गर्भकूष्माण्डदान)
	११ शुक्रवार	ता० १६ ,,	हरिप्रबोधिनी एकादशी व्रतंसर्वेषां, वृश्चिक संक्रांति मु० ४५ पुण्यकाल अपराह्न या०, तुलसी विवाह, भीष्मपंचकारम्भ, देवोत्थापनी, चतुर्मास समाप्ति।
	१२ शनिवार	ता० १७ ,,	शनिप्रदोष व्रत
	१४ रविवार	ता० १८ ,,	वैकुण्ठ १४ व्रत
	१५ सोमवार	ता० १६ ,,	सत्यव्रत, टुकरी १५, कातिकस्नान समाप्ति, भीष्म-पंचक समाप्ति निम्बार्क जयन्ती
मार्गशीर्ष कृष्ण	३ गुरुवार	ता० २२ ,,	श्रीगणेश ४ व्रत चन्द्रोदय स्टे० टा० ८। ११
	७ सोमवार	ता० २६ ,,	श्रीमहाकाल भैरवाष्टमी
	११ शुक्रवार	ता० ३० ,,	उत्पन्ना ११ व्रत
	१२ शनिवार	ता० १ दिसम्बर	मल्ल द्वादशी, दिसम्बर मा० १२ प्रारम्भ
	१३ रविवार	ता० २ ,,	प्रदोष व्रत
	१४ सोमवार	ता० ३ ,,	देविकस्नान (काश्मीर)
	३० मंगलवार	ता० ४ ,,	अमावस्या भौमवती
मार्गशीर्ष शुक्ल	२ गुरुवार	ता० ६ ,,	चन्द्रदर्शन
	६ सोमवार	ता० १० ,,	चम्पा ६

मार्गशीर्ष शुक्ल	११ शनिवार	ता० १५ दिसम्बर	मोक्षदा ११ व्रत, धनु: संक्रान्ति मु० १५ पुण्यकाल मध्याह्नोत्तर श्रीगणेश जयन्ती
	१२ रविवार	ता० १६ ,,	प्रदोष व्रत
	१३ सोमवार	ता० १७ ,,	पिशाचमोचनश्राद्ध
	१४ मंगलवार	ता० १८ ,,	सत्यव्रत, श्रीदत्त जयन्ती
	१५ बुधवार	ता० १९ ,,	ग्रस्तास्तचन्द्रग्रहण (प्रात:काल)
पौष कृष्ण	४ शनिवार	ता० २२ ,,	श्रीगणेश ४ व्रत चन्द्रोदय स्टे० टा० ८।५८
	११ रविवार	ता० ३० ,,	सफला एकादशी व्रत
	१२ सोमवार	ता० ३१ ,,	प्रदोष व्रत
	१३ मंगलवार	ता० १ जनवरी	जनवरी मा० १ सन १९४६ ई० प्रारम्भ
	३० गुरुवार	ता० ३ ,,	अमावस्या
पौष शुक्ल	२ शनिवार	ता० ५ ,,	चन्द्रदर्शन
	११ रविवार	ता० १३ ,,	पुत्रदा ११ व्रत स्मार्तोंके लिए मकर संक्रांति मु० ४५ पुण्यकाल दूसरे दिन

महापुरुषोंकी जयन्तियां निर्वाण दिन और प्रसिद्ध मेले

कार्तिक कृ० १ सोमवार ता० २२ अक्तूबर स्व० श्री विट्ठलभाई पटेल निर्वाण दिन

कार्तिक कृ० १० मंगलवार ता० ३० अक्तूबर श्रीकृष्णसखा पार्थ (अर्जुन) जन्मदिन

	३० रविवार	ता० ४ नवम्बर	दीपमाला मेला अमृतसर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती निर्वाण दिवस
कार्तिक शुक्ल	१ सोमवार	ता० ५ ,,	श्रीस्वामी रामतीर्थ जयन्ती
	१० गुरुवार	ता० १५ ,,	भक्त श्री नामदेव जन्म दिन

१२ शुक्रवार ता० १६ नवम्बर स्व० श्री चित्तरंजनदास जन्म दिन

१३ शनिवार ता० १७ नवम्बर स्व० श्री लाला लाजपतराय निर्वाण दिन

१५ सोमवार ता० १९ नवम्बर श्री नानकदेव जयन्ती मेला पुष्करराज, गढ़मुक्तेश्वर, कपालमोचन

मार्गशीर्ष कृष्णा ६ रविवार ता० २५ नवम्बर श्री पं० जवाहरलाल नेहरू जन्म दिन

मार्गशीर्ष शुक्ला ५ रविवार ता० ९ दिसम्बर जन्मोत्सव अखण्ड सौ० श्री १०५ सतीमहारानी सा० [बघाटराज्य

मार्गशीर्ष शुक्ला १० शुक्रवार ता० १४ दिसम्बर श्री सम्राट् षष्ठ जार्ज जन्मदिन

पौष कृष्णा ८ बुधवार ता० २६ दिसम्बर महामना श्री पं० मदनमोहन मालवीय जन्म दिन

१० शुक्रवार ता० २८ दिसम्बर अ० भा० राष्ट्रियमहासभा (कांग्रेस) जन्म दिन

पौष शुक्ला ७ गुरुवार तारीख १० जनवरी श्रीगुरुगोविन्दसिंह जयन्ती

आवश्यक सूचना

ऊपर हमने साम्राट् षष्ठ जार्जको छोड़कर भारतीय महापुरुषों एवं नेताओंके जन्मदिन लिखे हैं वे अंग्रेजी तारीखके अनुसार न होकर भारतीय चान्द्रमास तिथिके अनुसार है। राष्ट्रवादी पुरुषोंका अपने प्रत्येक व्यवहारमें विदेशी तिथि (अंग्रेजी तारीख) का प्रयोग करना दास वृत्ति एवं पारतन्त्र्यकी पराकाष्ठाका परिचायक है। अतः प्रत्येक राष्ट्रवादीको अपने व्यवहारमें विदेशी अंग्रेजी तारीखके स्थानमें भारतीयसौर तिथि वा चान्द्रतिथिका प्रयोग करना चाहिए। आशा है राष्ट्रिय नेता और सहयोगी पत्रकार इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

सोने चांदीकी दैनिक तेजी मन्दी

(लेखक—श्री मनुभाई पी० शुल्क पाभिस्ट न्यूमेरिष्ट कमर्शियल एडवाइजर)



[विद्वान् लेखकका परिचय हम गताङ्कमें दे चुके हैं। 'श्रीस्वाध्याय'के पाठक व्यापारी-वर्गके लाभार्थ आपने सोने चांदीकी आगामी तीन मासकी यह दैनिक रिपोर्ट बड़े परिश्रम और अनुभवसे बनाकर हमारे पास विशेषाङ्कके लिए विशेषरूपमें भेजी है वह हम यहां दे रहे हैं। यदि पाठकोंने इससे लाभ उठाया तो भविष्यमें भी हम यह निरन्तर देते रहेंगे। —सम्पादक]

अक्तूबर १६४५ ई०

ता० १६ गुरुवार प्रातः ७ बजे बेचो। दुपहरको १॥ से २ बजे नफासे खरीदो।

ता० २१ रवि०—दुपहर १२ बजे खरीदो। सायंकाल बाजार बन्द होते बेचो।

ता० २४ बुध०—दुपहरको ३॥ बजे बेचो। रात्रि काल ६॥ बजे खरीदो।

ता० २५ गुरु०—सायंकाल ६॥–७ के बीचमें खरीदो। और दूसरे दिन दुपहरको १२ बजे बेचो।

ता० २७ शनि०—रात्रि-कालमें १२ बजे या बन्द होते समय बेचो। या रविवार ता० २८ सुबह ७ बजे बेचो। इसी दिन दुपहरको १ बजे खरीदो।

ता० ३० मंगल०—सायंकाल ६ बजे खरीदो। रात्रि १०॥–११ बजे बेचो।

नवम्बर १६४५ ई०

ता० २ शुक्रवार—सुबह १०॥ बजे बेचो। बाजार बन्द होते वक्त शामको खरीदो।

ता० ५ सोम०—प्रातःकाल ६ बजे खरीदो। दुपहर ३ बजे बेचो।

ता० ७ बुध०—११ बजे रात्रि बेचो। दूसरे रोज दुपहरको १ बजे खरीदो।

ता० १० शनि०—दुपहरको ३–४३ मि० पर खरीदो। और रात्रि-काल १०—११ बजे बेचो।

ता० १३ मंगल०—सुबह ६ बजे बेचो। और दुपहर ४ बजे खरीदो।

ता० १५ गुरु०—दुपहर १॥ बजे खरीदो। रात्रि १० बजे बेचो।

ता० १६ शुक्र०—सायंकाल ४–४॥ बजे बेचो। और रात्रि ११ बजे खरीदो।

ता० १६ सोम०—रात्रि १० बजे खरीदो। दूसरे रोज दुपहरको १२–१ बजे बेचो।

ता० २३ शुक्र०—प्रातः ६ बजे बेचो। दुपहर ४ बजे खरीदो।

ता० २४ शनि०—प्रातः ६ बजे खरीदो। और सायंकाल बन्द होते बेचो।

ता० २६ सोम०—सायंकाल ६॥–७ के बीचमें बेचो। रात्रि ११ बजे खरीदो।

ता० २६ गुरु०—प्रातः ११ बजे खरीदो शामको ६ बजे बेचो।

दिसम्बर १६४५ ई०

ता० २ रविवार—प्रातः ७ बजे बेचो। दुपहर ४ बजे खरीदो।

ता० ४ मंगल०—रात्रि ११ बजे खरीदो। दूसरे रोज खुलते बेचो (१२ बजे)।

ता० ७ शुक्र०—शाम को ४ बजे बेचो। रात्रि ११ बजे खरीदो।

ता० १० सोम०—प्रातः ६ बजे खरीदो। दुपहरको ३ बजे बेचो।

ता० १२ बुध०—शामको ५ बजे बेचो। रात्रि ११ बजे खरीदो।

ता० १४ शुक्र०—रात्रि ११ बजे खरीदो । दूसरे रोज १ बजे बेचो ।

ता० १६ रवि०—रात्रि १२ बजे बेचो । दूसरे दिन दुपहरको २ बजे खरीदो ।

ता० १६ बुध०—प्रातः ६॥ बजे खरीदो । और सायं ४ बजे बेचो ।

ता० २२ शनि०—सायं ६ बजे बेचो । रात्रि ११ बजे खरीदो ।

ता० २३ रवि०—रात्रि ११ बजे खरीदो । दूसरे दिन १॥ बजे बेचो ।

ता० २६ बुध०—दुपहर को १ बजे बेचो । सायंकाल ६ बजे खरीदो ।

ता० २६ शनि०—प्रातः ६ बजे खरीदो । दुपहरको ४॥ बजे बेचो ।

ता० ३१ सोम०—रात्रि ११ बजे बेचो । दूसरे दिन १ बजे खरीदो ।

जनवरी १६४६ ई०

ता० ३ गुरुवार—प्रातः ६ बजे खरीदो । सायंकाल ५ बजे बेचो ।

ता० ६ रवि०—सायंकाल ४॥ बजे बेचो । रात्रि ११ बजे खरीदो ।

ता० ६ मंगल०—रात्रि ६ बजे खरीदो । दूसरे दिन १॥ बजे बेचो ।

ता० ११ शुक्र०—प्रातः ८ बजे बेचो । दुपहरको चार बजे खरीदो ।

ता० १३ रवि०—दुपहरको १२ बजे खरीदो । सायंकाल ६ बजे बेचो ।

ता० १४ सोम०—दुपहरको १२ बजे बेचो । शामको ६ बजे खरीदो ।

ता० १७ गुरुवार—रात्रि ११॥ बजे खरीदो । दूसरे दिन दुपहरको ४ बजे बेचो ।

सरकारी कानूनसे सर्वत्र सोना-चांदीके अतिरिक्त दूसरे वायदेके व्यापार बन्द है। सोना-चांदी का वायदेका व्यापार सारे भारतमें चलता है । इस लिए हमने सोना चांदीके सम्बन्धमें ही निर्णय दिया है ।

उपरोक्त लेखमें जो टाइम दिया गया है वह नया इन्डियन स्टेण्डर्ड टाइम है । कदाचित् यदि नया टाइम बन्दकर दिया जाय और पुराना इन्डियन स्टेण्डर्ड टाइम इसकी जगह प्रचलित किया जाय तो लिखित टाइममें से एक घंटा कम करना चाहिए ।

जो व्यापारी इस वायदेके धंधेमें बर्बाद हो चुके हों उनको मेरी खास राय है कि वे सज्जन उपरोक्त बताये हुए वक्त पर खरीद बेच करें और जो नफा मिले वह तत्काल उठा लें । जो टाइमकी लिमिट दी है उसीमें सोना बाजारमें ज्यादा घट बढ़ हो तो जहां बेचना और लेना बताया है वहां ।॥) से १) रुपये की घट बढ़ होगी । जबकि घट बढ़ कम हो तब ॥) आनेसे ।॥) की बढ़ घट होगी । इसी प्रकार चांदीमें जब ज्यादा बढ़ घट होगी तब १) रुपयासे १॥) रुपया तककी और कम घट बढ़में बाजार चलता हो तब ।॥) आनेसे १) रुपयेकी बढ़-घट रहेगी ।

उपरोक्त लेखसे ६० टका रुख ठीक बैठना मुझे प्रतीत होता है । जो सज्जन इस रुख परसे लाभ उठावें उनको चाहिए कि पूरे लाभमें से १० प्रतिशत धार्मिक कार्यमें लगावें और ५ प्रतिशत इस पत्रके सञ्चालक श्री पंडित हरदेवजीको 'श्रीस्वाध्याय' के उत्कर्षके लिए भेजें । जनताको इस रुखसे कितनी सहायता मिलती है इस बातको लक्ष्यमें रखकर आगे भी 'श्रीस्वाध्याय'के प्रत्येक अङ्कमें मेरी ओरसे ऐसी ही रुख बराबर प्रकट की जावेगी ।

जो व्यापारी ज्योतिष विषयका चमत्कार देखना चाहते हों और पंडितजी श्री हरदेव शर्माजीको उनके इस त्रैमासिक पत्रको मासिक रूपमें करनेके लिए पूर्ण सहायता करना चाहते हों वे सज्जन अपने प्रान्तमें चलने वाले वायदे या किसी भी वस्तुके व्यापारके लिए मुझसे पत्र-व्यवहार करके राय लेवें ।

त्रैमासिक व्यापार-भविष्य-प्रकाश

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रससाद जी ज्योतिषाचार्य]

(१) संसारके व्यापार-भविष्यको यथार्थ जाननेके लिये महर्षियोंने सबसे अधिक महत्त्व ज्योतिःशास्त्रको दिया है। इस शास्त्रमें तेजी मंदीके रहस्यको बतलाने वाले पांच अङ्ग हैं। सबसे पहिले जिस समय की व्यापारास्थिति यानि जिस समयकी तेजी मन्दी जाननी हो उस समयके सूक्ष्मसे सूक्ष्म ग्रह गणितका अवलम्बन करना चाहिये। इसके लिये आजकल सबसे सूक्ष्म पंचांग ग्रीनविचकी वेधशालासे निकलने वाला अंग्रेजी "नाटिकल अलमनाक" है। उसमें दो दो घण्टेका चन्द्र स्पष्ट और प्रत्येक तारीखके दैनिक सूक्ष्म स्पष्ट ग्रह रहते हैं। साथ ही ग्रहोंके शर क्रान्ति तथा दैनिक घण्टात्मक ग्रह योग होते हैं इनके द्वारा तेजीमन्दी निकालनेमें बड़ी सहायता मिलती है। 'श्रीस्वाध्याय' सम्पादकजीने इस वर्ष जो केतकी गणित का सूक्ष्म पंचाङ्ग प्रकाशित किया उसने भी इस त्रुटि को बहुत अंशोंमें पूर्ण कर दिया है। ग्रहोंका वस्तुओं के ऊपर प्रभाव तथा किस वस्तुसे किस ग्रहका योग वर्तमानमें उस वस्तुके भावोंमें दीप्तांशोंके सदृश तेजी-मन्दी करता है इस गणितके द्वारा दैनिक वा घण्टात्मक तेजीमन्दीका आंकड़ा मेरे अनुभव से ८५ प्रतिशत सही निकलता हैं। आगे पाक्षिक तेजीमन्दीका रुख संक्राति और चन्द्रदर्शनके शृङ्गोन्नतिसे लेना चाहिये। साप्ताहिक टोनका रुख ग्रहोंके नक्षत्र चरण भोग तथा अंशात्मक ग्रहयोगों द्वारा दोनोंसे मिलाकर लेना चाहिये। इन सब बातोंका पूर्ण विचार करने पर एक व्यापारीको ज्योतिःशास्त्र द्वारा मासिक व्यापार-भविष्य पूर्ण रूपसे ज्ञात हो जाता है कि अमुक वस्तुका आज दिन यह भाव है भविष्यमें सप्ताहिक पाक्षिक मासान्तमें यह भाव हो जायगा। इसी ज्ञानको दैविक ज्ञान माना जाता है और इसकी पुष्टिके लिये लौकिक ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता समझी जाती है।

(२) लौकिक ज्ञानमें सबसे पहिले यह देखना होगा कि किस वस्तुका भारतवर्षमें सबसे बड़ा व्यापारी कौन है और उसकी क्या धारणा है, तार टेलीफोन किस रुखका अवलम्बन कर रहे हैं। देशमें उस वस्तुकी आमद खपत कितनी है, तथा दूसरे देशोंसे माल आनेमें रुकावटें तो नहीं है, इन सब बातोंको मिलाकर तेजीमन्दीका रुख निकालना चाहिये ताकि इन कारणोंसे उस वस्तुके वर्तमान भावमें साप्ताहिक पाक्षिक या मासान्तमें यह भाव बन जायेंगे। यदि पूर्ववत् ज्योतिःशास्त्रके योगों द्वारा और लौकिक समाचारोंके कारणों द्वारा एक रुख मिल जावे तो व्यापारीको निश्चयात्मक बड़ा व्यापार करना चाहिये; जिससे कि बहुत बड़ा लाभ प्राप्त हो जावेगा और यदि दोनोंमें भिन्नता हो तो व्यापारीको उस समय थोड़ा व्यापार करना चाहिये।

(३) तीसरे दोनों प्रकारसे निश्चय किये हुए विचारको ज्योतिःशास्त्रके श्रद्धालुओंको भाग्यवशात् किसी अनुभवी शास्त्रमर्मज्ञ ज्योतिषीकी उत्तम राय लेनी चाहिये। वह राय भी यदि उक्त विचारोंसे मिल जावे तो एक साधारण व्यक्ति एक सप्ताहमें निश्चयात्मक लखपति बन जावेगा। उसके लाभान्वित होने पर ज्योतिःशास्त्र पर लोगोंकी अटूट श्रद्धा हो जाती है। किन्तु भारतवर्षमें आजकल तेजीमन्दी बताने वाले ज्योतिषियोंकी बरसाती मेंढ़कोंकी भांति वृद्धि हो रही है। इनमें प्रायः नक्षत्रसूची व अल्पज्ञ ज्योतिषी हैं। जिधर देखो उधरसे प्रत्येक पत्रमें चांस बताने वाले ज्योतिषियोंके विज्ञापन मिलेंगे। ये लोग सरासर व्यापारी जनताको धोका दे रहे हैं, व्यापारियों को चाहिये कि कभी विज्ञापनबाजी पर विश्वास न करें, अन्यथा बजाय लाभके हानि हो जाना सम्भव है। उन ज्योतिषियोंमें कितने ही ज्योतिषी ऐसे हैं कि

जिनको एक साल पहिले पंचांग देखना व नक्षत्रोंका नाम तक याद न था न उन्होंने कभी ज्योतिषकी मामूली पुस्तक शीघ्रबोध तकके दर्शन किये होंगे। वे आजकल बहुत बड़े मियांमिट्ठू बनकर आज कहीं से तो कल कहींसे विज्ञापन करके भोले-भाले व्यापारियोंको फंसाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। अतः व्यापारियोंको सहसा कभी भी ऐसे अनाड़ी ज्योतिषियोंके चक्करमें न आना चाहिये। कहावत है कि जानकारके हाथसे मरना भी किसी सीमा तक अच्छा है किन्तु अनाड़ीके हाथ जीवित रहना भी श्रेष्ठ नहीं है।

आश्विन सुदी

ति. वार व्यापारिक फल-प्रदर्शक तेजीमन्दीः—

११ बु० मन्दीके टोनमें चांदी, सोना, रुई खरीदो।
१२ गु० तुलार्कः मु० १५ तेजी दिखायगा।
१३ शु० पुनवर्सु पर मङ्गल३ बजे तक तेजी बाद मन्दी।
१४ श० बाजार खुलते बेचो २॥ दिनमें लाभ।
१५ र० प्रायवेट बाजारमें साधारण घट बढ़।

कार्तिक बदी—

१ चं० बाजार खुलते खरीदो द्वितीयाका क्षय तेजी करेगा।
३ मं० तेजीके टोनमें नफा लेकर बेचना सच्चा सौदा है।
४ बु० ऊंचेमें बेचो नीचे में खरीदो, लाभ होगा।
५ गु० १॥ बजे तक मंदीके टोनमें माल पोते करो।
६ शु० जबरदस्त तेजी नजराणा लगावो।
७ श० बाजार खुलते बेचो ४ बजे तक नफा लो।
८ र० प्रायवेटमें मामूली घटबढ़
९ सो० आजकी खरीद पांच दिनमें अच्छा नफा पेश करेगी।
१० मं० वृश्चिके बुध तेजीको भड़कायगा। क्या समझे?
११ बु० रुई, अलसी चांदी सोनेके भाव फिरसे ऊंचे जायेंगे।
१२ गु० पाट, बारदाना, शेयर नरम होकर तेजी की ओर।
१३ शु० आजकी तेजी-मंदी छक्के छुटादेगी।
१४ श० तेजीके टोनमें बेचना चतुर सटोरियोंका काम होगा।
३० र० अमावसका रंग बाजारको थमा देगा।

कार्तिक सुदी—

१ चं० दोतरफा बाजार सम पड़ा रहेगा।
१ मं० एकमकी वृद्धि मन्दी लाती है बेचो।
२ बु० पहिले बेचो पीछे खरीदो लाभ होगा।
३ गु० मंदीके टोनमें खरीदना दिल वाले व्यापारीका काम है।
४ शु० उछाला तेजीका आवे तो नफा छोड़ना नहीं।
५ श० सोना, चांदी, रुई बेचो २॥ दिनमें लाभ।
६ र० प्रायवेटकी मंदी रंग बतादेगी।
७ सो० बाजार खुलते चांदी सोना पोते करो।
८ मं० कलकी खरीद आज नफा दे तो छोड़ो नहीं।
९ बु० मंदीकी लाइन काफी हद तक हो चुकी है।
१० गु० अरहर, अलसी, मसूर के भाव फिरसे उठेंगे।
११ शु० चांदी, सोना, रुईका डबल बेचाण करो।
१२ श० जबरदस्त मंदी, तेजी-मंदी लगाओ।
१४ र० तेरसका क्षय फिरसे तेजी करेगा।
१५ सो० बारदाना, चांदी, सोना, रुई नफा लेकर पोते करो।

मार्गशीर्ष बदी—

१ मं० डबल बेचाण करो स्टाक नुकसान देगा।
२ बु० गल्ले कपड़ेके ग्रह भारी मंदीमें बैठे हैं।
३ गु० मंदीके झटकेमें खरीदना ही चांस है।
४ शु० चांदी सोना, रुई तेजीकी ओर।
५ श० काली मिर्च बारदाना जूटकी मंदी।
६ र० प्रायवेटमें तेजीका भड़का।
७ सो० बाजार खुलते खरीदो २॥ दिनमें लाभ
८ मं० आजकी तेजी नफा दे तो छोड़ना नहीं
९ बु० मंदीके टोनमें माल पोते करो।
१० गु० वृश्चिक पर शुक्र भारी तेजी करेगा।
११ शु० खरीदो १२॥ बजे ३॥ बजे लाभ।
१२ श० मंदीके टोनमें माल पकड़ना बड़े सटोरियेका काम है।

१३ र० प्रायवेटमें दोतरफा बाजार चलेगा।
१४ सो० आजकी खरीद ४८ घंटेमें लाभ देगी।
३० मं० ऊंचे भावोंमें बेचना सच्चा काम है।

मार्गशीर्ष सुदी—

१ बु० मंदीके टोनको और देखो।
२ गु० चांदी, सोना, रुई खरीदो १२॥ बजे।
३ शु० तेजीके टोनका मिलता मुनाफा छोड़ो नहीं।
४ श० बेचो बाजार खुलते शामको नफा लो।
५ र० मंदीकी बड़ी सूचना समझें।
६ सो० चांदी, सोना खरीदो १ बजे बाद।
७ मं० वक्री मंगल तेजीका भड़का दिखायगा।
८ बु० व्यापारी सावधान, तेजी टिकाऊ नहीं है।
९ गु० आजकी खरीद कल नफा देगी।
१० शु० तेजीके ऊंचे भावोंमें डबल बेचो।
११ श० मंदीको चाल शुरू होने वाली समझो।
१२ र० प्रायवेटमें मंदी आवे तो नफा लो।
१३ सो० मार्गी बुध मंदीसे तेजी करेगा।
१४ मं० बढ़े हुए भावोंमें बेचना।
१५ बु० मंदीकी चाल बराबर चलेगी।

पौष वदी—

२ गु० पड़वाका चय तेजी दिखला रहा है।
३ शु० खरीदो बाजार खुलते, शामको नफा लो।
४ श० बेचो १ बजे, ३६ घंटे तक मंदी।
५ र० प्रायवेटमें तेजीकी चाल।
६ सो० खरीदो चांदी, सोना, रुई।
७ मं० धनुः का शुक्र तेजी करेगा।
८ बु० मंदीका रंग आवे तो और खरीदो।
९ शु० खरीदो १२ बजे १० बजे लाभ।
१० श० नफा मिले तो मंदीमें पड़जाओ।
११ र० प्रायवेटमें मंदी खरीदना बताती है।
१२ सो० खरीदो १२ बजे, ९ बजे लाभ।
१३ मं० तेजीकी जबरदस्त प्रतिक्रिया होगी।
१४ बु० ऊंचे भावोंमें बेचने वाले लाभ लेंगे।
३० गु० मंदीके टोनमें नफा लेना समझदारी है।

पौष सुदी—

१ शु० चांदी, सोना, रुई खरीदो।
२ श० तेजीकी लाईन २॥ बजे तक।
३ र० प्रायवेटमें दोतरफा बाजार।
४ सो० खरीदो १२॥ बजे ६ बजे लाभ।
५ मं० ऊंचे बढ़े हुवे भावोंमें बेचो।
६ बु० मंदीकी चाल २४ घंटेकी है।
७ गु० चांदी, सोना पोते करने वालेको दो दिनमें लाभ।
८ शु० खरीदो पहिले ८ बजे तक नफा लो।
९ श० बाजार खुलते बेचो, १॥ बजे दिनमें लाभ।
११ र० प्रायवेटमें मंदीका जोर रहेगा।

कौमुदी-महोत्सव



राका-शशाङ्क-शरदङ्क-मृगाङ्कमेत्य स्वाध्यायमातनुत मा कुरुत प्रमादम्।
ज्योत्स्नोत्सवोऽस्य रचयेत् कमपि प्रकाशम् श्रीराष्ट्रजीवनपथं जनजागरार्थं॥

सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण राका (पूर्णमासी) के चन्द्रमाके समान इस 'शरदङ्क' रूपी चन्द्रमाको प्राप्त कर स्वध्याय करिए, तथा इसका विस्तार करिए, इसमें कहीं प्रमाद न करना। इस शरदङ्करूपी चन्द्रमाका यह कौमुदीमहोत्सव उस अनिर्वचनीय अत्यन्त प्रकाशमान राष्ट्रको जगानेके मार्गका लोगोंको उद्बुद्ध करने के लिए निर्माण करेगा। —अ० वा० आचार्य।

साप्ताहिक-व्यापार-भविष्य

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी ज्योतिषाचार्य]



सट्टेके व्यापारमें अनायास धन प्राप्तिका कारण पूर्वज ऋषियोंने अपने तपोबलसे वैज्ञानिक दृष्टि द्वारा अनेक जन्मोंके कर्मोंको देखकर यह निरूपण किया है कि जिस प्राणीने पूर्व जन्ममें वा इस जन्ममें गुप्त दान दिया है उसको सट्टेके व्यापारमें अनायास धन मिलेगा और वह फलीभूत होगा, तथा किसी प्रकारसे घरसे नहीं जावेगा। इसलिये ज्योतिर्विज्ञानके द्वारा कर्माजीवि विचारसे जो सज्जन सट्टेके व्यापारसे स्थिर धन कमाना चाहें उनको अनायास धन प्राप्तिके निमित्त कर्म करना चाहिये। इसका विधान इस प्रकार है—

वर्षारम्भमें आनेवाली अक्षया-तृतीया वैशाख शुक्ल पक्षमें, कूष्माण्डा ६ कार्तिक शुक्ल पक्षमें, उक्त दिन सूर्योदयके समय स्नान संध्यासे निवृत्त होकर अनायास धनकी प्राप्तिकी अभिलाषा रखने वाला व्यक्ति किसीभी फलमें गुप्त छिद्र करके सुवर्ण तथा चांदी रखदे। जितने धनकी अभिलाषा हो उतने शतांशमें एक मुद्रा प्रमाण द्रव्य रखकर छिद्रको बन्द करके बालबच्चे वाले दरिद्र ब्राह्मणको जो विद्वान् हो बुलाकर विधिपूर्वक षोड़शोपचारसे पूजन करके भोजन कराय श्रद्धा सहित दम्पतिके साथ उस फलको दक्षिणा सहित भेंट करे और उसका आशीर्वाद ले। इस कर्म द्वारा प्राणियोंको अनायास धन प्राप्त होता है। इसकी मीमांसा इस प्रकार है—

सतयुगादि तीनों युगोंमें इस दानका फल इस जन्म में करनेका अगले जन्ममें मिलता है, किन्तु कलियुगमें इस जन्मका फल इसी जन्ममें मिलता है, श्रद्धासे किया हुआ तात्कालिक फलको देता है, इसलिए उक्त कर्मकी साधनासे व्यापारी मालामाल हो सकेंगे, सटोरियोंको इस विवेचनके ऊपर श्रद्धा बढ़ाकर कर्म करना चाहिए, ताकि सच्चा लाभ हो।

कार्तिक—मार्गशीर्षमें क्या होगा ?

कार्तिकके योग अत्यधिक उत्पात-सूचक हैं। एशियामें युद्धकी तीव्रता, रोगोपद्रव, देशोंमें आकस्मिक मतभेद, नवीन नवीन परिवर्तन होंगे। भारतवर्षमें आपसी झगड़े तथा धार्मिक संस्थाओंमें मतभेद कहीं कहीं गृहयुद्ध होना संभव है। चांदी सोनेके बाजार एकदम मंदीसे तेजीमें जायेंगे। व्यापारी सावधान। कार्तिकमें खासी घट-बढ़ चलेगी।

ता० १७ से २१ अक्टूबर तक पहिला सप्ताह

आश्विनके अर्द्ध सप्ताहमें पहले ३ दिन तेजी, २ दिन मंदी रहेगी। ता० १७को खरीदने वाले १६ तक लाभ उठाकर डबल बेचें।

ता० २२से २८ अक्टूबर तक दूसरा सप्ताह

यह सप्ताह व्यापारके लिये क्रांतिकारी योगोंसे भराहुआ होगा। अनायास खबरोंसे बाजार नैयाकी तरह नीचे ऊचे होंगे। चांदी, सोना, रूई तेजीकी ओर चलेंगे। अरहर, मसूर, अलसी, तिल, तेल मंदीकी ओर। चांदी सोना ता० २२–२६ को तेज।

ता० २६ अक्टूबरसे ४ नवम्बर तक तीसरा सप्ताह

व्यापार सावधानीसे करें। इस सप्ताहमें रुईमें ४०) चांदीमें २०) सोनेमें १२)की घटाबढ़ीके भयंकर योग हैं। ता० २६को खरीदें ता० २को तेजीका लाभ लेकर डबल बेचें, लाभ होगा।

ता० ५से ११ नवम्बर तक चौथा सप्ताह

इस सप्ताहके आरम्भमें तेजीकी ताकत सिर्फ दो दिन रहेगी बादमें अचानक खबरोंसे बाजार एक दम गिरेंगे, एक जबरदस्त मंदीका उछाला आवेगा। चांदी-सोना रुई ता० ६को बेचो ६ तक लाभ।

ता० १२से १८ नवम्बर तक पांचवां सप्ताह

इस हफ्तेमें वृश्चिकार्क शुक्रवारी होनेसे देशोंमें शांतिके समाचार सुनाई देंगे। नवीन कारबार आरम्भ होंगे। कारकेट प्रायः सभी एकदम गिरेंगे। चांदी ३०) सोना १५) रुई ५०) तक मंदीका झटका लगनेका भय है। व्यापारी सावधान। ता० १५ तक सौदा बराबर कर लें। पोतेका व्यापार हरगिज खड़ा न रखें। रखने वाले पीछे पछतायेंगे।

ता० १९ से २५ नवम्बर तक छठा सप्ताह

इस सप्ताहमें मंदीकी शक्ति पर्याप्त होकर पुनः जोश तेजीका होगा। ता० १९को खरीदने वाले पुनः तेजीसे लाभ उठायेंगे। ता० २३ वक्री बुध मंदी दिखा देगा, बेचना ठीक है।

ता० २६से २ दिसम्बर तक सातवां सप्ताह

इस सप्ताहमें दो दिन तेजी ५ दिन मंदी रहेगी, पहिले २६ से २७ तक पोतेका काम करो ता० २७को बेचो, ता० २८ तक सोदा बराबर, ता० २९को डबल खरीदो, २ को पूरा लाभ करो।

ता० ३ से ९ दिसम्बर तक आठवां सप्ताह

इस सप्ताहमें चांदी, सोना, रूई ३ दिन तेजी ४ दिन मंदीमें रहेंगे। ता० ३को खरीदो ५ तक नफा लेकर डबल बेचो, लाभ सामने होगा,

ता० १०से १६ दिसम्बर तक नवां सप्ताह

सप्ताह साधारण तेजी मंदीमें चलेगा। ता० १०को चांदी-रूई खरीदो। १२ को डबल बेचो। लाभ होजायगा। सोना, तारामीरा अलसी सरसों तेजीसे मंदीमें उतरेंगे।

ता० १७ से २३ दिसम्बर तक दशवां सप्ताह

इस सप्ताहमें पहिले तेजी और फिर मंदी होगी। ता० १७को बाजार खुलते चांदी सोना रूई खरीदो। १८ की रातको बराबर करके डबल बेचो। चन्द्रग्रहण एकदम मंदी लावेगा।

ता० २४से ३० दिसम्बर तक ग्यारहवां सप्ताह

इस हफ्तेमें ५ दिन तेजी, २ दिन मंदी। चांदी सोना रुई ता० २४को खरीदो, २८ को डबल बेचो। लाभ होगा। तिल तेल अलसी तेजीमें होंगे।

ता०३१से ६ जनवरी बारहवां सप्ताह

इस सप्ताहमें मंदीका जोर अधिक रहेगा। तिल तैल अलसी, सरस्यों मंदीमें खरीदना बताएंगे। चांदी, सोना, रुई ३१को खरीदो। ता० ४को डबल बेचो। स्टाक नुकसानी देगा।

ता० ७ से १३ जनवरी तक तेरहवां सप्ताह

इस सप्ताहमें बाजारोंमें भारी उथल पुथल होगी। विदेशी खबरोंसे बाजार भारी मंदीमें होंगे। चांदी १५ सोना १०) रुई ४०)की तादादमें गिरेंगे। व्यापारी सावधानीसे काम करें। वर्षोंकी कमाई एक हफ्तेमें निकल जायगी। 'श्रीस्वाध्याय'के ग्राहक व्यापारी तेजी मंदी घटा बढ़ीकी राय तीसरा पांचवां और तेरहवां सप्ताहकी पक्की टान मुफ्त भविष्यप्रकाश (रजि०) कार्यालय मुरारसे पहिलेसे मालूम करके लाभ उठावें।

विजयादशमी

वीरावलीहृदयसारसजागरायै मार्त्तण्डभैरववपुर्जगति प्रसिद्धा।
सम्प्रेरयेदखिलराष्ट्रजनावनाय सम्पादनाय विजया-दशमी जयस्य ॥

वीर पुरुषोंके हृदयरूपी कमलोंको जगानेके लिए प्रचण्ड सृष्टि-स्थितिप्रलयकारी मार्त्तण्डका रूप धारण करने वाली, संसारमें अति प्रसिद्ध, यह विजयादशमी सम्पूर्ण राष्ट्र और राष्ट्रिय लोगोंके रक्षणके लिए तथा संसारमें विजय सम्पादनके लिए भली भांति प्रेरणा करे। —अ० वा० आचार्य।

त्रैमासिक-राशिफल

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी ज्योतिषाचार्य]

ता० १५ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक

'किस राशिको कैसा रहेगा

मेष—चित्तमें उत्साह, राजनैतिक काममें सफलता, कुटुम्बसे कलह, स्त्री सन्तानको पीड़ा, खर्च अधिक हो, मुकदमेमें यश। ता० १५ से २१ तक चिन्ता। ८ नवम्बर तक राजकार्यमें यश। चांदी, सोनाके व्यापारसे लाभ, अलसी, गुवार, बारदाना मध्यम।

वृषभ—उत्साह भङ्ग, व्यापार मध्यम, अन्य संस्थाओंके व्यक्तियोंसे झगड़ा, मानसिक चिन्ता, मित्र पक्षसे धोका, सामाजिक कार्यमें दूसरे व्यक्तिकी सहायतासे लाभ। चांदी सोनासे लाभ। रुई गुवारसे हानि। ता० २० तक मध्यम, शेष शुभ।

मिथुन—शरीरमें रोग, धन हानि; स्त्री पुत्रादिकों को पीड़ा, सामाजिक कार्योंमें विघ्न, अनायास किसी संस्था वालेसे झगड़ा, चोट वगैरा लगना सम्भव है। चांदी, सोना, रूईका व्यापार मध्यम। गुवार, बारदाना, शेयरके व्यापारसे लाभ। ता० २५ तक नेष्ट; बाकी राजनैतिक कार्यमें सफलता हो।

कर्क—मानसिक कष्ट, शत्रुओंका नाश, राजनैतिक कार्यमें उच्चपदकी प्राप्तिः, राज्यमें वा जनतासे प्रतिष्ठा मिले, व्यापारमें चांदी; सोना, रूईसे लाभ हो। ता० २१ तक मन्दीसे बादमें तेजीके व्यापारसे विशेष लाभ की सम्भावना है। शनिदेवकी आराधना करो या अंगूठीमें नीलम पहिरो।

सिंह—गुप्त अङ्गमें पीड़ा, बुद्धिमें भ्रम, सामाजिक कार्यमें संलग्नता, पहिले उत्साह भङ्ग, बादमें कामयाबी हो। व्यापारमें गल्लेका व्यापार हानिप्रद; रुई, सूत, कपड़ा मध्यम। चांदी, सोना, पीतलसे लाभ। ता० २२ तक मध्यम बादमें श्रेष्ठ रहे। शीरीसे धोका होगा, सावधान।

कन्या—कुटुम्बसे सुख, सन्तानकी प्राप्ति व सन्तान की उन्नतिसे सुख, राजसन्मान, सामाजिक कार्यक्षेत्र में उत्तम प्रकारसे यश मिले, जनताके ऊपर प्रभाव पड़ेगा, धनका व्यय शुभ कार्यमें होगा। ता० १५ से ३१ तक श्रेष्ठ। बाकी मध्यम।

तुला—पराक्रमकी वृद्धि, व्यापारमें दक्षिण पूर्व दिशासे उत्तम लाभ। शेयर फीचर विशेष लाभप्रद। रुई, चांदीके बड़े व्यापारसे लाभ। सोना मध्यम। पाट, बारदानाके स्टाकसे हानि। राज्यमें वाक्य चातुरी से लाभ हो, जनतामें आदर पानेके शुभकार्य बनें।

वृश्चिक—खर्च अधिक, स्त्री सन्तानको कष्ट, स्वयं रक्त विकार, बादमें श्रेष्ठ, बुद्धिकी चञ्चलता रहेगी, बना बनाया काम अपनी बुद्धि द्वारा बिगड़ेगा। व्यापार में गल्लेके स्टाकको निकालना ही लाभ है। चांदी, सोना, शेयर, रुईके व्यापारसे तात्कालिक लाभ होगा। यानि सौदा करने पर थोड़ा मुनाफा मिले तो छोड़ना नहीं, स्टाक पोते माथेका रखना नहीं।

धनुः—धनका व्यय, शत्रुता बढ़े, अनायास झगड़ा। शिरमें रोग वा रक्त विकार होगा। बाद शान्ति हों। मित्रोंके द्वारा राज-कार्यमें सफलता। सभा सोसाइटीके कार्यमें विजय। व्यापारमें स्टाक गल्ला लोहा हानिप्रद। चांदी, रुईसे लाभ हो। ता० २४ तक मन्दी, बादमें तेजीका काम लाभप्रद होगा।

मकर—बराबरके उपजीविका वाले व्यक्तिसे चिन्ता रहे। खर्च अधिक, स्त्री सन्तानको पीड़ा। राजनैतिक कार्यमें अनेक लोगोंसे झगड़ा हो। निष्पक्षीय कार्यसे सुख मिले। व्यापारमें पहिले हानि अपयश मिले, बादमें उत्तम लाभ हो। ता० २७ तक मध्यम, बादमें चांदी, सोना, रुईके कारोबारसे लाभ हो। सावधान, स्टाक हानि दे जायगा।

कुम्भ—पूर्ण धन लाभ, मित्रके द्वारा कार्यका साधन हो। किन्तु गुप्त मन्त्रको प्रकट करनेसे कार्य हानिकी भी सम्भावना है। मनका भेद किसीको न देवें। राजनैतिक कार्यमें पूर्णरूपसे उन्नति होगी। संगठन करने पर विजय होगी। अलसी बारदाना, कालीमिर्च नुकसानदायक। चांदी, सोना, रूई, हेमीयन, शेयर फीचर अधिक लाभकारी होंगे।

मीन—पराक्रम की वृद्धि, राजनैतिक कार्यमें सफलता, बड़े बड़े लोगोंसे मेल व सम्मान प्राप्ति हो। कुटुम्बी मनुष्योंसे चिन्ता, रूईके व्यापारमें हानि। गल्लेका व्यापार मध्यम। कपड़ा, सूत, चांदीका व्यापार लाभप्रद रहेगा। ता० २१ तक मध्यम, बादमें तेजीके व्यापारसे लाभ होगा मगर हीरा अंगूठीमें पहरनेसे यश मिलेगा।

ता० १५ नवम्बर से १५ दिसम्बर तक किस राशिको कैसा रहेगा

मेष—राजनैतिक कार्यसे चिन्ता, सवारीसे मार्गमें भय। बराबरके शत्रु मुकाबलेमें खड़े हो जावें। चुनावके कार्यों में बाधा देखनेमें आवे, किन्तु २४ तक मध्यम बादमें उत्तम कामयाबी होगी। व्यापारमें बारदाना, गुवार, बाजरा हानिप्रद; रूई। चांदी, सोना, शेयर रेस घुड़दौड़ में यशके साथ धन पैदा होगा।

वृषभ—अधिकारसे हीन, अचानक आपत्ति आवें बुद्धिके भ्रमसे व्यापार उलटा होनेका पूर्ण भय है, सावधान। शेयर, गल्ले, गुवार, बारदानेके व्यापारमें स्टाक न करो। चांदी, सोना, रूईका व्यापार लाभदायक होगा। दैविक सलाहके साथ अच्छा लाभ होगा। पहिला पक्ष उत्तम लाभकारी, दूसरा मध्यम।

मिथुन—आरम्भमें अनायास चिन्ता, व्यापार करनेमें असफलता, मित्रोंसे धोका, शीरीसे बेईमानी होगी, सावधान। जो व्यापार करो वह अपना करो। सामाजिक कार्यमें यशके साथ उन्नति, परिश्रम बहुत करना पड़ेगा, किन्तु अन्तमें यश मिल जायगा। व्यापारमें तारामीरा कालीमिर्च नुकसानदायक। चांदी सोना रूईसे दक्षिण दिशासे अच्छा लाभ हो जायगा।

कर्क—चित्तमें उत्साह, व्यापारसे लाभ, सभा सोसाइटी कार्यों में उत्तम यशके साथ पदप्राप्ति होगी। जनता अच्छी दृष्टिसे सन्मान करेगी। व्यापारमें रुई चांदी शेयर फीचर लाभप्रद होगा, बाकी मध्यम। मासका पूर्वार्द्ध उत्तम उत्त र्द्ध मध्यम रहेगा।

सिंह—साधारण शारीरिक कष्ट, कुटुम्बसे चिन्ता, व्यापारमें पहिले थोड़ा लाभ बादमें जबरदस्त हानि। दिन देखकर या किसी अनुभवीकी राय लेकर व्यापार करें। सभा सोसाइटीके चुनावमें सफलता, व्यापारमें सोना सम, चांदी रूईसे उत्तम लाभ। ता० २७ तक मध्यम, बाद श्रेष्ठ।

कन्याः—पराक्रम वृद्धिः, सुखकी अधिकता, पुत्रोन्नति, राज्य कार्यमें अधिकार, नवीन कार्यों की योजना बनानेमें अधिक महत्त्व प्राप्त होवे, व्यापारमें चांदी, सोना उत्तम। लाभ ता० ३० तक उत्तम, बादको सम रहेगा।

तुला—व्यापारमें अति उत्तम। चांदी, सोना, रूई बिनोला शेयर फीचर विशेष लाभकारी। लोहा बारदाना कालीमिर्च नुकसानदायक। ता० २१ तक सम, बाकी उत्तम। राजनैतिक मामलोंमें सफलता मिले। धार्मिक कार्यों से मान। केवल मित्रसे धोका होना संभव है।

वृश्चिक—सरकारी सभा सोसाइटीमें जीत, शत्रु परास्त, स्वास्थ्य- उत्तम, स्त्रीकष्ट, संतान पीड़ा, खर्च विशेष रहे। बारदाना अलसी अरहरके व्यापारसे लाभ हो। सोना मध्यम, चांदी रुई श्रेष्ठ, पुखराज पहर कर व्यापार करनेसे उत्तम लाभ होगा। पत्रद्वारा सन्मानकी प्राप्ति होगी।

धनुः—विद्या बुद्धिकी वृद्धि, राजकार्यों में यश, मुकदमेंसे लाभ, रुई, चांदी, सोनेके व्यापारसे अनायास धन मिले। राज्यसे सन्मान हो। अनायास

त्रैमासिक-राशिफल

[लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी ज्योतिषाचार्य]

ता० १५ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक किस राशिको कैसा रहेगा

मेष—चित्तमें उत्साह, राजनैतिक काममें सफलता, कुटुम्बसे कलह, स्त्री सन्तानको पीड़ा, खर्च अधिक हो, मुकदमेमें यश। ता० १५ से २१ तक चिन्ता। ८ नवम्बर तक राजकार्यमें यश। चांदी, सोनाके व्यापारसे लाभ, अलसी, गुवार, बारदाना मध्यम।

वृषभ—उत्साह भङ्ग, व्यापार मध्यम, अन्य संस्थाओंके व्यक्तियोंसे झगड़ा, मानसिक चिन्ता, मित्र पक्षसे धोका, सामाजिक कार्यमें दूसरे व्यक्तिकी सहायतासे लाभ। चांदी सोनासे लाभ। रुई गुवारसे हानि। ता० २० तक मध्यम, शेष शुभ।

मिथुन—शरीरमें रोग, धन हानि; स्त्री पुत्रादिकों को पीड़ा, सामाजिक कार्योंमें विघ्न, अनायास किसी संस्था वालेसे झगड़ा, चोट वगैरा लगना सम्भव है। चांदी, सोना, रुईका व्यापार मध्यम। गुवार, बारदाना, शेयरके व्यापारसे लाभ। ता० २५ तक नेष्ट, बाकी राजनैतिक कार्यमें सफलता हो।

कर्क—मानसिक कष्ट, शत्रुओंका नाश, राजनैतिक कार्यमें उच्चपदकी प्राप्ति, राज्यमें वा जनतासे प्रतिष्ठा मिले, व्यापारमें चांदी, सोना, रुईसे लाभ हो। ता० २१ तक मन्दीसे बादमें तेजीके व्यापारसे विशेष लाभ की सम्भावना है। शनिदेवकी आराधना करो या अंगूठीमें नीलम पहिरो।

सिंह—गुप्त अङ्गमें पीड़ा, बुद्धिमें भ्रम, सामाजिक कार्यमें संलग्नता, पहिले उत्साह भङ्ग, बादमें कामयाबी हो। व्यापारमें गल्लेका व्यापार हानिप्रद, रुई, सूत, कपड़ा मध्यम। चांदी, सोना, पीतलसे लाभ। ता० २२ तक मध्यम बादमें श्रेष्ठ रहे। शीरीसे धोका होगा, सावधान।

कन्या—कुटुम्बसे सुख, सन्तानकी प्राप्ति व सन्तान की उन्नतिसे सुख, राजसन्मान, सामाजिक कार्यक्षेत्र में उत्तम प्रकारसे यश मिले, जनताके ऊपर प्रभाव पड़ेगा, धनका व्यय शुभ कार्यमें होगा। ता० १५ से ३१ तक श्रेष्ठ। बाकी मध्यम।

तुला—पराक्रमकी वृद्धि, व्यापारमें दक्षिण पूर्व दिशासे उत्तम लाभ। शेयर फीचर विशेष लाभप्रद। रुई, चांदीके बड़े व्यापारसे लाभ। सोना मध्यम। पाट, बारदानाके स्टाकसे हानि। राज्यमें वाक्य चातुरी से लाभ हो, जनतामें आदर पानेके शुभकार्य बनें।

वृश्चिक—खर्च अधिक, स्त्री सन्तानको कष्ट, स्वयं रक्त विकार, बादमें श्रेष्ठ, बुद्धिकी चञ्चलता रहेगी, बना बनाया काम अपनी बुद्धि द्वारा बिगड़ेगा। व्यापार में गल्लेके स्टाकको निकालना ही लाभ है। चांदी, सोना, शेयर, रुईके व्यापारसे तात्कालिक लाभ होगा। यानि सौदा करने पर थोड़ा मुनाफा मिले तो छोड़ना नहीं, स्टाक पोते माथेका रखना नहीं।

धनु—धनका व्यय, शत्रुता बढ़े, अनायास झगड़ा। शिरमें रोग वा रक्त विकार होगा। बाद शान्ति हो। मित्रोंके द्वारा राज-कार्यमें सफलता। सभा सोसाइटीके कार्यमें विजय। व्यापारमें स्टाक गल्ला लोहा हानिप्रद। चांदी, रुईसे लाभ हो। ता० २४ तक मन्दी, बादमें तेजीका काम लाभप्रद होगा।

मकर—बराबरके उपजीविका वाले व्यक्तिसे चिन्ता रहे। खर्च अधिक, स्त्री सन्तानको पीड़ा। राजनैतिक कार्यमें अनेक लोगोंसे झगड़ा हो। निष्पक्षीय कार्यसे सुख मिले। व्यापारमें पहिले हानि अपयश मिले, बादमें उत्तम लाभ हो। ता० २७ तक मध्यम, बादमें चांदी, सोना, रुईके कारोबारसे लाभ हो। सावधान, स्टाक हानि दे जायगा।

कुम्भ—पूर्ण धन लाभ, मित्रके द्वारा कार्यका साधन हो। किन्तु गुप्त मन्त्रको प्रकट करनेसे कार्य हानिकी भी सम्भावना है। मनका भेद किसीको न देवें। राजनैतिक कार्यमें पूर्णरूपसे उन्नति होगी। संगठन करने पर विजय होगी। अलसी बारदाना, कालीमिर्च नुकसानदायक। चांदी, सोना, रूई, हेमीयन, शेयर फीचर अधिक लाभकारी होंगे।

मीन—पराक्रम की वृद्धि, राजनैतिक कार्यमें सफलता, बड़े बड़े लोगोंसे मेल व सम्मान प्राप्ति हो। कुटुम्बी मनुष्योंसे चिन्ता, रूईके व्यापारमें हानि। गल्लेका व्यापार मध्यम। कपड़ा, सूत, चांदीका व्यापार लाभप्रद रहेगा। ता० २१ तक मध्यम, बादमें तेजीके व्यापारसे लाभ होगा मगर हीरा अंगूठीमें पहरनेसे यश मिलेगा।

ता० १५ नवम्बर से १५ दिसम्बर तक किस राशिको कैसा रहेगा

मेष —राजनैतिक कार्यसे चिन्ता, सवारीसे मार्गमें भय। बराबरके शत्रु मुकाबलेमें खड़े हो जावें। चुनावके कार्यों में बाधा देखनेमें आवे, किन्तु २४ तक मध्यम बादमें उत्तम कामयाबी होगी। व्यापारमें बारदाना, गुवार, बाजरा हानिप्रद; रूई। चांदी, सोना, शेयर रेस घुड़दौड़ में यशके साथ धन पैदा होगा।

वृषभ — अधिकारसे हीन, अचानक आपत्ति आवें बुद्धिके भ्रमसे व्यापार उलटा होनेका पूर्ण भय है, सावधान। शेयर, गल्ले, गुवार, बारदानेके व्यापारमें स्टाक न करो। चांदी, सोना, रुईका व्यापार लाभदायक होगा। दैविक सलाहके साथ अच्छा लाभ होगा। पहिला पक्ष उत्तम लाभकारी, दूसरा मध्यम।

मिथुन — आरम्भमें अनायास चिन्ता, व्यापार करनेमें असफलता, मित्रोंसे धोका, शीरीसे बेईमानी होगी, सावधान। जो व्यापार करो वह अपना करो। सामाजिक कार्यमें यशके साथ उन्नति, परिश्रम बहुत करना पड़ेगा, किन्तु अन्तमें यश मिल जायगा। व्यापारमें तारामीरा कालीमिर्च नुकसानदायक। चांदी सोना रूईसे दक्षिण दिशासे अच्छा लाभ हो जायगा।

कर्क — चित्तमें उत्साह, व्यापारसे लाभ, सभा सोसाइटी कार्यों में उत्तम यशके साथ पदप्राप्ति होगी। जनता अच्छी दृष्टिसे सन्मान करेगी। व्यापारमें रुई चांदी शेयर फीचर लाभप्रद होगा, बाकी मध्यम। मासका पूर्वार्द्ध उत्तम उत्तरार्द्ध मध्यम रहेगा।

सिंह —साधारण शारीरिक कष्ट, कुटुम्बसे चिन्ता, व्यापारमें पहिले थोड़ा लाभ बादमें जबरदस्त हानि। दिन देखकर या किसी अनुभवीकी राय लेकर व्यापार करें। सभा सोसाइटीके चुनावमें सफलता, व्यापारमें सोना सम, चांदी रुईसे उत्तम लाभ। ता० २७ तक मध्यम, बाद श्रेष्ठ।

कन्याः—पराक्रम वृद्धिः, सुखकी अधिकता, पुत्रोन्नति, राज्य कार्यमें अधिकार, नवीन कार्यों की योजना बनानेमें अधिक महत्त्व प्राप्त होवे, व्यापारमें चांदी, सोना उत्तम। लाभ ता० ३० तक उत्तम, बादको सम रहेगा।

तुला—व्यापारमें अति उत्तम। चांदी, सोना, रूई बिनोला शेयर फीचर विशेष लाभकारी। लोहा बारदाना कालीमिर्च नुकसानदायक। ता० २१ तक सम, बाकी उत्तम। राजनैतिक मामलोंमें सफलता मिले। धार्मिक कार्यों से मान। केवल मित्रसे धोका होना संभव है।

वृश्चिक— सरकारी सभा सोसाइटीमें जीत, शत्रु परास्त, स्वास्थ्य- उत्तम, स्त्रीकष्ट, संतान पीड़ा, खर्च विशेष रहे। बारदाना अलसी अरहरके व्यापारसे लाभ हो। सोना मध्यम, चांदी रुई श्रेष्ठ, पुखराज पहर कर व्यापार करनेसे उत्तम लाभ होगा। पत्रद्वारा सन्मानकी प्राप्ति होगी।

धनुः—विद्या बुद्धिकी वृद्धि, राजकार्यों में यश, मुकदमेंसे लाभ, रुई, चांदी, सोनेके व्यापारसे अनायास धन मिले। राज्यसे सन्मान हो। अनायास

धनकी प्राप्ति व्यापारसे होगी। चांदी और रुईसे लाभ है, उत्तम ज्योतिषीकी राय लेना। पीले रंगका पुखराज अंगूठीमें पहरनेसे अच्छा लाभ देखनेमें आवेगा।

मकर—राजनैतिक मार्गदर्शक सभा सोसाइटी कार्योंसे मान मिले, उच्चपदकी प्राप्ति हो, वादविवादमें यश मिले। व्यापार तिल तेल अलसी सरसोंका अधिक लाभप्रद। सोना सम, चांदी रुई नेष्ठ रहेगा। ता० २६ तक मध्यम, बाद श्रेष्ठ।

कुम्भ—पूर्ण धन लाभ, राजसभासे सन्मान, मित्रोंकी उन्नति, जमीन जायदादसे लाभ, यात्रामें क्लेश हो। व्यापार रुई शेयर बारदानाका मध्यम। चांदी सोना का उत्तम लाभकारी रहेगा। कुटुम्बी मनुष्यसे धोका होगा।

मीन — शारीरिक पीड़ा, कुटुम्बसे कलह, खर्च विशेष हो, पहिला सप्ताह मध्यम बादमें श्रेष्ठ। राजनैतिक परिवर्तन, कार्यों में यश मिले। व्यापारमें कपड़ा, रुई सूतसे हानि। चांदी सोना किरानेके व्यापारसे लाभ हो। कन्ट्रेक्टरी जमीन जायदाद खरीद बेचने बनवानेसे उत्तम लाभ होगा।

ता० १५ दिसम्बर से १५ जनवरी तक किस राशिको कैसा रहेगा ?

मेषः— नवीन चुनावके कार्यक्रमसे मानप्रतिष्ठा प्राप्त हो। राजनैतिक कार्यों में एक प्रकारसे वैज्ञानिक सुधार होनेसे सुखकी प्राप्ति। शत्रु द्वारा मानहानि, एवं गृहमें कलेश दूसरे सप्ताहमें होगा। व्यापारमें वृद्धि द्वारा उत्तम लाभ हो, बड़े बड़े मनुष्योंसे सम्मान व भेंट हों। चांदी, रूई, शेयर अधिक लाभप्रद होंगे। गल्ला तिल तेल घृत हानिप्रद। सोच समझ कर काम करें, स्टाक नुकसान देगा। मूंगेकी अंगूठी हाथमें पहन कर व्यापार करें।

वृषभ — राजनैतिक कार्योंसे चिन्ता, मानहानि एवं धनहानि हो। मित्रोंसे धोखा, बड़े नेतासे सन्मान होनेसे संतोष मिलेगा। व्यापारमें चांदी, रुई फीचर अधिक धन-लाभ-प्रद हैं। इसका बड़ा व्यापार बम्बई कराचीमें करने वाले अच्छा लाभ उठायेंगे। हीरेकी अंगूठी पहरने पर अनायास धन मिलेगा।

मिथुन—विवादास्पद कार्योंसे मानहानि, घरमें कलेश, व्यापारसे धनहानि। चांदी रुई श्रेष्ठ, बारदाना काली मिर्च तारामीरा हानिप्रद, हैसियनके व्यापारसे अच्छा लाभ हो। ता० २६ तक चिन्ता, ५ तक लाभ, बाकी मध्यम।

कर्क—मित्रके उच्चपदाधिकारसे खुशी हों, बड़े नेताओंसे सन्मान, कंपनी सोसाइटी बिजिन्येससे लाभ, नौकरीसे चिन्ता हो। स्त्री-पीड़ा, संतान-कष्ट तीसरे हफ्ते में रहेंगे। व्यापारमें रुई, गुवार बारदाना उत्तम। चांदी सोना सम। ता०१५ से २१ तक मध्यम, बाकी श्रेष्ठ।

सिंह—पराक्रमकी वृद्धि, संतान कष्ट, शत्रु वृद्धि, राजकार्योंमें असफलता, मित्रसे सुख व सन्मान, कुटुम्बसे चिन्ता, व्यापारमें चांदी सोना रुईसे लाभ। गल्ला अलसी तिल तेल हानिप्रद रहेंगे। ता० ३० तक मध्यम, बाकी उत्तम। व्यापारमें उत्तम लाभके लिए माणिक अंगूठीमें पहिरना ठीक है।

कन्या—सफेद रंगकी वस्तुसे लाभ, काले रंगकी वस्तुसे हानि, धन मिलेगा किन्तु ठहरेगा नहीं, थोड़े लाभमें संतोष रखना श्रेष्ठ है। व्यापार गुवार चांदी का उत्तम, बाकी मध्यम, राजकार्योंमें उत्तम अधिकारी द्वारा प्रोत्साहन होगा।

तुला—राजसभा प्रजासभा दोनोंमें आकर्षण रहेगा, वादविवादमें यश मिलेगा। व्यापार चांदी बारदाना गुवार अलसी तिल्लीका लाभकारी रहेगा। ता० २० तक मध्यम, ५ तक लाभ, बाकी सम।

वृश्चिक—लेखन कार्यों मे यश, राजसे सन्मान, स्त्री सन्तानको पीड़ा, व्यापारमें हानि, चांदी सोना श्रेष्ठ, बाकी वस्तु हानिप्रद। ता० २५ तक मध्यम, १० तक लाभ, बाकी सम।

धनुः—शत्रु परास्त, मनकी इच्छा पूरी हों, राजनैतिक कार्योंमें उत्तम यश मिले। प्रजासे सन्मान हो, व्यापारमें कमीशनसे लाभ, चांदी, रुई, अलसी लाभकारक, तारामीरा काली मिर्चका स्टाक हानिप्रद रहेगा।

मकर—भाग्यवृद्धि, राजासे मान, व्यापारकी उन्नति, नवीन औद्योगिक कार्योंसे लाभ, शरीर कष्ट, अधिक धनका व्यय, राजनैतिक कार्योंसे सन्मान, व्यापारमें चांदी, सोना, रुई से उत्तम लाभ। ता० २१से ६ तक उत्तम, बाकी सम।

कुम्भ—चिन्ता मिटे, राज-कार्योंके आक्षेपोंसे मुक्ति, विद्या बुद्धिकी उन्नति हो। उत्तम भाषण द्वारा सम्मान हो, नवीन कार्योंकी समालोचनामें यश मिले। व्यापारमें तिल तेल लोहासे लाभ हो। चांदी रुईसे हानि हो, नीलमकी अंगूठी पहरना ठीक है।

मीन—उत्तम प्रकारसे यश मिले, सभाओंमें परिश्रम सफल हों; नवीन अधिकार प्राप्त हों। व्यापारमें चांदी, सोना रुईसे उत्तम लाभ हो, बारदाना, हेसीयन जूट अलसी से हानि। उत्तम लाभके लिये पन्नाकी अंगूठी पहरना अत्यावश्यक है।



ग्रहोंका व्यापार-व्यवसाय पर प्रभाव

[लेखक—श्री मनुभाई पी० शुक्ल कमर्शियल एडवाइजर]

गताङ्कमें श्री सम्पादक जी महोदयने मेरे लिए जो विचार प्रकाशित किये हैं इसलिए मैं उनका आभार मानता हूँ। किन्तु मेरेमें इतनी बड़ी योग्यता नहीं है। मैंने इस विषयको एक अन्वेषक विद्यार्थीकी दृष्टि से लिखा है। अपने इस विषयमें मुझे कलकत्ता वाले श्रीमान् सर अब्दुलहलीम गज़नवी महोदयकी पूरी सहायता थी। पहले मैं बी०बी० एण्ड सी०आई० रेलवेमें टेलिग्राफिस्ट था। मेरे सन्तोषजनक कार्य और व्यवहारसे प्रसन्न होकर उच्चाधिकारियोंने मुझे विशेष वेतन वृद्धिके साथ अजमेर टेलिग्राफ सुप्रिण्टेण्डेण्ट आफिसके हेडक्लर्क पद पर नियुक्त किया। मेरा स्वभाव स्वतंत्रता प्रिय है। मेरे पदसे आगे इस रेलवेमें टेलिग्राफिस्टके लिए कोई स्थान नहीं था। तात्पर्य यह कि मेरे पुरुषार्थका मुझे ईश्वर कृपासे पूर्ण फल मिल चुका था, उसी समयमें गज़नवी महोदयसे मेरा परिचय हुआ। इन्हींके परामर्शसे मैंने २००) रु० मासिककी पराधीनवृत्तिसे त्यागपत्र देकर स्वतंत्र ब्राह्मण-जीवन यापनका प्रण किया। ईश्वर कृपासे ज्योतिविज्ञान और तेजी मंन्दी व्यापारिक ज्योतिषमें आरम्भसे ही मेरी विशेष रुचि रही अतः, इसीमें मैंने अपना अनुभव बढ़ाया। मेरे इस अति संक्षिप्त इतिवृत्तसे विज्ञपाठक समझ सकेंगे कि मैंने केवल उदर-पोषणमात्रके लिए ही इस लाइनको स्वीकार नहीं किया है।

गताङ्कमें एक जिज्ञासु सज्जनने ज्योतिषके दो प्रश्न पूछे थे। उनका दूसरा प्रश्न यह है कि जिसकी जन्म-कुण्डलीमें चन्द्र मंगल योग बना हुआ हो वह लक्ष्मीपति होना चाहिये। इसीके साथ वही सज्जन कहते हैं कि धन-स्थानमें चन्द्रमंगल साथ हो तो धन का नाश होता है। इसका क्या कारण है? यहां इनका प्रश्न ही स्वयं उत्तरदाता है। चन्द्र-मंगल जब केन्द्रमें होते हैं तब चन्द्रमंगल योग ठीक समझना चाहिए। धन स्थानमें चन्द्र मंगल होनेसे चन्द्र मंगल योग नहीं होता। केन्द्रमें चन्द्र मंगल योग होना लक्ष्मीदायक योग है 'चन्द्र-मंगल संयोगे लक्ष्मी गेहं न मुञ्चति' यह योग स्थूल राशिमानसे है। फलका विचार

तर्कसे दो प्रकारसे होता है—पहला राशिमान, दूसरा नक्षत्रमान। पहला स्थूल फलदाता है जबकि दूसरा सूक्ष्म फलदाता है। स्थूल-बलसे सूक्ष्म-बल अधिक बलवान् रहता है यह बात बिना उदाहरणके समझमें नहीं आ सकती। अतः इतना पहले ध्यानमें रखना चाहिये कि ग्रहोंका गुण धर्म और नक्षत्रोंके स्वामीके गुणधर्मका भी तारतम्य देख लें। नवग्रह तीन प्रकारके गुणोंमें विभक्त किये गए हैं। बुध गुरु सात्विक ग्रह हैं। रवि, चन्द्र, शुक्र, राजसिक धर्म वाले हैं। मंगल, केतु, शनि, राहु तामसिक प्रकृति वाले हैं। सात्त्विक गुण प्रधान ग्रह जब सात्त्विक क्षेत्रमें और सात्विक ग्रहके साथ रहते हैं तब उनका फल उत्कृष्ट बनता है। राजसिक गुणप्रधान ग्रह जब सात्विक ग्रहके साथ सात्विक क्षेत्रमें वास करते हैं, तब अच्छा फल देते हैं। जब वह तामसिक ग्रहके साथ तामसिक क्षेत्रमें बनते हैं तब अनिष्टकारक फल उत्पन्न करते हैं। तामसिक ग्रह तामसिक क्षेत्रमें बसते हैं तब बहुत नेष्ट फल उत्पन्न करते हैं। जब तामसिक ग्रह सात्विक या राजसिक ग्रहके साथ सात्विक क्षेत्रमें रहते हैं या अकेले राजसिक क्षेत्रमें रहते हैं तब भी वे अनिष्ट फलके द्योतक हैं। स्वयं तामसिक ग्रह ता.सिक क्षेत्रमें रहनेसे विशेष अनिष्ट फल देते हैं। इसमें शंकाका स्थान नहीं है। अधुना यह विचारना आवश्यक है कि कौन क्षेत्र सात्विक, राजसिक या तामसिक है। इसलिए नक्षत्रोंके स्वामी समझने चाहियें। बारह राशियोंको भगणके सत्ताईस नक्षत्रोंमें विभक्त की गई हैं। नक्षत्रोंके स्वामी निम्नलिखित हैं—अश्विनी, मघा, मूलका स्वामी केतु है। भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ाका स्वामी शुक्र है। कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ाका स्वामी सूर्य है। मृगशीर्ष चित्रा, धनिष्ठकाका स्वामी राहु है। पुनर्वसु विशाखा, पूर्वाभाद्रपदाका स्वामी गुरु है। पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्रपदाका स्वामी शनि है। आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवतीका स्वामी बुध है।

अब वाचकगण समझ सकेंगे कि कौन कौन नक्षत्र सात्विक ग्रहकी आज्ञामें रहते हैं। और कौन कौन नक्षत्र राजसिक गुणप्रधान हैं और कौन कौन नक्षत्र तामसिक ग्रहके माने गए हैं।



अपना मत प्रतिपादन करनेके लिए उक्त कुण्डली में मेष मग्न है। चन्द्र और मंगल दोनों केन्द्रमें हैं जिसमें मंगल अपनी उच्च राशिमें और चन्द्र भी स्वग्रही है। दोनों ग्रह स्थान बली भी हैं। इतना होते हुए भी इस कुण्डलीका जातक लक्ष्मीपति नहीं है। मैंने यह कुण्डली कतिपय विद्वान् और अच्छे ज्योतिषियों (जो यही धन्धा करते हैं) के सामने समीक्षाके लिये रक्खी थी, किन्तु सबने यही उत्तर दिया कि जातक लक्ष्मीपति होना चाहिए। मैंने उन विद्वानोंको नम्रतासे कहा कि—यह कुण्डली पुस्तकमें लिखी हुई बातोंसे भिन्न बात बताती है। इस कुण्डलीका जातक एक साधारण स्थितिका कलर्क है। जातक स्वयं जिस अवस्थामें समय काट रहा है—यह बात सच्ची कि ग्रंथोंमें लिखी हुई बात सच्ची? ज्योतिष बड़ा ही गहन विषय है। इस विषयमें बुद्धि विस्तार परम आवश्यक है। ग्रंथोंमें अनुभवमें आती हुई प्रत्येक पत्रिकाकी समीक्षा कभी नहीं मिल सकती। ज्योतिषी बहुत उच्च कोटिका तार्किक होना चाहिए, यदि ज्योतिषी इष्टदेवका उपासक नहीं होगा तो भी उसके तर्कका कोई प्रभाव नहीं पडेगा। हां, तो यहां प्रकृत विषय चन्द्र मंगल योगका है। अब पाठकगण यह बात समझ सकेंगे कि चन्द्र राजसिक ग्रह, और

शनि तमोगुण प्रधान ग्रह है। रजोगुणी चन्द्रका शनिके पुष्यमें होने से वह (चन्द्र) तामसिक प्रधान हो गया। मंगल तामसिक ग्रह अपने ही नक्षत्रमें रहनेसे पूर्ण तामसिक बनता है। अतः इस अवस्थामें चन्द्र-मंगल योगका शुभ फल नष्ट हो जाता है। इसी कारणसे जातक पुलिसकोर्टमें एक राईटर है। पत्रिकाओंमें बहुतसे स्थलोंमें अच्छे-अच्छे योगोंका फल जो पत्रिका देखकर पंडित लोग कहते हैं, उनका फल जातकको बड़ा हास्यजनक लगता है। मेरे भ्रातृगण इस बातके ऊपर ध्यान देंगे और योगोंकी समीक्षा अपने अपने अनुभवमें उतारेंगे तो उनको बराबर अनुभव होगा कि मेरा लिखना बहुत ठीक है। फिर भी मैं कहता हूँ कि ज्योतिषका विषय महान् समुद्र सरीखा है।

इन्हीं तीन गुणोंकी पद्धतिका मैंने व्यापार-ज्योतिष विषयमें भी परीक्षण किया है और इस बातमें भी मुझे अच्छा फल दिखाई पड़ा है। पाश्चात्योंने ग्रहों की दृष्टिका विचार अपनी पद्धतिसे निराला निर्माण किया है। मेरे बहुतसे भाइयोंका यह मत है कि इस विषयमें अपने पूर्वाचार्योंसे पाश्चात्य विद्वान् बहुत ही आगे बढ़ गए हैं। इस प्रकार पाश्चात्य भक्त अन्ध विश्वासी भविष्य बताने वाले व्यापारिक ज्योतिषियोंने अपने ग्राहकोंको कई बार हानिके गड्ढेमें उतारा होगा। पाश्चात्योंका कहना है कि त्रिकोण योग बहुत अच्छा तेजी करने वाला योग है। अप्रैल सन् १९४४ में शुक्र और गुरु अपनी अपनी उच्च-राशियोंमें थे और इनका त्रिकोण योग तिथि २४ अप्रैलके दिन बनता था। कुछ ज्योतिषी बन्धुओंने इस योगके प्रारम्भ होते ही तिथि ५ अप्रैलसे ति० २४ तक बहुत ऊंचे भावोंकी रुईके लिए घोषणा की थी, परन्तु ग्राहकोंके मन्द-भाग्य वशात् उनका कहना विरुद्ध निकला। ति० ५ अप्रैलसे बाजारमें मन्दी होनी प्रारम्भ हुई, वह तिथि २४ तक उत्तरोत्तर मन्दी ही होती गई।

जैसे चन्द्र मंगल योग ऊपर बताए हुए योगसे विफल गया है, वैसा ही यहां पर पाश्चात्योंका अच्छेसे अच्छा त्रिकोण योग भी विफल गया। मैंने इस विषयमें कतिपय विद्वान् व्यापारी ज्योतिषज्ञोंसे पूछ-ताछ की किन्तु, उनकी ओरसे उत्तर यही मिला कि "सरकारकी रुईके ऊपर आंख होनेके कारण यह योग विफल गया" आश्चर्य है कि मृत्युलोककी सरकारके आगे दैवज्ञ नम्रता पूर्वक नमन कर देते हैं। क्या सचमुच आकाशस्थ ग्रह इतने निर्बल हो गए कि मृत्युलोककी सरकारके कण्ट्रोल असरमें आपड़े। ग्राहकोंको समझाने के लिए यह रीति ठीक होगी किन्तु इसमें व्यापारी ज्योतिष शास्त्रकी घोर उपेक्षा है। हमारे यहाँ त्रिकोण योग जैसे शुभ योगको भी दो प्रकारका माना है। शुभ नवम-पंचम और नेष्ट नवम-पंचम। कर्कसे मीनका नवम-पंचम योग नेष्ट नवम पंचम गिना गया है। हमारे पूर्वाचार्योंने नवम-पंचमके भी अच्छे और बुरे ये दो भाग बताए हैं। हमारा ज्योतिष पूर्ण है कि पाश्चात्योंका ? अब आप आगे देखिये, ति० ७ अप्रैलको शुक्र मीन राशिमें उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें प्रवेश हुआ और गुरु आश्लेषा नक्षत्रमें चला आता था। आश्लेषा बुधका नक्षत्र है कुछ सात्विक गुणी है। शुक्र उत्तराभाद्रपदामें शनिके नक्षत्रमें था। शनि तामसिक ग्रह है। यहां पर साफ दिखाई देता है कि कर्कका गुरु और मीनका शुक्र अपनी उच्च राशिमें होते हुए स्थूल मानसे जो बड़ी बड़ी तेजी कारक योग बतला रहे थे वही योग सूक्ष्म पद्धतिसे बिलकुल नष्ट हो गय था। इसी प्रकारसे मेरी हार्दिक विनती है कि ज्योतिषी भाइयोंको नक्षत्र की सूक्ष्म पद्धति एवं उपरोक्त त्रिगुणात्मक पद्धति अवश्य अपने व्यवहारमें उतारनी चाहिये। इस रीतिके उपयोगसे ज्योतिषी भाइयोंकी यश रेखा बढ़ेगी और आर्यज्योतिषका सच्चा आविष्कार होगा। यह बात मैंने किसी ज्योतिषी पर आक्षेप करने या अभिमान बुद्धिसे नहीं लिखी है। चन्द्र-मंगल-योग परसे यह बात उत्पन्न हुई है और मार्ग दर्शक होनेके लिये शुभेच्छा पूर्वक एक मेरी अन्तःकरणकी कुंजीरूप यह बात यहां पर प्रकाशित की गई है।

हमारे यहां व्यापारिक ज्योतिषकी बहुतसी सामग्री

विद्या

[लेखक—महामहोपदेशक श्री पं० श्रीकृष्ण जी शास्त्री प्रधान स० ध० उपदेशक मण्डल]

महर्षि चाणक्य प्रणीत अर्थशास्त्रके आधार पर विद्याओंका विवेचन किया जाता है। चाणक्यका ही प्रसिद्ध नाम 'कौटिल्य' है। इसीलिये यह अर्थशास्त्र "कौटिल्य अर्थशास्त्र" के नामसे प्रसिद्ध है। बस इसको छोड़कर संस्कृत-साहित्यमें आजकल कोई साङ्गोपाङ्ग अर्थशास्त्र नहीं मिलता। हां, इस ग्रंथमें अनेक अर्थशास्त्रके आचार्योंका पवित्र स्मरण आता है। हमारा यह लेख कौटिल्य-अर्थशास्त्रके पहले अधिकरणके दूसरे तीसरे और चौथे अध्यायोंसे सम्बन्ध रखता है! विद्याका लक्षण क्या है--

याभिर्धर्मार्थौ विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ॥ ८ ॥

अर्थात् विद्या उसे कहते हैं—जिससे धर्म और अर्थका ज्ञान प्राप्त हो। महर्षिने संसारकी सब विद्याओंको चार वर्णोंमें विभक्त किया है। क्रमशः उन चारों वर्णोंका वर्णन किया जाता हैं।

सबसे पहली विद्याका नाम है—आन्वीक्षिकी। इसीका नाम विज्ञान है, तर्क है, सांख्य है, योग हैं। इसीमें लोकसंग्रह-कारक सभी नीति-ग्रन्थ अन्तर्भूत होते हैं। जब कभी संदेह पड़ जाय इसी आन्वीक्षिकी विद्यासे शेष तीनों विद्याओंकी प्रधानता और अप्रधानताका युक्तियोंसे निर्धारण होता है, यही सुख और दुःखमें चित्तको स्थिर रखती है। इसी विद्यासे विचारशक्ति, वाक्शक्ति और कर्म करनेमें निपुणता प्राप्त होती है, इसीलिये—

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्व धर्माणां शश्वान्वीक्षकीयता ॥१२॥

प्रातः स्मरणीय ज्योतिषाचार्य वराहमिहरकी ओरसे मिली हुई प्रतीत होती है। वराहमिहिरजीने इस विषयमें बहुत गहन विचार प्रकाशित किये हैं, जो हम आगामी लेखमें बतायेंगे।

अर्थात् आन्वीक्षिकी विद्या ही सदा अन्य सब विद्याओंका प्रकाश करने वाली है। संसारके सभी प्रकारके कर्मोंके साधनका उपाय है। और यही विद्या सभी धर्मोंका आश्रय है। आजके स्कूल कालिजोंकी साधारण पढ़ाई आन्वीक्षिकी विद्याका विकृत रुपान्तर है।

चाणक्यने तीसरे अध्यायमें त्रयी नामक दूसरे नम्बरकी विद्याका वर्णण किया है। लक्षण—"सामवेद ऋग्वेद और यजुर्वेदको त्रयी विद्या कहते हैं"। अथर्ववेद और महाभारतादि इतिहासको भी वेद ही कहा जाता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष—ये वेदों और त्रयीके छः अङ्ग हैं, ये सभी त्रयी विद्यामें निविष्ट हैं। प्रश्न होता है कि इस त्रयी विद्यासे जगत्का क्या उपकार होता है? महर्षि चाणक्यने इसके निम्नलिखित उपकार लिखे हैं—त्रयीविद्यासे प्रोक्त यह धर्म चारों वर्ण और आश्रमोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापन करनेसे संसारका उपकार करता है।

चारों वर्णोंका अपना-अपना धर्म

(क) ब्राह्मणका स्वधर्म है—अध्ययन और अध्यापन, यजन और याजन, दान और प्रतिग्रह।

(ख) क्षत्रियका धर्म है—अध्ययन, यजन, दान, शस्त्र द्वारा जीविका करना और लोकरक्षण।

(ग) वैश्यका स्वधर्म है—अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य व्यापार।

(घ) शूद्रका स्वधर्म है—द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा करना। कृषि पशु पालन और व्यापार, शिल्प, गाना बजाना और नाटक खेलना आदि।

अब त्रयी विद्यासे चारों आश्रमोंके धर्म निरूपण किये जाते हैं।

(ङ) ग्रहस्थके निम्नलिखित धर्म हैं—१—अपने अपने वर्णमें कहे हुए कर्मोंके द्वारा आजीविका करना। २—अपने अपने गोत्रसे भिन्न गोत्रमें अपने तुल्य कुलमें विवाह करना। ३—ऋतुकालमें भार्यासे गमन करना। ४—देवता, पितर, अतिथि और भृत्योंके निमित्त धनका व्यय करना। ५—सभी आश्रितोंके भोजन करनेके बाद भोजन करना।

(च) ब्रह्मचारीके निम्नलिखित स्वधर्म हैं— १ स्वाध्याय। २ अग्निहोत्र। ३ स्नान। ४ भिक्षा मांगकर लाना (जिसका आजकल भी संस्कृत विद्यार्थियोंमें प्रचार है) यदि गृहस्थधर्मकी इच्छा न हो तो मरण पर्यन्त गुरुके पास ही रहना।

(छ) बानप्रस्थका स्वधर्म है—१ ब्रह्मचर्यका पालन करना। २ भूमि पर शयन करना। ३ जटा और मृगचर्मका धारण करना। ४ अग्निहोत्र। ५ त्रिकाल स्नान सन्ध्या। देवता अतिथि और पितरोंका पूजन तथा बनके कन्दमूल से आहार करना।

(ज) परिव्राजक—सन्यासीका स्वधर्म है— १—दशों इन्द्रियोंका दमन। २ सांसारिक किसी भी झमेलेमें न पड़ना। ३ चल और अचल किसी प्रकार की सम्पत्तिको न रखना। ४ सब प्रकारके संगोंका त्याग। ५ भिक्षावृत्ति। ६ जंगलमें निवास। ७ तत्रापि अनियत, अर्थात् (आज कहीं कल कहीं, प्रातः कहीं सायं कहीं) एक ही स्थान पर मठादि बनाकर न रहना। ८ बाह्य और आभ्यन्तरकी पवित्रता।

(झ) सबके समान्य धर्म निम्नलिखित हैं—

१ अहिंसा। २ सत्य। ३ शौच। ४ छिद्रान्वेषण ५ दुखी पर दया करना। ६ क्षमा। ७ शमन। ८ दमन। ९ धैर्य। १० अस्तेय।

(ञ) भर्था विद्या द्वारा प्रतिपाद्य धर्मको वर्णाश्रम भेदसे तथा सामान्य रूपसे वर्णन करनेके बाद महर्षि कौटिल्यने स्वधर्म पालनेके फलका वर्णन करते हुए लिखा है कि स्वधर्म पालन स्वर्ग प्राप्तिका और मोक्षका साधन है। धर्म मर्य्यादाके अतिक्रमण से लोक वर्णसंकर हो जाते हैं। संकर हो जानेसे लोकका उच्छेद हो जाता है।

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्यचेह च नन्दति ॥

उपर्युक्तमें दूसरे नम्बरकी त्रयी विद्याका वर्णन समाप्त करते हुए ग्रंथकारने सामयिक राजाको आदेश दिया है कि राजा ऐसा प्रबन्ध करे कि कोई भी स्वधर्मका अतिक्रमण न करे। जिसके राज्यमें सब लोक स्वधर्मनिरत हो वह राजा इस और उस लोकमें आनन्द पाता है।

तीसरी विद्याका नाम है—'वार्ता-विद्या'। जिसमें कृषि, पशुपालन और वाणिज्यका वर्गीकरण है।

वार्ता-विद्याके पूर्ण ज्ञानसे विद्यार्थी जगत्का निम्नलिखित उपकार कर सकते हैं—१ अन्न उत्पादन करना। २ गौ घोड़ा आदि उपकारी पशुओंकी प्राप्ति। ३ स्वर्ण प्राप्ति। ४ ताम्रादि अन्य धातुओंकी प्राप्ति। ५ बहुतसे नौकरों पर प्रभुता। ये सभी वस्तुयें राजा और प्रजाका उपकार करने वाली हैं। वार्ता विद्याके पूर्ण ज्ञानसे राजा अपने कोषकी और कोष प्रयोगसे सेनाकी, सेना पुष्टिसे नीतिज्ञराजा स्वपक्ष और परपक्ष दोनोंको वश कर सकता है।

चौथी विद्याका नाम है — दण्ड-नीति-विद्या। जिसका वर्णन करते हुए अर्थशास्त्री चाणक्यने लिखा है कि आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता इन तीनों विद्याओंकी उन्नति और रक्षाका साधन हैं दण्ड, उसे दण्ड-नीति कहते हैं।

दण्ड-नीति-विद्याके जानने और सुप्रयोगसे निम्नलिखित लाभ होते हैं। १ अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति। २ लब्ध वस्तुओंकी रक्षा। ३ रक्षितोंकी वृद्धि। ४ बढ़े हुए अर्थका पूज्य देव पितर आदियोंके लिये व्यय करना। ये सभी लाभ दण्ड नीतिके बलपर ही हो सकते हैं।

अर्थशास्त्रकी उपादेयता

[लेखकः—श्री रामानन्द शर्मा 'सारस्वतरत्न']

[इस लेखके लेखककी आयु अभी १४ वर्षकी ही है। छोटी आयुमें ही इस बालकने पठन पाठनमें पर्याप्त उन्नति और साहित्यिक क्षेत्रमें भी अच्छी योग्यता प्राप्त की है। हिन्दी संस्कृतकी भावपूर्ण ओजस्वी कविता भी यह बालक अच्छी बनाता है। गतवर्ष जयपुरमें हि० सा० स० के अवसर पर इस बालकने अपनी कविताएं हमें सुनाई थी। बालक होनहार एवं प्रतिभाशाली है। आशा है भविष्यमें यह बालक साहित्य और समाजकी अच्छी सेवा कर सकेगा। ऐसे बालकोंको प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन सब ओरसे मिलना चाहिए। —सम्पादक]

मैंने 'श्रीस्वाध्याय' के उस अङ्कमें, जिसे सबसे पहले पढ़ा था, श्री० त्रिवेदी जीके लेखमें 'राष्ट्रालोक' का—

"स्वातन्त्र्यं भिक्षया नैव कदाचिदपि लभ्यते।
योगक्षेम समर्थका राष्ट्रशक्तिः प्रभाविनी"॥

श्लोक मुझे आज भी याद है। इसपर जब मैं मनन करने बैठता हूँ, तो मुझे सबसे प्रमुख अर्थशास्त्रकी उपादेयता प्रतीत होती है। जिसकी किरणें आज अनेक शास्त्रोंके घनान्धकारमें विलीन सी हो चुकी हैं। त्रिवेदीजीके भाव, और कल्पनाका यह पहला निराकार परिचय था। जयपुर साहित्य संमेलन में उसी भाव और कल्पनाका साकार परिचय अवश्य हो चुका था, किंतु आज भी वह कल्पनामय परतंत्र भारतकी रूपरेखा और उस श्लोकके भाव मुझे 'अर्थशास्त्रकी उपादेयता, लिखनेको प्रेरित कर रहे हैं, और स्यात् ये पंक्तियां कुछ भार हल्का करनेको समर्थ-सी हो सकी हैं।

अर्थशास्त्रको मैंने प्रयोजन शास्त्रके रूपमें माना है। आजकल प्रयोजन सिद्धिके लिये धनकी सबसे पहले आवश्यकता होती है, मैंने 'अर्थ' का भाव धन भी ग्रहण किया है। जिस शास्त्र द्वारा प्रयोजन (धन रूपात्मक या और किसी भी रूपात्मक हो) सिद्ध हो, अथवा हो जाय, वह भाव ही अर्थशास्त्रकी परिभाषा है। आदि कालमें जगत्स्रष्टाको भी जन-विस्तारके प्रयोजन या अन्यान्य प्रयोजनके लिये, जिस शास्त्रकी आवश्यकता हुई होगी, उस शास्त्रकी सबसे पहले सृष्टि हुई होगी, और वह शास्त्र, अन्यान्य शास्त्रोंका रूढ़मूल बना होगा। जिसका विकृत रूप हमें आजकल भी मिलता है, या उस कालकी सृष्टिके ग्रन्थ अब भी निलयमें निहित हों। पुराणों द्वारा ज्ञात होता है कि देवासुरोंमें अनेकों युद्ध हुआ करते थे, जिन्होंमें देवता लोग नीति बलसे असुरोंको हराया करते थे। 'समुद्र मंथन' पुराणकी बहुत पुरानी कहानी है। उसके पूर्वोत्तर संघर्ष नीतिके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अमृतके बंटनेके समयकी भगवान् विष्णुकी नीति अर्थशास्त्रकी पुरातनताको प्रमाणित करती है। स्मृति, वेद, उपनिषद् आदियोंमें जिनके बल पर हम खड़े होकर आर्यत्वका 'वाद' करते हैं, ईश्वरके लिए सम दर्शी कहा गया है। वेदके 'खं-ब्रह्म' का भाव है शून्य ब्रह्म मय। तर्क शास्त्री लोग 'शून्य' को आकाशका विपर्यय मानते हैं। और युक्तिवादसे सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक वस्तुमें आकाश वर्तमान है। इससे सिद्ध होता है कि निखिल विश्व

दण्ड-नीति-विद्यामें ही संसारकी रक्षा अन्तर्निहित है।

ऊपर हमने महर्षि चाणक्योक्त चारों विद्याओंका वर्णन कर दिया है। इन्हीं चारों प्रकारकी विद्याओं को जानने वाले विद्यार्थी जब भारतमें प्रकट होंगे तभी भारतका कल्याण होगा।

में आकाशकी सत्ता विद्यमान है। "यज्ञोंमें विष्णु" श्रुतिका भाव है कि विष्णु यज्ञरूप हैं और यजुर्वेदके प्रकरणोंसे स्पष्ट है कि महायज्ञसे विश्वकी सृष्टि हुई है और "तस्माद् यज्ञात्" आदिसे स्पष्ट है कि उस यज्ञ मूर्त्तिके ही विनिर्मित साङ्ग वेदादि हैं। इससे सिद्ध हुआ कि विष्णु भगवान् भी सम द्रष्टा हैं। गीताके "यदा यदा हि ......" का भाव है कि भगवान् स्वयं अवतरित होते हैं; और उनके अवतारोंमें तत्तत्सत्ता और भावोंका प्रसार होता है; फिर उस ईश्वरके अवतारने समदर्शी कहलाते हुये, असुरोंको सुरापान कराकर द्वैधी भाव क्यों किया? यदि कहो असुर पापी थे; तो यज्ञकी आत्मा 'ज्वाला' जिसका प्रभाव जलाना ही है; और जिसका स्वभाव जलाना ही है ऐसे तेजः पुञ्जके सामने क्या असुरोंके पाप नहीं जल गये? यदि जल गये तो पुण्यवानोंकी ईश्वर रक्षा करते हैं या अरक्षा? यदि नहीं जले तो क्या असुर प्रबल थे? इन सबका केवल उत्तर यही है कि उस समय स्वयं श्रीशने प्रकट होकर अर्थ-शास्त्रकी उपादेयता दिखलाई थी। जिसको कौटिल्यने भी व्यक्त किया है—

"यः करोति प्रमादं च वर्धयन्त्यरिमेकदा।
रोगं चैवालसं चैव स पश्चात्तेन हन्यते"॥

उस समय केवल अर्थ पूर्तिके लिये असुरोंको सुरापान कराया गया था; क्योंकि नहीं तो असुरोंके मारे भूतल त्रस्त हो उठा था, ऐसा पुराणोंसे विदित होता है। इसी प्रकार महाभारतमें जयद्रथ वधके समय, रामावतारमें सुग्रीव मैत्री व बाली वधके समय; नीति शास्त्रकी उपादेयता प्रकट की गई थी। कुछ लोग इसे आसुरी विद्या बतलाते हैं, किन्तु स्वयं ईश्वर जो जगत्का कर्ता, भर्ता, हर्ता कहलाता है, उसके प्रणीत शास्त्रको मैं नहीं समझता कि किस प्रमाण पर ऐसा मानते हैं। बल्कि देखा जाय तो एक प्रकारसे संसारका रुढ़ मूल ही अर्थशास्त्र है। क्योंकि संसार स्वयं अर्थमय है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रमें विरोध है और इस पर वे महाभारतके द्रोण वधको तथा अश्वत्थामाके द्रौपदी-पुत्र-वधका प्रमाण देते हैं। और नीति-शास्त्रके 'अहिंसावाद' को उदाहरण स्वरूप समझते हैं। किन्तु मैं तो धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रको एक दूसरेका विपर्यय मानता हूँ, क्योंकि संसारका रुढ़मूल धर्म भी है और अर्थ भी। जिस प्रकारकी सुरापानकी शंका है, उसीका दूसरा भेद लेती हुई द्रोणवध वाली शंका है। धर्मशास्त्रमें लिखा भी है कि—शत्रुको उत्पन्न न होने दें, उत्पन्न हो भी तो बढ़ने न दें, बढ़े भी तो उसका उच्छेदन करदे। यह बात नीतिशास्त्रमें अक्षरशः स्पष्ट है। दूसरे जब समक्ष प्रतिपक्षी है, चाहे वह ब्राह्मण है या क्षत्रिय उसे मारना ही धर्म है "आपत्ति काले मर्यादा नास्ति" ऐसी दशामें इसे पाप भी नहीं कहा जा सकता। और यदि यही बात है तो सहस्रबाहुने ब्राह्मण जमदग्नि का, परशुरामने अपनी माताका, भगवान् कृष्णने गोरूप असुरका क्यों विनाश किया? क्या वे पाप नहीं जानते थे? राम जैसे वैष्णवावतार जो निष्कलङ्क माने जाते हैं, केवल एक सीताकी इच्छा पर निर-पराध मृगको मारनेके लिये क्यों चल दिये? धर्म-राज युधिष्ठिरने जुएको अधर्म क्यों नहीं माना? सभीमें नीतिशास्त्रकी निपुणता थी; जिसके कारण वे सब कुकर्मको सुकर्म मान गये। इन्हीं कारणोंसे तो नीतिशास्त्र विश्व मान्य है, और विश्व भरके प्रकाण्ड विद्वान् भारतीय अर्थशास्त्रसे चमत्कृत हैं। दूसरी बात नीतिशास्त्रके 'अहिंसावाद' की है। भगवान् बुद्ध वैष्णवावतार माने जाते हैं। उन्होंने 'अहिंसावाद' का प्रचार इसलिये किया था कि आसुरी वृत्तियों द्वारा निरर्थक रक्त-पात न हो। नहीं तो कौटिल्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान्ने अपने आदेशसे नन्द वंशका नाश उस निरीहतासे क्यों कराया? जो आज भी इतिहासमें रक्तसे लिखा हुआ है! क्या चाणक्य स्वयं ब्राह्मण नहीं था? और उसने एक अकेलेके वैयक्तिक अपमानसे ही इतना विशाल साम्राज्य और नन्दवंशकी नींव क्यों उखाड़ दी?

यदि अपमान ही था तो केवल नन्दको मरवा देता ? उसने निरपराध सारे वंशको क्यों मरवाया ? उस समय कारण यही था कि कौटिल्य नीतिको जानता था, वह समझता था कि "पयः पानं भुजङ्गानां केवल विषवर्द्धनम्" यह नन्द, जिसने एक ब्राह्मणका अमपान किया है, इसके वंशके लोग भी ऐसा ही करेंगे, क्योंकि कहावत है—"पैर तो पेटको ही नमते हैं" इसलिये ये सांपके बच्चे अवश्य बड़े होकर पितृ-द्रोहका बदला लेनेको डसेंगे, इसलिये उसने अपनी नीति द्वारा नंदवंशका नाश करवाया। यदि उक्त सिद्धान्त माननेवाले धृष्टता क्षमा करें तो एक बात और निवेदन करदूं कि 'अहिंसावाद' आपको यदि सर्वत्र प्रिय है तो मैं आपके तमाचे लगाता चलूं और आप खाते चलें; देखिये थोड़ी देरमें ही आपको 'अहिंसा-वाद का मर्म' "शठे शाठ्यं समाचरेत्" ज्ञात होता है या नहीं ?

आजके परतंत्र भारतमें भी क्या नहीं है ? महात्मा गांधी जैसे देश सेवी, जवाहरलाल नेहरू जैसे त्यागी, महामना मालवीय जी जैसे व्रती, टण्डन जी जैसे तपी, आदि आदि अनेकों महापुरुषोंकी दिव्य विभूतियां अब भी प्रकाशमान हैं; ऐसी दशामें केवल मुझे एक कमी अखरती है तो वह है कौटिल्य जैसे अर्थशास्त्री की ! हमें अब सावधानीसे नीति-शास्त्रको प्रत्येक शालाओंमें स्थापित कराकर जन-जन में उसका प्रसार करवा देना चाहिये; जिससे साधारण वर्ग भी इसकी उपादेयताको ग्रहणकर भावी मंगल दिनके लिये तत्पर हो जाय और भारतका बच्चा बच्चा हमें कौटिल्य-सा दिखाई दे।

खुबानीकी खेती

[लेखक—श्री पं० सन्तराम जी शर्मा]

खुबानीका फल पका हुआ भारी, वीर्यवर्धक, बहुत मीठा और पुष्टिकारक होता है। ताजे फलोंका सेवन मनुष्यके लिए बड़ा लाभदायक होता है। कई बार हृदयमें गर्मीके बढ़नेसे मल भली प्रकार बाहर नहीं निकलता। शरीरमें अपरिपक्व भोजन इकट्ठा रहता है जो शरीरमें एक प्रकारका परिवर्तन उत्पन्न करता है, इसके कारण शरीरमें अधिक पीड़ा उत्पन्न होती है, जिससे शरीर भारी हो जाता है। यह हानिकारक विकार केवल ताजे फलोंके सेवनसे और फल खानेके पश्चात् अधिक जल पीनेसे दूर हो सकता है। इस प्रकार एक-दो सप्ताह तक करनेसे शरीरको सब अपरिपक्व भोजन सरलतासे बाहर निकल आता है। जो लोग अधिक फल खाते हैं उनकी शरीर कान्ति अच्छी रहती है और उनका वर्ण साफ सुन्दर रहता है।

खुबानीका वृक्ष अधिकतर शीतल स्थानों पर उत्पन्न किया जाता है। इसके वृक्षके लिए ऐसी भूमि चाहिए जहां पर रेत और चिकनी मिट्टी बराबर बराबर भागमें हो। परन्तु भूमिके अनुसार भी इसका वृक्ष लगाया जाता है, जिसका वर्णन आगे आवेगा।

वृक्षोंके बीचका अन्तर

खुबानीके वृक्षको २०×२० से लेकर ३०×३० फुटके अन्तरमें लगाया जाता है। जिस जगह अधिक गहरी भूमि हो वहाँ पर इसके वृक्षको दूर दूर पर लगाया जाता है और जहां पर अधिक गहरी भूमि नहीं हो वहां पर कुछ समीप लगाते हैं।

वृक्षको उत्पन्न करना

गुठलीसे उगे हुए वृक्षको 'स्टोक' कहते हैं। खुबानी कई प्रकारके 'स्टोक' पर तैयार करते हैं।

जैसे—खुबानी, आड़ू, आलूचा। आड़ू के स्टोक पर लगाई हुई पैबन्द रेतीली भूमिके लिए बड़ी उत्तम समझी जाती है। आलूचाके स्टोक पर उत्पन्न किया हुआ वृक्ष चिकनी भूमिके लिए बड़ा लाभदायक समझा जाता है।

इन्टर क्रोप्स (Intercrops)

पहले और दूसरे वर्षमें वृक्षोंके बीचमें कई प्रकारकी सब्जियां लगाई जाती हैं। जैसे—पालक; सलाद, फरांसबीन, टमाटर और आलू आदि।

गुडाई और छांट आदि

वृक्षके लगाते समय निम्न बातोंका ध्यान रखना चाहिये—(१) वृक्ष नरसरीसे उखाड़ कर देखना चाहिए कि इसमें कोई रोग तो नहीं है। (२) जितनी वृक्षकी जड़ें कटी हों उसके अनुसार ऊपरसे भी काटना चाहिए। (३) जितना गहरा नरसरीमें दबा था उतना ही गहरा लगाना चाहिए। पहले समयकी भांति अब खुबानी के बागमें अधिक गुड़ाई नहीं की जाती, केवल हल चलाकर छोटी छोटी घासको उखाड़ना ही उचित समझा जाता है। इसका वृक्ष शीघ्र बढ़ता है इस कारण इसकी छांग अवश्य ही प्रति वर्ष होनी चाहिए। छांग द्वारा फल शीघ्र आता है और वृक्ष सुन्दर बनता है। फल तो बिना छांग के भी आता है परन्तु सुन्दरताका भी होना आवश्यक है। सुन्दर वृक्ष का फल भी सुन्दर होता है।

वृक्ष की जीविका (Fertilizers)

वैसे तो नाईट्रोजन भी इसके वृक्षके लिए उत्तम समझा जाता है परन्तु इससे वृक्ष बड़ा नहीं होता। २ से ७ पौंड तक प्रति वृक्षके लिए ठीक है। जहां पर गाय का गोबर मिल जाय वहां पर एक मन खाद प्रतिवर्ष देनी चाहिए।

हरी खाद या कवर क्रोप्स (Cover crops)

हरी खादसे बहुत लाभ होता है, परन्तु इसकी परिपाटी सब जगह नहीं है। एक एकड़के लिए राई १५–२० पौंड, जो ५० पौंड तक बीजा जाता है। इसके अतिरिक्त चना, मसूर, मेथी, उड़द आदि भी बीजते हैं। इनके फूल आने पर हल चलाकर भूमि में दबा दिया जाता है।

फल की छांट

खोबानीका वृक्ष सदैव ही अधिक फल लाता है, इस कारण फल छोटा हो जाता है। फलको हाथ द्वारा तोड़ा जाता है। इसके एक एक गुच्छेमें पांच पांच फल तक लगते हैं। यदि फल थोड़े हों तो प्रति फल डेढ़ इंच एक दूसरेसे दूर रहना चाहिए। यदि अधिक हों तो तीन तीन इंच दूरी पर चाहिए। यदि छांगके समय इसकी फल वाली टहनियां न्यून कर दी जावें तो हाथसे फल न तोड़ना पड़ेगा, परन्तु छांग करना अनुभवी पुरुषका कार्य है।

शीत (पाले) से वृक्षकी रक्षा

पश्चिमी देशोंमें तो खुबानीके बागोंमें जाड़ेके समय हीटर (Heater) से गर्मी देते हैं, परन्तु इसका चलन (रिवाज) हमारे भारतवर्ष में बिल्कुल नहीं।

पके फलके तोड़ने का समय

यदि फल दूर देशमें भेजना हो तो जिस समय फल पीला हो गया हो और अधिक न दबता हो तब तोड़ा जाता है। यदि फल सुखानेके लिए तोड़ना हो तो खूब पकना चाहिए। सुखाने योग्य वही जातियां होती हैं जो अपना फल सबसे पहले पकाएं। देरी से पकाने वाली जातियां इस कार्यके लिए उत्तम नहीं समझी जातीं। फल कई प्रकारसे सुखाये जाते हैं—(१) सूर्यकी गर्मी द्वारा (२) बिजली द्वारा। पश्चिमी देशोंमें जहां पर फलोंका अधिक कार्य है वहां पर बिजली द्वारा फल सुखाते हैं। हमारे भारतवर्षमें तो काश्मीर आदि देशोंमें केवल सूर्य की गर्मीसे ही सुखाये जाते हैं।

विधि

फलको मध्यमेंसे (बीचों बीच) काटकर

गुठली फेंक देते हैं, फिर लकड़ीकी ट्रे में (Wooden trays) सुखाने डालते हैं। ३×६ फुटकी ट्रे में ३६ पौंड काटा हुआ फल आता है इसलिए एक टन या २८ मनके लिए ऐसी ५०–६० ट्रे चाहियें। जिस ट्रे में एकबार फल सुखाया जाता है फिर उसको तेज धार वाले पम्पसे धो लेना चाहिए।

प्रिय पाठकों! मैं केवल अमेरिका देशकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध जातियोंके विषयमें कुछ वर्णन करता हूँ, जिनके विषयमें यह कहा जाता है कि पटियाला नरेशकी नरसरीसे इन जातियोंके वृत्त भारतके शीतल प्रान्तोंमें मंगवाते देखे गये हैं।

(१) रॉयल (Royal) यह जाति सन् १८३० में फ्रांसमें उत्पन्न की गई थी, पश्चात् योरोपसे अमेरिकामें मंगवाई गई। यदि फल विरला रखा जावे तो बहुत बड़ा सुन्दर स्वादिष्ट होता है। रंगमें पीत, सूर्यदर्शी भाग रक्तवर्णका होता है। सुखाने और दूर देश भेजने योग्य होता है। वृत्त बड़ा होता है।

(२) ब्लैनहियम (Blenheim) पहले पहल इंग्लैंडके मिस शिपलि (miss Sipley of England) ने इसको उत्पन्न किया था, इस जातिका फल रॉयल जातिसे मिलता है, परन्तु रंग रूपमें थोड़ा भेद है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। और फल रंगमें रॉयलसे कुछ अधिक पीला होता है। फल बड़ा स्वादिष्ट।

(३) मूरपार्क (Moorpark) विलायतकी पुरानी जातियोंमेंसे एक है। सन् १६७२में सर विलियम टेम्पल (Sirwilliam tample) ने उत्पन्न किया था। फल बहुत बड़ा कुछ लम्बोतरा, रंग गहरा पीला, एक ओरसे ब्राउनलाल, गूदा नारंगिया रंगका स्वादिष्ट, वृत्त बहुत बड़ा होता है।

(४) हेम्सकिर्क (Hemskirke) यह भी विलायत की पुरानी जातियोंमेंसे एक है। फल गोल बड़ा और सुन्दर होता है। वृत्त सदैव फल नहीं लाता है। रंग पीला, सूर्यदर्शीभाग लाल, खानेमें स्वादिष्ट, वृत्त बहुत बड़ा नहीं होता।

(५) न्यूकासल (New Castle) इस जातिको सी० एम० सिल्वा (C. M. Silva) नामी आविष्कारकने सन् १८८१में उत्पन्न किया था। रंग पीला, सूर्यदर्शी भाग लाल, फल गोल, बहुत मधुर होता है। वृक्ष सदैव फल लाता है।

(६) शिपलीज अर्ली (Shipley's Early) पश्चिमी देशकी जातियोंमेंसे एक है। फल छोटा गोल श्वेतरंगका बड़ा ही स्वादिष्ट और मधुर होता है। वृत्त बड़ा और सदैव फल लाता है। परन्तु इसमें विशेष बात यह है कि इस जातिके फल एक दो सप्ताह और जातियोंसे पहले पक जाते हैं, इसी कारण पश्चिमी लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। सुना जाता है कि गतवर्षमें इस जातिके फल शिमला मार्केटमें ५०) रुपये प्रतिमन बेचे गये थे।

दीपावली

दीनाऽवनीयदयनीयदशादिशानामालोचनाय कमनीयदृशं दिशन्ती।
श्रीपूजनाय निजराष्ट्रसमृद्धिवृद्ध्यै दीपावली दिशतु शाश्वतिकं प्रकाशम्॥

दरिद्र भिखारी लोगोंकी दयनीय परिस्थितिकी दिशाओंके विचार पूर्वक देखनेके लिए, समुचित सुन्दर कामना पूर्ण करनेवाली दृष्टिको देनेवाली लक्ष्मीका पूजन करनेके लिए, अपने राष्ट्रकी समृद्धिकी वृद्धिके लिए यह दीपावली चिरस्थायी सनातन प्रकाशको देवे। —अ० बा० आचार्य।

मनोविज्ञान और विज्ञापन

[लेखक—विद्याभूषण श्री पं० मोहन शर्माजी विशारद पूर्व सम्पादक 'मोहिनी']



इस संक्रमणशील युगमें वाणिज्य व्यवसायके विस्तारके लिए जिन नाना प्रणालियोंका व्यवहार होता हुआ हम देखते हैं; उनमें विज्ञापन-कला या इश्तहारबाजी एक सर्वानुमोदित मुख्य साधन है। विदेशों में इसके तत्त्वज्ञानकी शिक्षाके कई महाविद्यालय स्थापित हैं, जहांसे लोग इस कलामें पारङ्गत होकर अपने व्यावसायिक जीवनकी सफलताके लिए पूरा २ बल प्राप्त करते हैं। विज्ञापन एक मनोविज्ञान सम्मत कला है और पश्चिमी देशोंमें इस कलाकी उन्नति अपनी परिसीमाको पहुँच चुकी है। पृथ्वी आकाश और जल तीनों संसारमें विज्ञापन द्वारा मानवको विज्ञापित वस्तुके प्रति खींचनेके विज्ञापन सम्बन्धी सैकड़ों प्रयोग आविष्कृत हो चुके हैं। और पश्चिमीय देशोंमें इनकी कार्यकरी शक्ति अचूक और तत्काल फलप्रद भी मानी जा रही है। देश, काल और अवस्थाके अनुसार विज्ञापन-कलाका प्रचार पृथ्वीव्यापी रूप धारण कर रहा है। तथापि पूर्वीय देशोंमें यह कला अभी तक अपनी युवावस्थाको भी नहीं पहुँची है, जिससे अनेक क्षेत्रोंमें विज्ञापनके लाभका महत्त्व घटकर हानिकी आशंका ही वृद्धि पा रही है। विज्ञापनकी आड़में लूट और ठगीको पनपते देख तथा बारम्बार हानिके अप्रिय प्रसंगोंका अनुभव कर जनसाधारणका विश्वास विज्ञापन परसे उठता जा रहा है। अतएव विज्ञापनसे लाभकी आशा पोषण करने वालोंको अपनी वर्तमान अन्धाधुन्ध विज्ञापन प्रणालीमें यथेष्ट सुधार करना आवश्यक है। जब तक उनकी वर्तमान दूषित मनोदशामें अन्तर नहीं आता तब तक विज्ञापन कलाकी समीचीन उन्नति होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

देखा जाय तो 'विज्ञान' और 'विज्ञापन' इन दोनों शब्दोंमें एक ही वर्णका विभेद है और इससे दोनों शब्दोंका पृथक् २ अर्थ हो गया है। परन्तु विज्ञान और विज्ञापन ये दोनों शब्द एक ही धातुसे उत्पन्न हैं। विज्ञानका शाब्दिक अर्थ है कि किसी भी विषयमें सम्पूर्ण ज्ञानकी उपलब्धि होना और विज्ञापनका अर्थ है कि दूसरोंको अमुक वस्तुकी सम्यक्रीत्या पहिचान कराना। विज्ञानकी मनोविज्ञान एक शाखा है और इसी मनोविज्ञानसे विज्ञापनका योगसूत्र ग्रथित है। विज्ञापनका मूल उद्देश्य यही है कि विज्ञापित वस्तुके प्रति लोगोंका ध्यान आकर्षित हो और वे उस वस्तुके क्रेता बन जांय। अतः इस सदुद्देशकी सफलताके लिए जिस प्रकार विज्ञापनका मनोहारी होना आवश्यक है, उसी प्रकार उसका मनोविज्ञान सम्मत होना भी प्रयोजनीय है। तभी विज्ञापन देनेके हेतुकी ठीक २ सफलता हो सकती है। अन्यथा नहीं। विज्ञापन साधारणतः प्रचारकार्य के लिए एक अङ्ग विशेष माना जा रहा है। अतः नीचे विज्ञापनके इसी अङ्गके सम्बन्धमें विचार करनेका प्रयत्न किया जाता है।

हम इस समय सभ्य संसारमें निवास कर रहे हैं और नवीन सभ्यताके प्रकाशमें सांस खींचनेका हमारा अभ्यास चल रहा है। इस नवीन जगत्में शिल्प और वाणिज्यकी उन्नति करना सभ्यता और अच्छाईका परिचायक बताया जाता है। परंन्तु, प्रचारके मूल-तत्त्वका अध्ययन किये बिना व्यवसाय की उन्नति सम्पादन करना टेढ़ी खीर है, व्यवसायको विस्तार लाभ और स्थायी रूप देने तथा तुमुल प्रतियोगितामें स्थिर रखनेके निमित्त प्रचार कार्यकी दृढ़ता आवश्यक होती है। यह दृढ़ता ही सफलताका सर्वप्रिय और अन्यतम उपाय है। पूर्वकालमें जब मोटर, रेल और समाचार-पत्र आदिका प्रचार नहीं था, तब ढोल पीटकर या विजयघण्टा बजाकर और

पुकार २ कर जन समूहको एकत्रितकर प्रचार करनेका नियम था। आज भी यह नियम सार्वत्रिक रूपसे प्रचलित है। किन्तु मुद्रण-कलाका विस्तार होनेके साथ २ प्रचारके बहुविध-साधन उपलब्ध हो जाने से उपरोक्त प्राचीन प्रणालीका अब वह रूप नहीं रह गया है। वर्तमानमें प्रचारके लिए हेण्डबिलका साधारणतः अधिक उपयोग होता हुआ देखा जाता है। यद्यपि उन्हें पढ़नेकी लोगोंमें रुचि लालसा पाई नहीं जाती, तो भी उसके वितरणका क्रम चालू रहता है। ये हेण्डबिल भाषा भावुकताकी दृष्टिसे तनिक भी सजीव नहीं रहते और विज्ञापित वस्तुकी प्रामाणिकताका इन परसे कोई ज्ञान नहीं होता। अतः इनके प्रचारसे इष्टसिद्धिके सम्बन्धमें प्रायः अशंका ही रहती है। इनकी शब्दावलीको देखिये तो उसपर सहसा विश्वास करनेको जो नहीं होता। हेण्डबिलके आरम्भमें ही "नकलोंसे बचो" "हताश होना आवश्यक नहीं है" "स्वर्ण सुयोगको हाथ से न जाने दें" आदि २ वाक्योंका प्रयोग जनता की दृष्टि आकर्षित करनेमें अब उतना सफल होता हुआ देखा नहीं जाता। इस प्रकार हेण्डबिलके साधु उद्देश्यकी बुरी तरह मिट्टी खराब होती है और ऐसे बेढङ्गे प्रचारका आश्रय लेनेसे कितने ही व्यवसाय असमयमें नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, तथा कितने ही क्षति-ग्रस्त होकर विज्ञापन-कलाको व्यर्थ लांछित करते हैं।

हम ऊपर कह चुके हैं, कि विज्ञापन किसी भी व्यवसायके प्रचार कार्यका अन्यतम साधन माना गया है। उदाहरण स्वरूप—अमुक द्रव्य कहांसे प्राप्त होता है, उसका गुणानुगुण क्या है इत्यादि २ विवरणसे युक्त एक विज्ञापन-विशेष किसी समाचार पत्र या पत्रिकामें प्रकाशित हुआ। परन्तु प्रत्येक समय और अवस्थामें सर्वसाधारणको दृष्टि उसके प्रति आकर्षित न होनेसे उसमें किञ्चित् परिवर्तनकी आवश्यकता हुई। अतः परिवर्तन पूर्वक उसे आकर्षक रूप देने तककी बात तो ठीक है, परन्तु इसके विपरीत अविचारमय और शब्दाडम्बरसे पूर्ण, भड़कीले विज्ञापनकी आड़ लेकर अपना उल्लू सीधा करनेका स्वप्न देखना मूर्खता है। साधारण विज्ञापनके विफल होने पर सुधारकी दृष्टिसे उसके भाषा-संयोग पर पहिले विचार करना चाहिये। "सस्ता और श्रेष्ठ" अथवा "स्वदेश में बना" इत्यादि सत्यतापूर्ण विशेषण विज्ञापनके महत्त्वको जतलाने वाले होते हैं। और इस दावेसे विज्ञापनकी असत्यता और निःसारताका भाव न होकर ग्राहक उसके प्रति विश्वासी हो उठता है। परन्तु जब भोले ग्राहकोंकी गाढ़ी कमाई एँठने और उनकी आंखोंमें धूल झोंकनेके अपवित्र विचारसे कई विज्ञापनदाता अपने विज्ञापनमें दावा करते हैं कि 'इसके व्यवहारसे मुंहकी झुर्रियां लुप्त हो जाती हैं', 'श्यामवर्ण रमणियोंके लिए इसका व्यवहार जगत् प्रसिद्ध है', २४ घण्टेके बाद ही उनके मुखमण्डलमें गौर आभा फूट उठती है।" "कांग्रेसकी राय" "महात्माजीका चमत्कार" इत्यादि-इत्यादि। तो विज्ञापन करनेके इस निन्दनीय ढंग पर पाठकोंकी आत्मा उबाल खा उठती है। ऐसा ऊलजुलूल और भित्तिहीन विज्ञापन देते हुए क्या उन्होंने कभी सोचा है कि जिन श्यामवर्ण स्त्रियोंके हितके लिये विज्ञापन जा रहा है उनके मन-मानस पर वास्तवमें इसका क्या प्रभाव होगा ? सम्भव है कि कोई स्त्री ग्राहक परीक्षाके लिये इसे एकाधबार खरीद ले पर अन्य ग्राहक ग्राहिकाएं तो इस विज्ञापनको भुलावा मात्र ही समझेंगी। क्योंकि यह परीक्षित सत्य सब पर प्रकट है कि कोयला धोनेसे कभी सफेद नहीं हो सकता। यदि इस प्रणालीके साथ विदेशी विज्ञापन प्रणालीकी तुलना की जाये तो दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर दिखायी देता है। एक वैदेशिक विज्ञापनकी भाषाका नमूना देखिये—"Johnary walker born in 1820, but still going strong", you don't know what yod are missing........" इत्यादि २। इसके अतिरिक्त वहांके वार्त्तालाप रूपी विज्ञापन भी एकाएक बेजोड़ और ग्राहकके हृदय पर तत्काल काम करने वाले होते हैं। यहां नीचे पाठकोंकी जानकारीके लिये एक इस प्रकारके कथोप-

भारतीय संस्कृतिके अग्रदूत राष्ट्रधर्मके प्रमुख प्रचारक—

'श्रीस्वाध्याय' के लिए—

राष्ट्रके उद्गार

श्रीयुत बा० पुरुषोत्तमदासजी टण्डन—'श्रीस्वाध्याय' को देख मुझे बहुत सुख मिला। ......इस पत्र और इसके सञ्चालकमण्डलसे राष्ट्रीय कार्यमें पूर्ण सहायता मिलेगी ....।

त्यागमूर्ति श्री १०८ गो० गणेशदत्तजी महाराज—'श्रीस्वाध्याय' अपने विषयका अनुपम पत्र है ...... यह प्रत्येक सार्वजनिक संस्थाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयोंमें स्थान पाने योग्य है ......।

श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, राज्यपाल उत्तरप्रदेश—'श्रीस्वाध्याय' बहुत अच्छा निकल रहा है। लेख विचार प्रवर्तक हैं। ......मैं इसकी पूर्ण सफलता चाहता हूँ ......।

पंजाबविश्वविद्यालयके उपकुलपति दीवान श्री आनन्दकुमारजी—'श्रीस्वाध्याय' साहित्यिक अभिरुचिका पत्र है और अपने पाण्डित्यपूर्ण स्तरको अक्षुण्ण व स्थिर रक्खे हुए है।......... पत्र द्वारा हमारी प्राचीन संस्कृतिके उद्धार व संवर्द्धनका प्रशंसनीय प्रयत्न किया जा रहा है।..........."

श्रीयुत डा० सम्पूर्णानन्दजी गृह-मन्त्री उत्तरप्रदेश—'श्रीस्वाध्याय' बहुत सुन्दर निकल रहा है। भारतीय प्राचीन विद्याओं पर प्रकाश डालने वाले ऐसे प्रगतिशील सांस्कृतिक पत्र-पत्रिकाओंकी इस समय आवश्यकता है।

कविसम्राट् स्व० श्री पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'—'श्रीस्वाध्याय' बड़ा सुन्दर निकल रहा है। इसे जिस दृष्टिसे देखें यह सुखकर है। आकार, प्रकार, लेख किंवा कविता आदि सभी प्रशंसनीय है।

श्रीयुत बा० मैथिलीशरण गुप्त—"......'श्रीस्वाध्याय' बहुत सुन्दर निकल रहा है। मैं आपके परिश्रमकी प्रशंसा और पत्रकी उन्नतिकी कामना करता हूँ।......"

श्रीयुत प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति—'श्रीस्वाध्याय' अपने ढङ्गका अनूठा पत्र है। ......यह एक उच्चकोटिका सांस्कृतिक पत्र है। मैं इसकी पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्रीयुत बाबूराव विष्णु पराड़करजी—"...... वस्तुतः यह त्रैमासिक अपने ढङ्गका निराला है। आर्य संस्कृतिके प्रायः प्रत्येक अङ्ग पर इसमें प्रकाश डाला जाता है। ......"

श्री डा० रामकुमारजी वर्मा—"........'श्रीस्वाध्याय' हमारे साहित्यका ऐसा पत्र है जिस पर हमें अभिमान है। इसमें जो सांस्कृतिक दृष्टिकोण रहता है वह हमें अन्य भारतीय पत्रोंमें नहीं मिलता। 'श्रीस्वाध्याय' के प्रत्येक पृष्ठमें मुझे अध्ययन और अनुशीलनसे परिपूर्ण साहित्यिक सामग्री मिली।....."

श्रीयुत पं० रूपनारायणजी पाण्डेय (सम्पादक 'माधुरी')—"... 'श्रीस्वाध्याय' की सभी सामग्री ज्ञानवर्धक और उपादेय है।..... प्रत्येक देशभक्त, राष्ट्रभाषा प्रेमी, जिज्ञासु, धर्मप्रेमीको अवश्य इसे अपनाना चाहिए। हर एक पुस्तकालयमें यह पत्र स्थान पाने योग्य है।......"

श्रीयुत पं० देवीदत्तजी शुक्ल (भू० पू० सम्पादक 'सरस्वती')—'श्रीस्वाध्याय' बहुत ही सुन्दर निकल रहा है।......आपने 'स्वाध्याय' निकाल कर हिन्दीके एक विशेष अभावकी पूर्ति की है, इसमें सन्देह नहीं। इस महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए हिन्दी वाले आपके अवश्य कृतज्ञ होंगे।

श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सात्वलेकरजी—"...... 'श्रीस्वाध्याय' के विषयमें विशेष क्या कहा जाय, यह एक अत्युत्तम पत्र है। मैं हृदयसे इसकी सफलता चाहता हूँ। इसकी अन्यान्य महत्ताओं पर 'वैदिकधर्म' में प्रकाश डालूंगा।

इनके अतिरिक्त भारतके अनेकों महामान्य विद्वानों और प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंने 'श्रीस्वाध्याय' की मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है। स्थानाभावके कारण वे सब यहां उद्धृत नहीं हो सकीं।

श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी द्वारा अर्जुन प्रेस दिल्लीमें छपकर 'श्रीस्वाध्यायसदन' सोलन (शिमला) से प्रकाशित।